हिं(२३०)

बर्मा का इतिहास

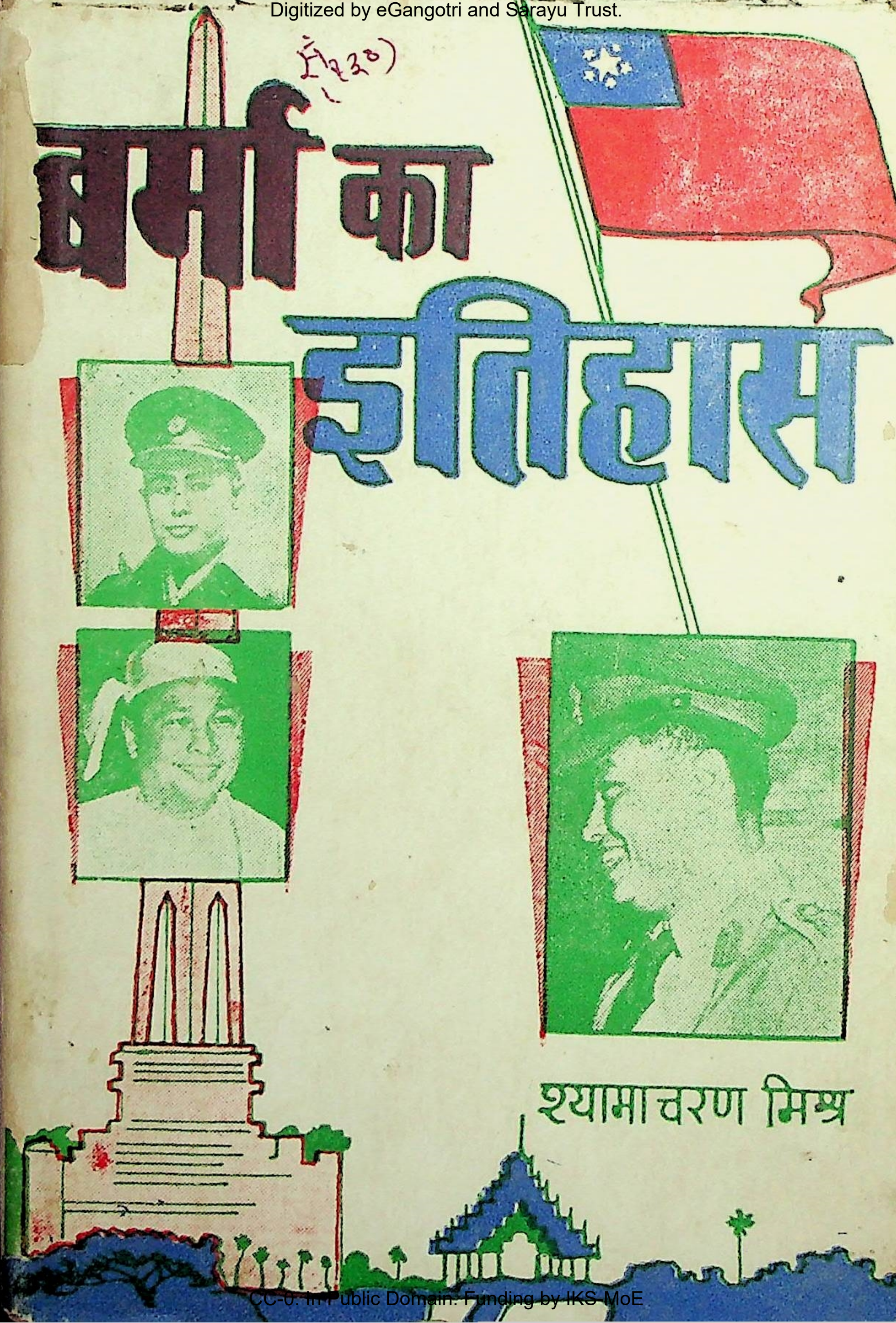

श्यामाचरण मिश्र

दो शब्द

हिन्दीके प्रख्यात लेखक श्री पं० श्यामाचरणजी मिश्र लिखित 'बर्मा,—कल और आज' नामकी पुस्तक कुछ समय पूर्व पढ़ी थी, मुझे वह अपने ढंगकी अद्वितीय मालूम हुई। परम आकर्षक अभिनव लेखनकला, वैचित्र्यपूर्ण कथासाहित्यका आनन्द सजीव और मनोहर।

मिश्रजीकी दूसरी रचना जो हिन्दी-जगत्के सामने आयी है वह है "बर्माका इतिहास"। इतिहास लिखते समय घटनाओंकी शृङ्खलाकी जिस सँकरी गलीसे निकलकर पार करना पड़ता है वह सब लेखकोंके लिए एक-सी है। कुछ पूर्ववर्ती लेखकोंका अन्धानुकरण, कुछ अन्वेषण, कुछ किंवदन्तियाँ और कुछ आँखों देखी घटनाओंका ही बल काम आता है। यदि ऐसा न हो तो इतिहासलेखक पथ-विचलित होकर लक्ष्यसे दूर हो जाता है। इसमें स्वतन्त्रतापूर्वक लेखनी चलानेका, कला-प्रदर्शनका तथा नयी सृष्टि करनेका अवसर नहीं मिलता। फिर भी मिश्रजीकी अपनी कला सभी प्रेरणादायक स्थलोंके बीच झाँक-झाँक जाती है, इसीलिए घटनाओंका समुच्चय यह 'बर्माका इतिहास' सुन्दर और सजीव हो उठा है। इतिहासके विद्यार्थियोंके लिए ही नहीं अपितु सबके लिए यह पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है। मैं मिश्रजीको उनकी इस सुन्दर कृतिके लिए धन्यवाद देता हूँ।

४-७-६२ **श्यामनारायण पाण्डेय**

बर्मा का इतिहास

लेखक

श्यामाचरण मिश्र

प्राध्यापक, टैगोर कॉलेज, रंगून

भूमिका

राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

एम० पी०, नयी दिल्ली

दो शब्द

श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, एम० ए० (आनर्स)

सहायक सम्पादक 'आज', वाराणसी

वाराणसी

ज्ञानमण्डल लिमिटेड

मूल्य : ९ रुपये

प्रथम संस्करण, बर्मी शहीद दिवस, संवत् २०१९

© ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, १९६२

प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी–१
मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी ५९७१–१८

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१५	श्वेज़ीगऊँ	श्वेडगऊँ
१७	१	,,	,,
१७	४	,,	,,
१७	१२	,,	,,
२१	६	१०४४ ई० सिंहासनारूढ़ हुआ	१०४४ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ
२२	१५	कहलाने लग लये थे	कहलाने लग गये थे
२३	१९	नीति शान्ति की	नीति अशान्ति की
४६	१६	समान्त शाही	सामन्तशाही
६९	१२	पान	पात
८२	८	संन्निकट	सन्निकट
१२७	१	प्रांसीसी	फ्रांसीसी
१३३	१४	सिंन्युजिन	सिंब्युजिन
१४०	८	उसते	उसके
१४४	२४	सैनिकों तो	सैनिकोंको तो
१४५	७	टटटुओंका	टट्टुओंका
१४९	९	इसलिए कि	इसलिए

१५०	५	अडोडियऽकी	अयोडियऽकी
१७१	९	दी जाती थे	दी जाती थी
१७८	८	पूरा करने	पूरा न करने
१७९	१९	ऊ रिन टुट	ऊ टिन टुट
१८१	२२	१९४५	१९४१
१८६	५	अवसर	असर
१९४	३	ऊ यू	ऊ पू
,,	६	,,	,,
२१६	९	निदश	निर्देश
२१८	२०	रेनिनाल्ड	रेजिनाल्ड
२२०	३	निमिक्त	निमित्त
२२५	ब्लाक अनावश्यक एवं अप्रासंगिक छप गया है।		
२२७	२१	अर्थिक	आर्थिक
२३३	१	फाँसीको सजा	फाँसीकी सजा
२४७	१०	१ करोड़ ८०लाख	१ करोड़ ९६ लाख ७७ हजार
,,	१२	१ करोड़ १२ लाख है और कयिन २० लाख	१ करोड़ ६२ लाख ७० हजार ६४६ हैं और कयिन प्रायः ७ लाख
,,	१४	दूसरी	तीसरी
२५३	९	प्यापोन	पापुं
२५६	२	दी और तो वे	दी तो वे

२५७	१९	तखिन ‘स्वे-ऍइ’ पक्षके	तखिन ता·खिन ‘स्वे एँइ’ पक्ष के
२६६	२१	अवव्यय	अपव्यय
२८८	५	नेशशल	नेशनल
२९०	२४	कभी	कमी
२९३	१८	आर्यकलापों	कार्यकलापों
३३६	११	रामर्श	परामर्श
३४६	६	अन्य देशोंकी	उभय देशोंकी
३४९	१०	कला	कथा
,,	१६	,,	,,
३८६	२	सुज्यवस्था	सुव्यवस्था

नोट—बर्माकी साल्वीन नदीका शुद्ध ऐतिहासिक बर्मी नाम तं ल्विं है। अतएव इसके उल्लेखका जहाँ प्रसंग आया है प्रायः तं ल्विं नदी लिखा गया है। मानचित्रमें नगरों, नदियों, प्रदेशों तथा प्रमुख स्थलोंके नाम वैसे ही लिखे गये हैं जिस प्रकार साधारणतया बोलचालमें उनका उच्चारण किया जाता है। ऐसा इस अभिप्रायसे किया गया है कि मानचित्रका उपयोग सभी जन सुविधासे कर सकें।

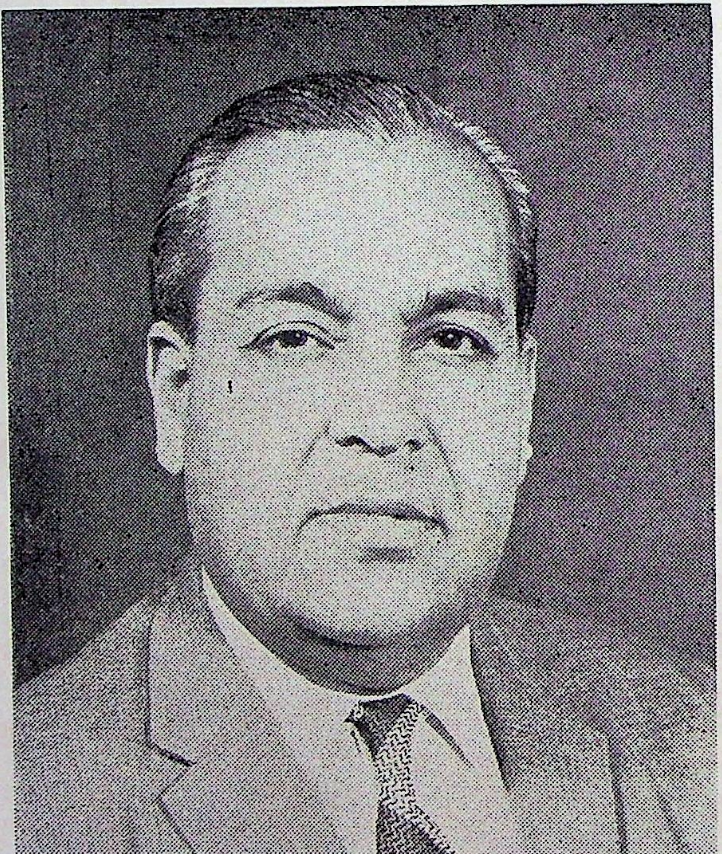

महामहिम श्री आर० एस० मणि

समर्पण

वर्मी शहीद दिवसके अवसरपर वर्मास्थित भारतीय राजदूत

महामहिम श्री आर० एस० मणि

को

जिनसे सुलभ प्रेरणाओं एवं सम्मतियोंने पुस्तकको यथासम्भव
शीघ्र पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करनेमें प्रेरणा
और शक्ति प्रदान की ।

महामहिम श्री आर० एस० मणि

समर्पण

बर्मी शहीद दिवसके अवसरपर बर्मास्थित भारतीय राजदूत

महामहिम श्री आर० एस० मणि

को

जिनसे सुलभ प्रेरणाओं एवं सम्मतियोंने पुस्तकको यथासम्भव
शीघ्र पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करनेमें प्रेरणा
और शक्ति प्रदान की ।

भूमिका

पुस्तकोंका सहारा लेकर जो पुस्तकें लिखी जाती हैं, महत्त्व उनका भी होता है। वर्तमान पुस्तककी विशेषता यह है कि इसके लेखक बहुत दिनोंसे बर्मामें रहते आये हैं और उन्हें बर्माके जीवन तथा स्वभावका प्रत्यक्ष अनुभव है। बर्माके वर्तमान इतिहासका जो हाल लेखकने लिखा है; वह प्रायः उनकी आँखोंके आगे घटित हुआ है।

बर्मा भारतका पड़ोसी देश है, केवल इतना कहनेसे उस सम्बन्धकी पूरी अभिव्यक्ति नहीं होती जो भारत और बर्माके बीच लगभग दो हजार वर्षोंसे रहता आया है। भारतीय जनताके बीच ऐसे लोग भी काफी हैं जो किरात वंशके हैं। इन लोगोंमेंसे कुछके पूर्वज बर्मा होकर भी आये थे। अतएव, कहा जा सकता है कि भारतीय जनताके वैविध्यकी वृद्धिमें बर्माका भी कुछ थोड़ा अंशदान है। पीछे, जब बर्मा बौद्ध धर्ममें दीक्षित हुआ तब दोनों देश एक ही धर्म-दीपको लेकर आगे बढ़ने लगे। भारतीय संस्कृतिको भारतसे पूर्वकी ओर अग्रसर करनेमें बर्माने बहुत सहायता की थी। बुद्ध, भारत और बर्मा, दोनोंके धर्म-गुरु थे। अतएव, भारत और बर्मा परस्पर गुरु-भाई हैं।

अंग्रेजी शासनके जमानेमें दोनों देशोंका शासन एक ही गवर्नर जनरल और पुनः वाइसरायके अधीन था। भारत और बर्माके बीचकी एकता इस गुलामीके कारण भी बढ़ी।

एशियाके अनेक देशोंमें राजनीतिक उथल-पुथल काफी जोरसे चल रही है। केवल भारत ही है जो इस उथल-पुथलमें किंचित् स्थिर और शान्त है। इस उथल-पुथलके असरमें बर्मा भी गिरफ्तार है। किन्तु, एक उदाहरण बर्माने ऐसा भी उपस्थित किया जिससे यह आशा होती है कि,

समय आनेपर, बर्माके देशभक्त अपनी प्रभुताकी तुलनामें समग्र देशके सौभाग्यको अधिक महत्त्व दे सकेंगे। यह उदाहरण देखनेको तब मिला जब ऊ नुने राज्यका भार ने विनको दे दिया था और थोड़े दिनों बाद जनरल ने विनने यह प्रस्ताव रखा कि संविधानकी रक्षाके लिए राज्यभार मुझसे ले लिया जाय। उस अद्भुत प्रसंगका वर्णन इस ग्रन्थमें भी आया है।

श्री श्यामाचरण मिश्रको मैं 'बर्माका इतिहास' लिखनेके लिए बधाई देता हूँ और हिन्दी-पाठकोंसे सिफारिश करता हूँ कि वे इस ग्रन्थको एक नजर देख जायँ।

११, कैनिंग लेन—नयी दिल्ली
२६ अप्रैल, १९६२

रामधारी सिंह 'दिनकर'

दो शब्द

बर्माका इतिहास श्री श्यामाचरणजी मिश्रकी महत्त्वपूर्ण रचना है। पिछले दशकमें एशियाई देशोंमें नवजागरण और राष्ट्रोत्थानकी जो लहर आयी उसका विश्व-इतिहासपर प्रभाव अंकित हुआ है। एशिया तथा अफ्रीकाके नव स्वतन्त्र देशोंने अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिको नया मोड़ दिया है। स्वतन्त्र बर्माने लोकतन्त्र तथा समाजवादके ऐसे प्रयोग किये हैं जो एशियाई देशोंमें अन्यत्र नहीं हुए। अपनी संस्कृति और ऐतिहासिक परम्पराओंके कारण बर्माके इतिहासका एशिया महादेशमें विशेष महत्त्व है।

नव स्वतन्त्र एशियाई देशोंके सम्बन्धमें राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे इतिहास-लेखन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस दिशामें श्री मिश्रकी यह कृति बहुत बड़े अभावकी पूर्ति करती है। भारतमें और अन्यत्र भी अब यह अनुभव किया जा रहा है कि पड़ोसी देशोंके इतिहासका अध्ययन-मनन पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए आवश्यक है। एशियाई देशोंके इतिहास, विशेषकर उनके स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रनिर्माणके कार्य अत्यन्त प्रेरणाप्रद एवं मननीय हैं। इस दृष्टिसे इस पुस्तकका अपना महत्त्व है।

इसे एक निश्चित संयोगकी ऐतिहासिक घटना ही कहा जायगा कि भारतके अन्तिम सम्राट् श्री बहादुरशाहने बर्माकी राजधानी रंगूनमें अपने जीवनके अन्तिम दिन बिताये और बर्माके अन्तिम राजाने दक्षिण-भारतमें। सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टिसे भारत तथा बर्मा दोनोंका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। बर्माकी स्वतन्त्रता और नव निर्माणमें वहाँ रहनेवाले भारतीयोंका भी उल्लेख्य योगदान है जिनमेंसे अधिकांश अब वहाँके नागरिक बन गये हैं। सन् १९५६ में जब मैं बर्माकी राजधानी रंगून

गया और वहाँके सर्वमान्य तथा शीर्षस्थ लोकनायक श्री नुसे मिला तो उस समय मेरे साथ श्री श्यामाचरणजी मिश्र भी थे। उस समय बर्मा तथा प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमें श्री नुसे जो चर्चा हुई और उसी दिन बर्माके सबसे वयोवृद्ध साहित्यकार श्री कोडो माइंगके दर्शन कर जब हम लौटे तो मैंने मिश्रजीसे आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि वे बर्माका इतिहास लिखें। 'बर्मा—कल और आज' के बाद मिश्रजीकी प्रस्तुत रचनामें अनेक प्रेरणाओंके साथ मेरे अनुरोधकी भी रक्षा हो गयी, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तकमें बर्माके प्रायः एक हजार वर्षोंका ऐतिहासिक उत्थान-पतन और उत्कर्ष बड़ी ही सरल भाषामें वैज्ञानिक रीतिसे कार्यविभाजन सहित प्रस्तुत किया गया है। राजनीतिक विकासके साथ ही विभिन्न युगोंमें होनेवाले साहित्यिक-सांस्कृतिक जागरण एवं पुनरुत्थानका भी पुस्तकमें यथासम्भव उल्लेख किया गया है। बर्मी इतिहासकी नवीनतम घटनाओंका समावेश कर सुविज्ञ लेखकने पुस्तकको प्रामाणिकके साथ अद्यतन भी बना दिया है। बर्माके सम्बन्धमें ऐसी सुन्दर, सर्वांगीण और प्रामाणिक पुस्तकका प्रणयन करनेके लिए मिश्रजी हार्दिक साधुवाद-के पात्र हैं।

'आज' कार्यालय,
वाराणसी
रथयात्रा, वि० २०१९

लक्ष्मीशंकर व्यास

आमुख

बर्माका इतिहासके प्रणयनकी अभिलाषा चिरकालसे बनी आ रही थी। भारतसे जो भी साहित्यकार बर्मा-भ्रमणके लिए आते, वे ही इसके अभावपर असन्तोष प्रकट करते और इसकी पूर्तिकी ओर ध्यान आकृष्ट करते जाते। ब्रह्मदेशके भारतीय विद्यालयोंके बहुसंख्यक गुरुजनोंकी भी माँगें होती ही रहतीं। किन्तु, हर कार्यके सम्पन्न और सम्पादित होनेकी अपनी विशिष्ट वेला होती है। 'बर्मा—कल और आज'के प्रकाशनके पश्चात् दर्जनों पत्रों एवं विद्वानोंने अपने आशीर्वचनोंसे जो प्रेरणाएँ प्रदान कीं उनके परिणामस्वरूप इसके लेखनमें दत्तचित्त होना ही पड़ा और आज यह हिन्दी पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत है।

पुस्तकके दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड 'बर्माका प्राचीन इतिहास' ५२ अध्यायोंका है जिसमें प्राकृतिक स्थिति, जलवायु, निवासी और प्रागैतिहासिक कालसे लेकर ऐतिहासिक एवं ब्रिटिश-बर्माका चित्रांकन है। द्वितीय खण्ड 'आधुनिक इतिहास' २६ अध्यायोंका है। इस भागमें बर्माकी युद्धकालिक अवस्थाओंसे लेकर स्वतन्त्र बर्माकी आजतककी ऐतिहासिक घटनाओंका समावेश है। परिशिष्टमें धर्म, संस्कृति, आर्थिक-साधन और संविधानके समीक्षात्मक विवेचन हैं।

पुस्तकके सम्पादनमें आधुनिक घटनाओंका विश्लेषण करते हुए उन समीक्षाओंसे विशेष सहायता ली गयी है जो लेखक समय-समयपर वाराणसी (भारत) के हिन्दी दैनिक 'आज के निमित्त भेजता रहा है। ब्रिटिश-सत्ताकालीन घटनाओं एवं भौगोलिक तथ्योंके वर्णनोंमें या तो उन पुस्तकोंका सहारा लिया गया है जो प्रामाणिक मानी जा चुकी हैं अथवा सरकारी सूचना विभागके प्रकाशनोंका। अतएव आधुनिक घटनाक्रमोंको

वास्तविकतामें तो दो मत होना ही नहीं चाहिये; अतीत एवं भौगोलिक आदि चर्चापर भी किसी मतभेदकी आशा नहीं है।

भारत और भारतीयोंसे सम्बन्धित उल्लेखों तथा अन्तरराष्ट्रीय महत्त्वके समझौतोंके वर्णनमें भारतीय दृष्टिकोणका अंकन हो आना स्वाभाविक होते हुए भी उसका समावेश नहीं होने दिया गया है।

बर्मी नामोंका हिन्दीमें शुद्ध रूपसे उल्लेख करना अत्यन्त कठिन एवं विवादग्रस्त कार्य है। इस सम्बन्धमें लेखक अनेक ऐसे व्यक्तियोंसे, जो दोनों भाषाओंके विशेष जानकार हैं, परामर्श एवं योगदान प्राप्त करनेमें लगा रहा। अन्ततः, बन्धुवर ऊ पारगूजीने नामोंकी जो तालिका तैयार करके दी उसके ही सहारे इस कामको पूरा किया गया। ऊ पारगूजीका अभिमत है कि 'किसी भी ऐतिहासिक पुरुष अथवा स्थलको बर्मी जनता जिस प्रकार पुकारती है उसको उसी भाँति हिन्दीमें लिपिबद्ध कर देना पर्याप्त है। इसके लिए न तो अंग्रेजी वर्णविन्यासका सहारा लेना चाहिये और न तो नामार्थोंके शोध आदिकी फिक्रमें पड़ना चाहिये। जहाँतक नामोंको पढ़कर पाठक ठीक-ठीक यह समझ जायँ कि ये उन्हीं ऐतिहासिक पुरुषों या स्थलोंके नाम हैं जिनकी बाबत लेखक बताना चाहता है; वहाँतक अपने उद्देश्यकी सिद्धि माननी चाहिये।' लेखक ऊ पारगूजीकी उक्त विचारधारासे सहमत है और विश्वास करता है कि पाठकगण भी इससे सहमत होंगे। ऐसा करनेमें जहाँ कहीं त्रुटियाँ रह गयी हों; उनके लिए क्षमा-याचना है ही, अन्य दोषोंके लिए भी उदात्त दृष्टिकोण अपनानेकी पाठकोंसे प्रार्थना है।

'बर्माका इतिहास'के प्रणयनमें यों तो बहुतोंसे एक-न-एक प्रकारसे योगदान मिलते ही रहे हैं किन्तु मैं सर्वश्री रामसनेही वर्मा, अमर सिंह 'अमर', गौरीशंकर 'अशान्त' और दयाराम शर्मा 'मस्त'को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने लेखन-कार्य प्रारम्भ करानेसे लेकर पाण्डुलिपि वाराणसी भेजनेके समयतक इसे तैयार करनेमें नैष्ठिकभावसे सहयोग दिया। मैं सर्वश्री शिवशंकर वर्मा, श्यामलाल ल्हीला और वंशलोचन

चौबेका भी आभारी हूँ जो सर्वदा ही हर प्रकारकी सहायता करते रहे। इस पुस्तकमें सन्निविष्ट ब्रिटिशकालीन 'बर्मा-भारत इमिग्रेशन समझौता' सम्माननीय श्री जयन्ती भाई जोशीसे सुलभ हुआ था जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। श्री शारदाशंकर द्विवेदीने जिस तत्परता और संलग्नतासे पुस्तकके प्रूफ-संशोधनमें योग दिया है, इसके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं।

'बर्माका इतिहास'की भूमिका लिखनेका सुयश परम श्रद्धेय राष्ट्र-कवि श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'ने लिया है। कविवरने ऐसा करके इस कृतिको जिस प्रकार गौरवान्वित किया है उसके लिए मैं उनका नतमस्तक ऋण स्वीकार कर रहा हूँ। इसकी पाण्डुलिपिके सम्पादन एवं इसपर 'दो शब्द' देकर 'आज'के सहायक सम्पादक श्रद्धेय श्री लक्ष्मीशंकर व्यासने जिस शालीनताका परिचय दिया है उसके लिए मैं उनका सदा ही आभारी रहूँगा। पूज्य कविवर श्यामनारायण पाण्डेयका आशीर्वचन पाकर मैं अपनेको कृतकृत्य मान रहा हूँ। ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी-के संचालक आदरणीय बाबू विश्वनाथप्रसादजी, प्रकाशन-व्यवस्थापक श्री देवनारायणजी द्विवेदी और प्रेस-व्यवस्थापक श्री ओमप्रकाशजी कपूरने जिस उदात्त भाव एवं लगनसे इसके प्रकाशन और मुद्रणकी व्यवस्था की है उसके लिए मैं उनका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

बर्मी शहीद दिवस
१९ जुलाई १९६२
रंगून

श्यामाचरण मिश्र

परिच्छेद-सूची

बर्माका प्राचीन इतिहास

१. बर्माकी प्राकृतिक स्थिति और जलवायु ... १
२. बर्माके निवासी ... ६
३. प्रागैतिहासिक बर्मा और भारतीय प्रभाव ... ११
४. इतिहासका श्रीगणेश ... १९
५. पगां राजवंश और अनोयठा (अनिरुद्ध) ... २१
६. सॉल्रू ... २७
७. च्यां सित्ता ... २९
८. अलौंसीतू ... ३५
९. नरऽतू ... ४०
१०. नरातिंखा ... ४२
११. नरापातिसीतू ... ४३
१२. ठीलोमिंलो ... ४६
१३. चोज्वा ... ४८
१४. ऊ ज़ना ... ४९
१५. नरातीहापाते ... ५०
१६. अयी (आवा) राज्य ... ५७
१७. मिंजीज्वासोके ... ५९
१८. मिखांग ... ६१

१९. आवापर शां सत्ता ... ६५
२०. पेगू राज्य ... ६७
२१. राजादरित ... ६९
२२. शिं सा पू ... ७६
२३. डम्मऽजेटी ... ७८
२४. बँयायान ... ८०
२५. टॅयूपी ... ८१
२६. अराकान-१ ... ८२
२७. अराकान-२ ... ८५
२८. अराकान-३ ... ८७
२९. मिंराज़ागी ... ८८
३०. मिंकामांग ... ८९
३१. अराकान-४ :सान्दातुदमा तथा उसके बाद ... ९०
३२. टाँगू राजवंश ... ९३
३३. डबिन्श्वेठी ... ९५
३४. बयिंनौं ... ९९
३५. नन्डाबएँ ... १०७
३६. अनावपेटलौं ... ११०
३७. मिंरेडिपा ... ११२
३८. थालुन ... ११३
३९. पिंडले ... ११६
४०. पी ... ११८
४१. १६७३ से १७३३ कालीन तीन राजा ... ११९

४२. महाऽमायाज़ा डीपति ... १२०
४३. अलॉवफया ... १२४
४४. नांडजी ... १३८
४५. सिंब्यूशिं ... १४०
४६. सिंगू ... १४७
४७. बोडोफया ... १४८
४८. बऽजीडो ... १५९
४९. तायावडी मिं ... १६७
५०. पगां मिं ... १६८
५१. मिंडऊ मिं ... १७०
५२. तीबॉ मिं ... १७४

बर्माका आधुनिक इतिहास

१. बर्मा-भारत-उत्प्रवासन-समझौतेकी पृष्ठभूमि ... १७८
२. परतन्त्रता और स्वातन्त्र्य-संघर्ष ... १८५
३. युद्धकालिक बा मॉ सरकार ... १९१
४. बर्मामें भारतीय स्वातन्त्र्य सेना और नेताजी ... १९७
५. 'फसपल'का जन्म और जापानी आत्मसमर्पण ... २०८
६. राज्यपाल परिषद्की वापसी ... २१५
७. वीर पुंगव आंग सॉकी हत्या ... २२३
८. साम्राज्यशाहीपर लोकतान्त्रिक विजय ... २२६
९. नु-एटली वार्ता ... २३०

१०. नु-एटली समझौता … २३४

११. १२ फरवरी, संघ दिवस क्यों ? … २४२

१२. कयिन (करेन) राज्यकी स्थापना … २४७

१३. जनरल ने विनका शासनकाल … २५४

१४. प्रारम्भिक कदम … २६५

१५. ने विनका त्यागपत्र … २७०

१६. ऊ नुके संकट और कार्यकलाप … २७६

१७. विविध प्रतिक्रियाएँ … २८७

१८. चुनाव-चर्चा और अभियान … २९५

१९. बर्मी-चीनी मैत्री एवं अनाक्रमण सन्धि … ३१२

२०. बर्मा-चीनके बीच सीमा-समझौता … ३१४

२१. राष्ट्र उद्धारक ने विन … ३१८

२२. मन्त्रिमण्डल और उसकी नीति … ३२६

२३. सीमा-समझौतेका ऊ नु द्वारा विश्लेषण … ३३३

२४. वर्तमान कछिन् राज्य … ३४६

२५. फेडरेशनकी माँग और शां प्रदेश … ३५१

२६. बर्माका सैन्यतन्त्र … ३६२

परिशिष्ट

१. बर्माके आर्थिक साधन … ३८१

२. बर्माका संविधान … ३८६

३. बुद्ध धर्म राजधर्मके स्थानपर … ३९१

बर्माकी प्राकृतिक स्थिति और जलवायु

बर्माकी प्राकृतिक स्थितिका विहंगमावलोकन करनेपर ऐसा प्रतीत होता है मानो यह सम्पूर्ण देश प्रकृतिका एक विशेष श्रृंगार-स्थल हो। पश्चिमी पर्वतीय प्रदेश, मध्यका समतल मैदान और पूर्वी शान पठार इसके मुख्य तीन प्राकृतिक विभाग हैं। इसका पश्चिमी, दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी तटीय भाग महोदधिसे घिरा हुआ है और उत्तरी, उत्तरी-पश्चिमी तथा उत्तरी-पूर्वी स्थलीय सीमाएँ पर्वतश्रेणियाँ बनाती हैं।

पश्चिमकी पर्वतश्रेणियाँ : उत्तरमें तिब्बत और चीनकी सीमा-स्थलीय पहाड़ियोंको छूती हुई दक्षिणमें समुद्रतटतक एक बृहद् धनुषाकार बनाती हुई ७०० मीलकी लम्बाई और १५० मीलकी चौड़ाईमें फैली हुई हैं। छिन और नागऽकी पहाड़ियाँ तथा अराकान योमा (पर्वत) इन्हींके अन्तर्गत आते हैं। इसका सबसे ऊँचा भाग जिसे सारमती कहते हैं १२,६६३ फुट ऊँचा है। नागऽ और छिन् पहाड़ियाँ औसतन ८ हजार फुट ऊँची हैं और अराकानके पहाड़ तो इससे भी कम ऊँचे हैं।

मध्यका मैदान : शान पठार और अराकान योमाके बीचमें अवस्थित एयावडी (ईरावदी) नदीके डेल्टाका है। यह एयावडी, छिन्ड्विन और सिट्टौं नदियोंकी घाटियोंसे बना है। इसका सुदूर दक्षिणी क्षेत्र बर्माका सर्वाधिक उर्वर भाग है। यह धानके उत्पादनके विश्वप्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ भागोंमेंसे एक माना गया है और इसलिए इसे 'चावलका बखार' भी कहते हैं।

शान पठार : बर्माका पूर्वी स्फटिक शिलाखण्डों और शीशेकी तरह चमकते चट्टानोंका चौरस ऊँचा भाग है। इसकी समुद्रकी

सतहसे औसत दर्जेकी ऊँचाई ३००० फुट है। इसका सम्बन्ध उत्तरमें यूनानके पठारसे है और दक्षिणमें इसकी एक-दूसरेके समानान्तर फैली हुई पर्वतश्रेणियाँ 'तनासरिम-योमा'के नामसे प्रसिद्ध हैं जिनकी ऊँचाई ३ हजारसे लेकर ५ हजार फुटतक है।

बर्माके पर्वत तिब्बतके पठारसे निकल कर घोड़ेके सूमके आकारमें उत्तरसे दक्षिणकी ओर फैले हुए हैं। यही कारण है कि सभी मुख्य नदियोंका प्रवाह भी उत्तरसे दक्षिणकी ओर ही है—ये बर्माकी पश्चिमी-उत्तरी और पूर्वी प्राकृतिक स्थलीय सीमाएँ बनाते हैं। उत्तरकी पहाड़ियाँ तो सर्वदा बर्फसे ढकी रहती हैं और इनके एक पारसे दूसरे पार जानेके दर्रे भी १० हजार फुटकी ऊँचाईपर हैं। पूर्वकी कछिन् पहाड़ियाँ, शान पठार, कयिनी (करेनी) पहाड़ियाँ और तनासरिम योमा इन्हींकी शाखाएँ-उप-शाखाएँ हैं।

पेगू योमा (पर्वत) बर्माके हृदयभागमें स्थित है। बर्माका सांस्कृतिक दीप-स्तम्भ श्वेज़ीगऊँ पगोडा और इसका राजधानी-नगर रंगून इसी पर्वतके दक्षिणी छोरपर हैं। यह पर्वत कहीं भी बहुत ऊँचा नहीं है। बर्माकी सुप्रसिद्ध सागौनकी लकड़ी भी इसी पर्वतके वनोंसे सर्वाधिक मात्रामें मिलती है।

बर्माकी मुख्य ४ नदियाँ—एयावडी, छिन्ड्विन (चन्दविन्द) सिट्टौं और तं ल्विं हैं। इनमें एयावडीकी महत्ता सर्वाधिक है। यह तिब्बतसे निकलकर १ हजार मीलकी लम्बाई पार करती हुई रंगूनकी खाड़ीमें गिरती है। बर्माका सर्वाधिक उर्वर भाग इसीकी तराईका है और यही इस देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक पहुँचनेका जलीय मार्ग प्रदान करती है। इसमें लगभग ९ सौ मीलतक जहाजरानी की जा सकती है। बर्माके प्रथम श्रेणीके अधिकांश नगर और बर्मी राजाओंकी अनेक राजधानियाँ इसीके किनारेपर स्थित हैं। इस सरिताको 'बर्माकी जीवनरेखा' भी कहा

जाता है। इसके डेल्टाका क्षेत्रफल प्रायः १० हजार वर्गमील है, जो बर्माका सर्वाधिक समृद्ध एवं उर्वर भाग है।

चन्दविन्द बर्माके उत्तरी-पश्चिमी भागमें स्थित हुकौं-घाटीसे निकलकर पहाड़ियोंके बीचसे बहती हुई पकउकूके पास एयावडी नदीमें आकर मिलती है। इसका प्रवाह इतना तीव्र है कि अधिकांश भागमें जहाजरानी नहीं की जा सकती। इसमें सागौनके कुन्दे बहाकर लाये जाते हैं। जहाँ यह एयावडी नदीमें मिलती है उसके ऊपर केवल ३ सौ मीलके भागमें जहाज चलाये जाते हैं।

सिट्टौं नदी माँडलेसे दक्षिण-पूर्व शान पठारसे निकलकर एयावडी नदीके समानान्तर बहती हुई मर्तवानकी खाड़ीमें गिरती है। अपने उद्गमसे लगभग ३५० मीलके प्रवाहके पश्चात् इसमें ज्वार-भाटे आने लगते हैं और ऊँची लहरें उठती हैं। जब यह मर्तवानकी खाड़ीमें गिरती है उससे पूर्व चौड़ा मुहाना बनाती है। यह मुहाना रंगून और मोलमीन शहरोंके बीचमें बनता है। इस नदीके बहुत ही थोड़े हिस्सेमें जहाज चलाये जाते हैं और शेष भागका उपयोग लकड़ीके बेड़े बहानेके काममें होता है।

तं लिंव नदी भी एयावडीकी भाँति ही तिब्बतसे निकलती है। यह शान पठारके पश्चिमी भागमें उत्तरसे दक्षिण दिशामें बहती हुई मोल्मीनके पास आकर समुद्रमें गिरती है। इसमें प्रायः प्रवाह आते रहते हैं, जो कभी-कभी ६० से लेकर ९० फुटतक ऊँचे उठ जाते हैं। इसमें भी सिट्टौंकी तरह स्थानीय कार्योंके लिए ही नौकाओं और जहाजोंका प्रयोग किया जाता है। शेष भागमें लकड़ियोंके बेड़े बहाकर लाये जाते हैं।

बर्माकी अधिकांश भौगोलिक स्थिति प्रायद्वीपीय होनेके कारण इसके तटीय प्रदेश और टापू भी हैं। पश्चिममें अराकान योमा (पर्वत) और बंगालकी खाड़ीके बीचका तटीय प्रदेश अराकान तट कहा जाता है। फिर, तं लिंव नदीके मुहानेसे प्रारम्भ

होकर तनासरिम योमाके पूर्वमें थाइलैंड और समुद्रके बीचका ४ सौ मील लम्बा तटीय भाग तनासरिम तट कहा जाता है। इस तटीय भागसे थोड़ी दूर अनेक छोटे-छोटे टापू हैं जिन्हें बइ लूम्यो (मरगूइज़) द्वीप कहा जाता है।

बर्माकी झील इस देशकी प्राकृतिक स्थितिके एक विशिष्ट अंगकी पूर्ति सुन्दरताके साथ करती है। सबसे बड़ी झील शान प्रदेशमें 'इनले'की है जिसे 'इनले लेक' कहा जाता है। इस झीलके किनारेके निवासी अपने पावोंसे नौकाएँ खेते हैं जिसे देखते ही बन पड़ता है। दूसरी महत्त्वपूर्ण झील कछिन् राज्यकी है जिसे 'इन्डॉजी' कहा जाता है। इसका क्षेत्रफल १ सौ वर्ग-मील है। यह मोगांग और मचीनाके बीच स्थित है। इनके अतिरिक्त और भी छोटी-छोटी अनेक झीलें देशके विभिन्न भागोंमें हैं, जिनमें मटीला झीलकी महत्ता सर्वाधिक है।

ऐसी है मनोरम, विविध वैभवोंकी आगार एवं वैचित्र्यपूर्ण बर्माकी प्राकृतिक स्थिति।

प्रत्येक देशके जलवायुपर, उसकी भौगोलिक स्थितिका सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। बर्मा २८ से १० अक्षांश और ९३ से १०३ देशान्तर रेखाओंके बीच स्थित है। इसकी ऐसी कटिबन्धीय स्थिति होनेके फलस्वरूप ही यहाँ इतनी प्रचुर मात्रामें वर्षा होती है कि देशका प्रायः तीन-चौथाई भाग बहुमूल्य लकड़ियोंके वनोंसे ढँका रहता है और शेषमें कृषिकार्य अतीव सुगमतासे होता है। इसके तीनों ही मौसम—वर्षा, ग्रीष्म और शरद्—उत्पादनवृद्धिमें बहुत सहायक होते हैं। यह जलवायुका ही प्रभाव है जिससे वर्षामें विपुल मात्रामें चावल, साग-सब्जियों और फलोंके उत्पादन होते हैं तथा यहाँके निवासी कृषि-प्रधान सहज सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।

बर्मामें मध्य मईसे लेकर मध्य अक्तूबरतक दक्षिणी-पश्चिमी

मानसून हवाओंसे वर्षा होती है और यह समय सामान्य रूपसे सम्पूर्ण देशके लिए वर्षा ऋतुका होता है; यद्यपि विभिन्न स्थानोंमें होनेवाली वर्षाकी मात्रामें भारी अन्तर होता है। अराकान और तनासरिमके तटीय प्रदेशों तथा उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रोंमें प्रतिवर्ष १०० इंच और पूर्वी पहाड़ी इलाकेमें ८० इंच वर्षा होती है। दक्षिण-पश्चिमसे जो मानसून हवाएँ उठती हैं उन्हें अराकान योमा रोक लेता है जिसके परिणामस्वरूप वे मध्य बर्मामें यथोचित वर्षा नहीं कर पातीं। इस क्षेत्रमें वर्षभरमें केवल २५ से ४५ इंचतक ही वर्षा होती है और इसे शुष्क कटिबन्ध कहा जाता है।

बर्माका ग्रीष्म-काल केवल तीन महीनोंका होता है। यह फरवरी माससे शुरू होकर अप्रैलमें समाप्त होता है। इस मौसममें डेल्टाका तापमान १०० अंशतक और शुष्क कटिबन्धका इससे अधिक होता है।

शरत्-काल नवम्बरसे जनवरी मासतकका होता है। इस मौसममें दक्षिणी बर्माका तापमान तो ६० अंशतक रहता है परन्तु उत्तरी प्रदेशमें इससे बहुत अधिक ठंढ पड़ती है। डेल्टा और तटीय प्रदेश तो समुद्री हवाओंके प्रभावमें होनेके कारण वर्षभर न अधिक शीतल होते हैं और न गर्म।

बर्माके इस कटिबन्धीय जलवायुका प्रभाव यहाँके पशु-पक्षियोंसे लेकर वनों और फलोंके बगीचोंतकपर पड़ता है। यहाँके जंगलोंमें सामान्य जंगली जानवरोंसे लेकर हाथी, शेर, बबर, चीते, हिरण और सूअर आदि भारी संख्यामें मिलते हैं। बर्माका मयूर तो युगोंसे इसके राष्ट्रीय ध्वजका चिह्न रहता आ रहा है। देशके अनेक क्षेत्रोंमें विविध फलोंके बगीचे मिलते हैं जिनमें नारंगी, नासपाती, आम, पपीता, दुरियन और केले आदि प्रचुर मात्रामें उत्पादित होते हैं। यहाँकी सागौन और शीशमकी लकड़ियाँ अपनी विशेषताओंके लिए विश्व-प्रसिद्ध हैं।

बर्माके निवासी

बर्माकी आदिवासी जातियोंसे सम्बन्धित तथ्योंकी शोध करनेवाले इतिहासकारोंका मत है कि यहाँकी जनजातियाँ उन प्रव्रजकोंकी वंशज हैं जो चिर अतीत कालमें तिब्बत और मध्य एशियासे आकर इस देशमें बसे। उनके मूल स्रोतका केन्द्रविन्दु एक ही था किन्तु कालान्तरमें मुँ खमा (Mon-Khmers), टिबे म्याँमा और थाई-चीनी नामक तीन शाखाएँ हो गयीं। इन्हीं तीनों समूहोंके लोग अब भी एक-न-एक नाम और रूपसे बर्माके आदिवासी जन कहलाते हैं। इतिहासकारोंका यह भी कथन है कि वास्तवमें पूर्वी एशियाके अधिकांश देशों—चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत, थाई और मलाया—की आदिवासी जातियोंके भी मूल उत्स मध्य एशियासे ही हुए थे।

मुँ खमा (Mon-Khmers)—मध्य एशियासे जो प्रथम प्रव्रजक-दल बर्मा आया उसे मुँ कहते हैं। इन्हें आज भी यहाँ उसी नामसे पुकारा जाता है और वे निचले बर्माके कुछ भागोंमें पाये जाते हैं। इनकी संख्या कुछ हजार ही है। खमाका निजी स्पष्ट कोई रूप बर्मामें नहीं दीखता। ये इधरसे ही होते हुए हिन्द-चीनकी ओर गये और वहाँ 'ऐंकोर वाट'में इनके चिह्न मिलते हैं। मुँके अतिरिक्त बर्माकी वऽ, लऽ, पलौं, पले˘, मिऊ, यो, रियंग, पडौं, यिन बो˘ और जयइँ जनजातियाँ इसी प्रथम समूहसे निकली बतायी जाती हैं।

बर्मी (म्याँमा)—प्रथम समूहके पीछे ही पीछे दूसरा दल मध्य एशियासे तिब्बत होता हुआ आया जिसे टिबे म्याँमा कहा जाता

था। इस दलका संघटन 'वर्मी और प्रोटो वर्मी', 'छिन्-कछिन्' और 'लो लो' तीन उपदलोंसे हुआ था। प्रथम दलमें वर्मियोंके अतिरिक्त अराकानी, उवे, मरगूइज़, यांव्ये, गड्डू, फउं, मरु, लसि, असि, नंग, डरु, टौंञो, टमां, यो, मरो˘, छाँदा, म्यांइता, इंता और डनु हैं। दूसरे, उपदलके वंशज छिन् और कछिन्के अतिरिक्त नागऽ, गौरी, और डूलांग हैं। लो लो दलसे निकली जातियाँ लो लो, लीसू या यो यिन, लहु, मुसो, कुरि, को˘ और अको हैं।

छिन् और कछिन्—वर्मी सीमामें प्रवेशके पश्चात् छिन् पश्चिमी पर्वतीय प्रदेशमें चले गये और कछिन् एयावडी नदीके ऊपरी भागके झरनोंके पास त्रिभुजाकार भूमिमें बस गये। लो लो, मेकौंकी घाटीसे होकर नीचे चले आये और उनके छोटे-छोटे झुण्ड पूर्वी किनारोंपर आबाद हो गये। मुख्य दल जिनमें बर्मी और प्रोटोबर्मी थे, छिट-फुट कुछ लोगोंको यत्र-तत्र छोड़ता हुआ दक्षिणकी ओर चला आया।

शान-थाई—प्रव्रजकोंका तीसरा प्रवाह जिनमें मुख्यतया थाई और चीनी थे १२ वीं और १४ वीं शताब्दियोंके बीच हुआ। ये यूनानसे आये जहाँ इन्होंने ७ वीं शताब्दीसे ही नां छो राज्यकी स्थापना कर रखी थी। इस दलके आगमनसे पूर्वके आगन्तुक आपसमें इस प्रकार घुलमिल गये थे कि एक ही समूहके व्यक्ति प्रतीत होने लगे थे। उनके घुलमिल जानेका माध्यम बौद्धधर्म था। सबके संस्कार और आचार-विचार तथा रस्म-रिवाज एक ही मतके सिद्धान्तोंपर अवलम्बित होनेके कारण उनका घुलमिल कर एक ही जनजाति निर्मित कर लेना सहज था, परन्तु तीसरे प्रवाहमें आये जन पृथक् ही रहने लगे। शां, कयिन, शां म्यांमा, शां टयउ, टौंदू और थाई उन्हींके वंशज हैं।

ईसाकी १४ वीं शतीसे लेकर १९ वीं शताब्दीके मध्यतक, जब बर्मापर ब्रिटिश आधिपत्यका प्रभाव पड़ने लगा, पर्वतीय जातियोंको छोड़कर यहाँके सभी वर्गोंके निवासी परस्पर इस प्रकार घुलने-मिलने लगे थे कि उनके अधिकांश सांस्कारिक भेद मिटते-से जा रहे थे। उस समयतक यहाँ केवल बौद्ध आदर्शोंके प्रचार हो रहे थे और इस भाँति सभी एक ही विचारधारासे आप्लावित होकर एक ही जनसमुदायका संघटन करने लगे। सबके एक ही संस्कार थे और एक ही लिखित भाषाका वे सभी प्रयोग करते थे।

बर्माके नामकरणके सम्बन्धमें बताया जाता है कि ईसासे पूर्वकी ६ ठीं और ८ वीं शताब्दियोंके बीच धातुपत्रों और शिला-खण्डोंपर खुदे कुछ ऐसे उल्लेख प्यी (प्रोम)के पास प्राप्त हुए थे जिनसे इस नामका पता चला। इन लेखोंके आधारपर पता चलता है कि प्यीके पास एक और नगर था जिसे तयेखिट्टया (श्रीक्षेत्र) कहा जाता था। आजकल बर्माकी मुख्य जातियाँ खास बर्मियोंके अतिरिक्त शां, कथिन, कछिन्, छिन् और कया हैं।

नवीनतम जनगणनाके अनुसार बर्माकी कुल जनसंख्या १ करोड़ ९६ लाख ७७ हजार है। इनमेंसे १९ लाख ८७ हजार शां राज्यमें, ५ लाख १ हजार कछिन् राज्यमें, २ लाख ५७ हजार छिन् विशेष क्षेत्रमें, ८३ हजार कया राज्यमें और ५ लाख ७८ हजार ३५४ कयिन राज्यमें तथा शेष १ करोड़ ६२ लाख ७० हजार ६४६ जन खास बर्मामें बसते हैं।

बर्माका कुल क्षेत्रफल २ लाख ६१ हजार ७८९ वर्गमील है जिसमेंसे १ लाख ७२ हजार ५०० वर्गमीलमें खास बर्मी बसे हुए हैं। बर्मियों द्वारा आबाद इस क्षेत्रको शुष्क प्रदेश कहा जाता है और इलाकेमें ईसाकी ९ वीं शताब्दीसे इनके बसे रहनेके प्रमाण मिलते हैं। बर्मी राजाओंके प्राचीन राजधानी-नगर, पगां, अयी

(आवा) और मांडले इसी क्षेत्रमें हैं। बर्मी प्रधानतया बौद्धमतावलम्बी हैं और कृषि उनका मुख्य उद्योग है।

मुँ पहले एयावडी (ईरावदी)के डेल्टामें बसे थे और पीछे तनासरिम प्रदेशके त ठऊँ और चइखमी (अमहर्स्ट) जिलोंमें जाकर आबाद हो गये। बर्मियोंकी तरह मुँ भी बौद्धमतावलम्बी हैं।

कयिन (करेन)—मध्य बर्मामें टौंदूसे पूर्व और शां राज्यके दक्षिणी भागमें कयिन विशेषरूपसे आबाद हैं। इसके अतिरिक्त ये तनासरिम और एयावडीके डेल्टा प्रदेशोंमें भी बसे मिलते हैं। कयिनोंको "पर्वतीय" और "समतल भूमिके निवासी" दो श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है। समतल भूमिके निवासी कयिन 'पो' और 'स्ग' नामसे पुकारे जाते हैं और ये ही बहुसंख्यक हैं। ये शां प्रदेशके दक्षिण टौंदूसे पूर्वके क्षेत्रमें और डेल्टा प्रदेश तथा तनासरिम क्षेत्रमें आबाद हैं। अन्य स्थलोंमें पर्वतीय कयिन बसे हुए हैं। बर्माकी आदिवासी जातियोंमें कयिन समुदायके लोग अधिक संख्यामें ईसाई मतके माननेवाले हैं, तो भी, जो संख्या बौद्धमतावलम्बी कयिनोंकी है उतनी संख्यामें ईसाई कयिन नहीं पाये जाते।

शां (शान)—शानियोंकी आबादी बर्माके पूर्वी भागमें शां पठारपर पायी जाती है। इस पठारका क्षेत्रफल ५६,००० हजार वर्गमील है। अंग्रेजोंने शां राज्यके जागीरदारोंको सामन्ती सत्ता प्रदान कर फेडरल (संघीय) नियम चालू कर रखा था, लेकिन १९५९ के अप्रैल महीनेमें जागीरदारोंने अपने सामन्ती उत्तराधिकारको लोकतान्त्रिक नियमोंके पक्षमें त्याग दिया।

छिन्-कछिन्की वर्तमान स्थिति—'कछिन्' प्रधानतया उत्तरी बर्माके भामो और मचीना जिलोंमें तथा हुकौं नदीकी घाटीमें आबाद हैं और 'छिन्' छिंड्विन नदी और आसाम-बंगालकी सीमाके बीचके क्षेत्रमें बसे हैं। इन जातियोंके बहुसंख्यक जन बौद्धमतावलम्बी हैं और इसलिए इनके सम्बन्ध खास बर्माके निवासियोंके

साथ बहुत अच्छे चले आ रहे थे। बर्मी परतन्त्रताके दिनोंमें औपनिवेशिक ब्रिटिश नीतिके कारण परम्परागत चली आती हुई धार्मिक एकतामें भेद पैदा हो गया था। जबसे बर्मा स्वतन्त्र हुआ और ब्रिटिश नीतिका विलयन, तबसे उन प्राचीन सम्बन्धोंको पुनरुज्जीवन मिल गया और वे उत्तरोत्तर सशक्त होते दीखते हैं।

कया—'कयिन' और कयामें साधरणतया केवल नाम और निवासस्थानभरके भेद हैं। ये दक्षिणी शां प्रदेश और कयिन राज्यके मध्यवर्ती क्षेत्रमें खास तौरपर बसे हैं। इस प्रदेशको 'कया-राज्य' कहा जाता है और इसका मुख्य नगर लोयकॉ है, जहाँ स्वतन्त्र बर्माकी सरकारने अन्यान्य सामान्य उद्योगोंके अतिरिक्त विद्युत् शक्तिके उत्पादनका एक बृहत् कारखाना भी खोल रखा है।

बर्माके आदि निवासियोंसे सम्बन्धित कुछ और भी ऐतिहासिक तथ्य हैं किन्तु प्रसंग-विशेषके कारण उनका विवरण आगामी अध्यायमें होगा।

प्रागैतिहासिक बर्मा और भारतीय प्रभाव

बर्मा आज अन्तरराष्ट्रीय रंगमंचपर सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न सार्वभौमके रूपमें विद्यमान है। इसकी जनसंख्या १ करोड़ ९६ लाख ७७ हजारतक पहुँच गयी है और इसका क्षेत्रफल २ लाख ६१ हजार ७८९ वर्गमील है। ईसासे २३१ वर्ष पूर्वका इसका प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। इसकी राजवंशीय परम्परा १०४४ ई० से प्रारम्भ होती है। इसके पूर्वका ऐतिहासिक काल तीन भागोंमें विभाजित रहा है। प्रथम, ईसासे २३१ वर्ष पूर्वसे ५०० ई०; द्वितीय, ५०० ई० से ८०० ई० और तृतीय, ८०० ई० से १०४४ ई० तक।

प्रायः ईसासे २३१ वर्ष पूर्वके आस-पास तिव्बत और मध्य एशियासे वहाँके निवासियोंका प्रव्रजक-दल एयावडी (ईरावदी) और छिंडविन नदियोंकी घाटियोंसे होता बर्मामें प्रवेश करने लगा। जैसा पूर्व परिच्छेदमें उल्लेख किया गया है ये प्रव्रजक अनेक जनजातीय वर्गोंमें बँटे थे। इनमें सर्वाधिक शक्तिशाली समूह प्यू, कयिन और शां जातियोंका था। कहा जाता है कि शां पूर्वकी ओर बढ़ते गये और शां पठारपर बस गये। कयिन सिट्टौं नदीकी तराईको सब भाँति सुखदायी समझकर उसके किनारोंपर बस गये। इन्हींमेंसे कुछ पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्रोंमें जाकर बसे। आज उन्हें भी उन पर्वतीय प्रादेशिक नामोंसे ही सम्बोधित किया जाता है, जहाँ वे आबाद हैं। प्यू एयावडी नदीकी तराईसे होकर ज्यों-ज्यों आगे बढ़े त्यों-त्यों घरबारी होते गये।

यह क्रम ५०० ई० तक चलता रहा और बर्माके करीव-करीव सम्पूर्ण भागमें कुछ लोग रहने लगे। कालान्तरमें भारतके दक्षिणी-

पूर्वी किनारोंके निवासियोंसे, जिन्हें तेलंग कहा जाता था, बर्मावासियों (प्यू) के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ। तेलंग व्यवसायके सिलसिलेमें एयावडीके डेल्टा प्रदेशमें आते और अस्थायी तौरपर रहते थे। इनका आना और कुछ कालतक रहना डेल्टा क्षेत्रके निवासियोंके साथ सम्पर्क स्थापित होनेका कारण बनता गया।

इस समयतक भारतमें बौद्धधर्मका इतना अधिक प्रचार हो चुका था कि एशियाके अन्य देश भी उससे प्रभावित होने लगे, और बर्मा उससे अछूता नहीं रह सकता था। इस प्रकार जो यात्री भारतसे बर्मा आते थे वे कुछ धार्मिक सन्देश भी दे जाते थे।

एयावडीके डेल्टा क्षेत्रमें बसनेवाले प्यू ५०० ई० से ८०० ई० के बीच धीरे-धीरे इतने शक्तिसम्पन्न और बहुसंख्यक हो गये कि प्यी (प्रोम)को उन्होंने अपना मुख्य नगर स्थापित किया और वहाँ उनकी प्रमुखता रहने लगी। उनका व्यवसाय तेलंगोंके साथ बढ़ने लगा। इन्हीं दिनों तेलंगोंके बर्मा-प्रवेशमें भी इतनी वृद्धि हो गयी कि वे त ठऊँके आस-पास बड़ी संख्यामें रहने लगे और उसे अपना मुख्य नगर बना लिया। भारतसे आते समय वे भारतीय संस्कार और धर्म भी साथ लाये जिसे आगे चलकर सभी आदिवासियोंने ग्रहण किया।

जो कुछ ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है उसके आधारपर बताया जाता है कि तब डेल्टा क्षेत्रके कुछ पुराने नगरोंके नाम भी भारतीय थे जैसे पेगूको 'उषा' तथा 'हंसावती' कहा जाता था। शनैः-शनैः सम्पूर्ण तनासरिम क्षेत्र तेलंगोंसे आबाद हो गया और इनके आगमनसे पूर्व ही आकर बसी हुई मंगोल जातियोंसे इनका मिश्रण होनेके फलस्वरूप एक नयी जातिका प्रादुर्भाव हुआ जिसे तलाइंग (मुँ) कहा जाने लगा।

इन तलाइंग (मुँ) के वंशजोंकी बर्माके एक-न-एक भागपर शासनपरम्परा शताब्दियोंतक चालू थी किन्तु आज तो कहीं

भी उनकी सत्ता कौन कहे उनके नामोनिशान भी ढूँढ़नेपर ही मिलते हैं। अन्तिम बर्मी राजवंशके संस्थापक राजा अलांगफयाकी आवा, सिरियम और पेगूपर की गयी भीषण चढ़ाइयोंमें ये बहुसंख्यक या तो मारे गये या देश छोड़कर थाईलैंड (श्याम) भाग गये। जो शेष रह गये थे वे समय-समयपर विद्रोहपर भी तुल जाते थे। परिणामस्वरूप शासकों द्वारा उनका दमन किया गया और अन्ततः वे नामशेष रह गये।

अब तो स्वतन्त्र बर्माकी सरकारने ऐसी वैधानिक व्यवस्था कर दी है कि इनका इस नामसे सम्बोधन करना जुर्म माना जायगा अतएव इन्हें 'मुँ' पुकारा जाता है। यह विशेष कारण है कि इसके पूर्वके 'बर्माके निवासी' अध्यायमें यहाँकी जातियोंके नाम गिनाते हुए केवल 'मुँ'का ही समावेश लाया गया है, तलाइंगका नहीं। पुस्तकके अगले परिच्छेदोंमें दोनों ही नाम, एक कोष्ठकमें और एक बाहर, दिये गये हैं।

सम्प्रति अराकान, कयिन और शां आदि राज्योंकी भाँति ही मुँ भी अपने लिए पृथक् राज्यकी माँग कर रहे हैं। ये पेगू, त ठऊँ और मोल्मीन जिलोंमें यत्र-तत्र बसे हुए हैं। इनकी माँग है कि ये सभी जिले मुँ राज्यके अन्तर्गत कर दिये जायँ। डाक्टर आर० एल० सोनीकी पुस्तक 'दी बर्मीज एरा'पर अपने विचार प्रकट करते हुए ऊ नूने एक जगह लिखा है कि "लेखक कुछ सांस्कृतिक आधार ढूँढ़नेमें सफल हुआ है। पुस्तक पढ़नेसे यह प्रभाव पड़ता है कि देशकी ऐसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रही है जो उज्ज्वल भविष्यके लिए प्रेरणास्रोतका कार्य कर सकती है। लेखककी तरह मेरा भी यह विश्वास है कि ऐतिहासिक तथ्यों-तक पहुँचनेके लिए लोक-कथाओं और जनश्रुतियोंका गहन अध्ययन और मन्थन आवश्यक है।"

बर्मामें ऊ नूका व्यक्तित्व एक राष्ट्रीय नेताका ही नहीं है

बल्कि एक मूर्धन्य बर्मी साहित्यकारके रूपमें भी वे समादृत हैं। आपके उपर्युक्त उल्लेखके आधारपर यही कहा जा सकता है कि बर्माकी जनजातियोंकी प्रारम्भिक स्थिति और उनपर पड़ी सांस्कृतिक छापके इतिहासके विषयमें अभी अनुसन्धानकी आवश्यकता है।

बर्मी-संवत् पुस्तकके 'दी क्वेस्ट' (खोज) शीर्षक प्रथम परिच्छेदमें ही डाक्टर सोनीने स्वयं इस प्रकार लिखा है—"यह देखकर सचमुच ही आश्चर्य होता है कि जिस समय बर्माके दो महान् पड़ोसी राष्ट्र, भारत और चीन पूर्ण विकसित अवस्थामें थे, उनके विकासकी क्रमबद्धता साफ-साफ पायी जाती है; बर्मा प्रागैतिहासिक सुसुप्तावास्थामें था। 'प्रागैतिहासिक' कहनेका सचमुच यह तात्पर्य नहीं है कि यहाँ ऐसा अन्धकारयुग था कि जिसका कोई इतिहास ही न हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि उस युगकी स्थितिकी जानकारी नहीं प्राप्त की गयी है। सम्भव है कि और अनुसन्धान तथा शोध करनेपर वह समय देशके इतिहासका 'स्वर्णकाल' समझा जाय।"

डाक्टर सोनीके ये विचार उस प्राचीन बर्मी इतिहासके विषयमें दिये गये हैं जिसका कोई चिह्न नहीं मिलता। ज्ञात-इतिहासकालीन बर्मापर पड़ी सांस्कृतिक छापके सम्बन्धमें अनेक उल्लेख मिलते हैं। इनमेंसे एकका प्रासांगिक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री एच० ई० हार्वे, आई० सी० एस०, अपनी पुस्तक 'आउट लाइन आफ बर्मीज हिस्ट्री'में लिखते हैं—

"बर्मी यद्यपि मंगोलियन जातिसे निकले हुए हैं, किन्तु उनकी कोई भी परम्परा मंगोलोंसे नहीं मिलती-जुलती, प्रत्युत भारतीयोंसे मिलती-जुलती है। बर्मियोंके प्रारम्भिक इतिहास-सम्बन्धी सामग्री पढ़नेसे मालूम होता है कि वे उत्तर-

भारतमें रहनेवाले और बुद्धके समगोत्रियोंके वंशज शाक्यवंशीय थे। उनके यहाँके पौराणिक आख्यान और कहानियाँ बहुलांशमें भारतीय मूलसे सम्बन्ध रखती हैं। जिस प्रकार हिन्दचीनके शहरोंके दो नाम हैं, एक स्वदेशीय दूसरा भारतीय तथा जैसे मध्य-यूरोपमें लैटिन गिरजाघरोंने यह फैशन बना दिया था कि प्रत्येक नगरका एक नाम रोमन रखा जाय चाहे वहाँ रोमन रहें हों या नहीं, उसी तरह हिन्दुओंके आगमनके कारण बर्मी स्थानोंके संस्कृत और पाली नाम रखनेका चलन-सा हो गया। कुछ ऐसे नाम तो निश्चित ही मूल स्थानसे आगमनके कारण पड़े। जैसे पेगूका पुराना नाम 'उषा' है। यह वैसा ही नाम है जैसे उड़ीसा। उड़ीसासे पेगूपर शासन किया गया था। बर्मियोंकी वर्तमान परम्पराएँ भारतीय हैं। उनकी अपनी मंगोलियन परम्पाएँ विस्मृत हो चुकी हैं। उस वर्गके लोग जो पढ़ और लिख सकते थे और जो अपनी परम्परा जीवित रख सके, वे केवल शासकवर्गके 'हिन्दू' भारतीय थे।''

इस भाँति यहाँकी प्रमुख जाति 'बर्मी'के मूल और उसके संस्कारोंके इतिहासकी बाबत श्री हार्वेके इस उल्लेखको मान्यता देना सर्वथा युक्तिसंगत लगता है।

श्री हार्वेके विचारोंकी पुष्टिमें अपनी ओरसे भी दो शब्द लिखना अपेक्षित प्रतीत हो रहा है। भारतीय हिन्दू संस्कारों और बर्मी संस्कारोंपर जब तुलनात्मक दृष्टि डाली जाती है तो बर्मियोंके अनेक संस्कार, कहीं सुलझे रूपमें और कहीं विकृत रूपमें, समान मिलते हैं।

हिन्दुओंने चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—माना है। ब्रह्मचर्याश्रमीका उपनयनसंस्कार जिस प्रकार हिन्दुओंके यहाँ होता है उसी प्रकार बर्मियोंमें भी प्रव्रज्या होती है। भेद केवल दो हैं। हिन्दुओंके यहाँ यह संस्कार अधिकांशतः

अब औपचारिक रह गया है, वय आदिका कोई विचार नहीं है, परन्तु वर्मी इसका खयाल रखते हैं। दीनसे दीन वर्मी भी अल्पवयमें ही अपने बच्चोंका उपनयनसंस्कार (प्रव्रज्या) करता है। हिन्दू ब्रह्मचारी संस्कारके समय वहीं थोड़ा घूम लेता है और जब उसकी झोलीमें कुछ पड़ जाता है तो वापस हो जाता है, किन्तु बर्मियोंमें यह बात नहीं है। इनका ब्रह्मचारी प्रव्रज्याके पश्चात् निश्चय ही गुरु-गृह जाता और वहाँ कुछ कालतक विद्याध्ययन करता है। नैष्ठिक ब्रह्मचारीका जीवन व्यतीत करता हुआ विद्याध्ययन करके वापस आता है। कितने ऐसे भी होते हैं जो आजीवन वहीं रह जाते हैं और गृहस्थाश्रममें वापस आते ही नहीं।

बर्मी बौद्ध मठाधीशोंकी स्थिति हिन्दू पुरोहितोंकी-सी है। इनका वैसा ही सम्मान है और वैसी ही जीविका। वस्त्रभेद जरूर है। हिन्दू पुरोहित गृहस्थाश्रमी कोई भी वस्त्र धारण कर सकते हैं, परन्तु बौद्ध भिक्षु केवल काषाय वस्त्र ही। इस तरह यह भी कहना अनुचित न होगा कि हिन्दू संन्यासियों और मठाधीशों और बौद्ध भिक्षु तथा मठाधीशोंके जीवनमें भी अधिकांशतः साम्य है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, संन्यासी मठाधीश हिन्दू-धर्मानुयायी होते हैं और भिक्षु-मठाधीश बौद्धधर्मानुयायी। दोनों ही धर्म (हिन्दू और बौद्ध) एक ही क्षेत्र (भारत) में पैदा हुए और पले अतएव इन दोनोंके व्यावहारिक स्वरूपमें साम्य होना स्वाभाविक है।

बौद्ध धर्म-ग्रन्थ पाली भाषामें लिखे गये हैं, जो भाषा ईसासे पाँच सौ वर्षों पूर्व भारतकी आम बोल-चालकी भाषा थी और जिस भाषामें भगवान् तथागत (बुद्ध) उपदेश करते थे। अर्चन-पूजन, विनयके स्तोत्र भी इसी भाषामें लिखे गये थे। उनका अस्तित्व अबतक यहाँ अक्षुण्ण है। बर्मी भाषाकी लिपि भारतकी एक प्राचीन ब्राह्मी लिपि है।

इन सबके अतिरिक्त बर्माके सांस्कृतिक दीपस्तम्भ श्वेज़ी गऊँ पगोडाकी गगनचुम्बी स्वर्णिम शिखा तो मानो दोनों देशोंके निवासियोंका आह्वान करती हुई उन्हें सतर्क रहनेका संकेत देती है।

श्वेज़ी गऊँका इतिहास निर्दिष्ट करता है कि ईसासे ५८५ वर्ष पूर्व 'तापुसा' (तफउत्ता) और 'वलिका' नामक द्वय बन्धु तथागत बुद्धके जीवनकालमें भारतके उत्कल प्रान्तमें गये और वहाँ वे उनकी ख्याति सुनकर जब दर्शनार्थ उनके समक्ष पहुँचे और पूजन अर्चन आदिके पश्चात् आशीष लेकर विदा होने लगे तो तथागतने प्रसन्न होकर अपने सिरके आठ सुनहले बालोंको आशीर्वादके लाक्षणिक रूपमें उन्हें दिया और उन युगल बन्धुओंने रंगून वापस आनेपर कुछ काल पश्चात् उन्हीं बालोंको एक छोटे पगोडामें रखकर वर्तमान महान् श्वेज़ी गऊँका शिलान्यास किया गया।

भारतवर्षमें सदियोंतक बौद्ध धर्मके अंकुरित, पल्लवित और प्रसारित होनेके बाद ८०० ई० के आस-पास वहाँ ब्राह्मण धर्मने पुनः अपना स्थान प्राप्त करना शुरू किया और बौद्ध धर्मका पलायन आरम्भ हो गया। इस धार्मिक विद्रोहके फलस्वरूप बहुसंख्यक बौद्धमतानुयायी त्राणके लिए भारतसे बर्मामें प्रवेश करने लगे। वे इधर भारतसे दक्षिणी पूर्वीय तटीय प्रदेशसे एयावडीके डेल्टामें आकर बस गये तो उधर आसामसे होते हुए उत्तरी पूर्वीय पर्वतीय मार्गसे छिंड्विनकी घाटियोंसे होकर आगे बढ़े। डेल्टा प्रदेशमें तठऊँके आस-पास बसनेवालोंमें तब इन्हीं पलायित बौद्धमतानुयायियोंकी संख्या सर्वाधिक थी जो पीछे 'तलांइ' (मुँ) नामसे सम्बोधित होने लगी और जिनकी विविध स्थितियोंका विवेचन इसी परिच्छेदमें पहले किया जा चुका है।

आसामी पर्वतीय मार्गसे जो दल बर्मामें आया उसके साथ आनेवाले बौद्ध धर्मका रूप अनेक दृष्टियोंसे विकृत हो गया था।

ये अनेक भाँतिके योगों और तन्त्रों-मन्त्रोंमें विश्वास करनेवाले थे। इसे अयीज़ी (अरीधर्म) कहा जाने लगा।

इस प्रकार बर्माका उत्तरी और उत्तरी-पश्चिमी भाग 'अरी' मतानुयायियोंका कहलाने लगा और दक्षिणका डेल्टा तलांइ (मुँ) निवासियोंका। ८०० ई० तककी बर्माकी प्रागैतिहासिक स्थिति और बर्मी जन-जीवनपर पड़े भारतीय प्रभावोंके ये चित्रांकन हैं।

इतिहासका श्रीगणेश

सन् ८०० ई० तक तलांइ तथा 'अरी' के सम्बन्ध शान्तिपूर्ण पाये जाते हैं। वे युद्धक चरित्र प्रदर्शित करते नहीं दीखते।

प्रथम बर्मी राजवंशका श्रीगणेश १०४४ ई० में हुआ और ८०० ई० से १०४४ के बीचका समय अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनोंका था। प्यू और तलांइमें झगड़े होने लगे थे। परिणामस्वरूप ८४९ ई० में तलांइने प्यू-अधिकृत प्रोम किलेपर कब्जा कर लिया। इस लड़ाईमें पिं ब्या नामक प्यू प्रमुख मारा गया और वे एयावडीकी घाटीसे होकर ऊपरकी ओर बढ़ने लगे। कुछ वर्षों बाद प्यूने पगानमें दूसरे बड़े दुर्गकी स्थापना की और इस भाँति प्रमुख कायम रखनेकी परम्परा चालू रही। ९६० ई० में औं ऊ सॉ यहॉ नामक उनका प्रमुख बड़ा प्रतापी निकला। उसने उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रसे अरी भिक्षुओंको बुलाया और अरीधर्मकी दीक्षा ली। इस प्रमुखकी हत्या इसके एक ताम्बूल-वाहक बालक कुँज़ो चौं फ्यूके हाथों हो गयी। यह बालक अपने मालिककी हत्या कर स्वयं सिंहासनारूढ़ हो गया। लेकिन उसने औं ऊ सॉ यहॉके दो बेटोंको राजमहलमें ही रहनेकी अनुमति दी। ये पुत्र जब बड़े हुए तो ये भिक्षु बन गये और उन्होंने एक बौद्ध मठका निर्माण किया। मठके तैयार होनेके बाद इन्होंने कुँज़ो चौं फ्यूको आशीर्वाद देनेके लिए आमन्त्रित किया और जब वह आया तो उसे बलात् भिक्षु बना दिया। इस प्रकार औं ऊ सॉ यहॉके बेटे प्रमुखकी गद्दीके मालिक हो गये। कुछ वर्षों बाद उनमेंसे एककी मृत्यु हो गयी और एक जिसका नाम सउ ग्डे था, जीवित रहा। १०४४ ई० में सउ ग्डेके सामने दूसरा संकट उप-

स्थित हो गया। कुँज़ो चौं फ्यूने जिस प्रमुखकी हत्या कर, सिंहासनपर बलपूर्वक कब्जा कर लिया था उसका बेटा अनोयठा जब बड़ा हुआ तो उसने बापके जबरन भिक्षु बनाये जानेका बदला लेना चाहा और चढ़ाई कर सउ ग्डेको मार डाला। अनोयठाने अपने पितासे गद्दीपर बैठनेके लिए अनुरोध किया किन्तु वृद्धावस्था आ जानेके कारण पिताने उसे अस्वीकार कर दिया और यहीं, १०४४ ई० से अनोयठाका शासन-काल प्रारम्भ हुआ।

पगान राजवंश और अनोयठा (अनिरुद्ध)

(१०४४-१०७७)

बर्मी राजवंशोंके नामकरण अधिकांशतः उनके राजधानी-नगरोंके नामके साथ किये गये हैं। प्रोमपर तलांइ (मुँ) सत्ता स्थापित होनेके पश्चात् वहाँसे भागकर जो प्यू पगान आये थे उन्होंने इस नगरको अपनी राजधानी बनाया और उसी समयसे पगान वंशकी नींव पड़ी। इस वंशका सर्वप्रथम राजा अनोयठा १०४४ ई० सिंहासनारूढ़ हुआ। उक्त राजासे प्रारम्भ होकर १२८७ ई०तक सॉलू, चां सित्ता, अलौं सितू, नरऽतू, नरातिंखा, नरपातिसितू, ठिलों मिंलो, च्यासा, ऊ जाना और नरातीहापते ग्यारह राजाओंने राज किया। १२८७ ई०से १२९८ ई० तक खास पगान और पगानसे प्रोमतककी भूमिपर यद्यपि नरातीहापतेके बेटोंका शासन था परन्तु वे चीनी सरकारकी छायामें काम करते रहे। यह समय पगान राज्यके लिए विप्लवका था। सम्पूर्ण राज्य कई छोटी-छोटी जागीरोंमें बँट गया था और जागीरदार परस्पर लड़ाई-झगड़ोंमें लगे रहते थे। चीनियोंने शां अधिकारियोंको प्रशासकीय कार्योंकी देख-रेखके लिए नियुक्त किया था जिसके परिणामस्वरूप शां प्रभाव बढ़ता गया और अधिकांश शां परिवार, पगान तथा डेल्टा क्षेत्रमें आकर बस गये। बर्मापर शानी प्रभाव बढ़नेका यह पहला अवसर था।

प्यू जातीय जनताका पगान स्थित प्रमुख औं ऊ सॉ यहाँ था जिसकी हत्या कर अनोयठाका पिता कुँजो चौं प्यू गद्दीपर बैठा। इससे पूर्वके परिच्छेदमें जैसा उल्लेख किया गया है,

कुँज़ों चौं फ्यूने औं ऊ सॉ यहॉके दो बेटोंको राजमहलमें ही रहनेकी अनुमति दे रखी थी। जब ये बड़े हुए, तो एक बौद्ध मठका निर्माण कर कुँज़ो चौं फ्यूको मठ-प्रवेशके समय अशीर्वाद देनेको बुलाया और उसे जबर्दस्ती भिक्षु (साधु) बनाकर मठमें ही बन्दीकी भाँति रहनेके लिए विवश किया। कालान्तरमें औं ऊ सॉ यहॉके एक बेटेकी मृत्यु हो गयी और दूसरा सउ ग्डे शेष रहा। अनोयठा बापको बलपूर्वक बन्दी बनाये जानेका बदला लेनेकी फिक्रमें लगा रहा और कुछ काल पश्चात् १०४४ ई० में उसने सउ ग्डेपर चढ़ाई की और उसे मार डाला। तबसे अनोयठाका शासनकाल शुरू हुआ।

प्यूका अन्यान्य जन-जातियोंके साथ आन्तरिक सम्बन्ध बढ़ना स्वाभाविक था और इस मिश्रणके फलस्वरूप १०४४ ई० तक एक नयी जातिका प्रादुर्भाव हो गया जिसे आगे चलकर बर्मी कहा जाने लगा। इस प्रकार जब अनोयठाका शासन शुरू हुआ तो प्यू बर्मी कहलाने लग लये थे। अतएव अनोयठाको प्रथम बर्मी राजा कहना चाहिये। अनोयठाके राज्यका विस्तारक्षेत्र उत्तरसे दक्षिण २०० मील लम्बा और पूर्वसे पश्चिम ८० मील चौड़ा था। मइटिलऽ, मांडले, म्यिन् जाँ, चौसे, यमेदिन, जगांइ, पकउक्कू और मिन् बू इस राजसत्ताके अन्तर्गत आते थे।

अनोयठाके राजगद्दीपर बैठनेके समय उसका एक पुत्र सॉल्लू था किन्तु उसकी महत्त्वाकांक्षा किसी राजवंशमें विवाह करनेकी हुई इसलिए उसने पंचकल्याणी नामक भारतीय राजकुमारीसे शादी की। उसके बाद उसका पुत्र चां सित्ताका जन्म हुआ जो बड़ा ही बहादुर निकला। मो शानियोंके विरुद्ध संघर्ष करनेमें चां सित्ताने महान् ख्याति अर्जित की। दरबारमें उसकी प्रशंसा बढ़ती देखकर सॉल्लू उसके प्रति ईर्ष्या रखने लगा।

अनोयठाके मस्तिष्कमें १०५६ ई० तक युद्धकी योजनाएँ नहीं

आयीं और प्रजा शान्तिमय जीवन बिताती रही। उसकी इच्छा केन्द्रीकरणकी नीति चरितार्थ करने की थी जिसमें वह सफल भी रहा। उसने राज्यको अनेक जिलोंमें विभाजित कर, अधिकारी नियुक्त किये जो प्रशासकीय कार्य देखते और भूमि-कर वसूल करते थे। इतिहासकारोंका कहना है कि भूमि-कर जमीनकी उपजपर लगाये जाते थे। इस प्रकार अनोयठाकी यह केन्द्रीकरण नीति, जो स्वयं उसके द्वारा संचालित होती थी, अपने ढंगकी नवीन और निराली थी। भूमिकी उपज बढ़ानेमें भी अनोयठाकी दिलचस्पी थी। उत्पादनवृद्धिके साधनोंको बढ़ानेकी दृष्टिसे उसने मईटीलऽ झीलकी मरम्मत की और अनेक नहरें बनवायीं। उसके शासन-कालमें चौसे-क्षेत्रमें धानका उत्पादन इतना बढ़ गया कि उसे 'चावलका बखार' कहा जाने लगा। कहा जाता है कि नहरोंके निर्माण-कार्यका निरीक्षण वह स्वयं करता था। सब प्रकारके ऐसे सफल शासनमें रहनेके कारण प्रजा अनोयठाको श्रद्धा और स्नेहभरी दृष्टिसे देखती थी।

१०५६ ई० से अनोयठामें विस्तार तथा युद्धकी प्रवृत्ति आ गयी और वह आक्रामक युद्ध करने लगा। इन्हीं दिनों शिं अर्हंऽ नामक बौद्ध भिक्षुका उसके दरबारमें पदार्पण हुआ, तभीसे उसकी नीति शान्तिकी नीतिमें बदल गयी। शिं अर्हंऽ तठऊँका एक बौद्ध भिक्षु था। वह १०५६ ई० में अनोयठाके दरबारमें आया। अबतक अनोयठाको बौद्ध धर्मके उस विकृत रूपका ज्ञान था जिसकी जानकारी उसे अरी धर्मावलम्बियोंसे हुई थी। शिं अर्हंऽ द्वारा बौद्धधर्मके विशुद्ध स्वरूपसे परिचित होनेके पश्चात् उसे बहुत प्रसन्नता हुई। वह स्वयं तो बौद्धधर्ममें दीक्षित हुआ ही, उसने अपनी प्रजाको भी धर्मकी दीक्षा देनेके लिए शिं अर्हंऽ से निवेदन किया।

जब अनोयठाने सम्पूर्ण प्रजामें बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके

लिए शिं अर्हंऽसे अनुरोध किया तो शिं अर्हंऽने सुझाव दिया कि धर्म-ग्रन्थोंके अभावमें यह कार्य नहीं किया जा सकता। उन्होंने यह भी कहा कि तठऊँके राजप्रमुखके यहाँ धर्म-ग्रन्थ (त्रिपिटक) हैं और वहाँसे कुछ कालके लिए उधार माँगे जा सकते हैं। अपने धर्मगुरुके सुझावके अनुसार जब अनोयठाने पुस्तकें माँगी तो तठऊँके प्रमुखने इनकार कर दिया। इससे अनोयठाने क्रुद्ध होकर तठऊँपर चढ़ाई कर उसपर अधिकार कर लिया। सभी धर्म-ग्रन्थ पगान उठा ले आये गये और तठऊँका प्रमुख भी सपरिवार बन्दी बनाकर यहाँ लाया गया। तठऊँ निवासी तलांइने बर्मी सत्ता स्वीकार कर ली। अब धर्मप्रचारका केन्द्र पगान हो गया और यह प्रधानता यहाँ सदियोंतक कायम रही। तठऊँका धार्मिक महत्त्व जाता रहा। पगान राज्यका आधिपत्य डेल्टा और तनासरिम क्षेत्रोंपर भी स्थापित हो गया। तठऊँके मुख्य तलांइ कलाकार भी पगान ले जाये गये और इस प्रकार तठऊँकी सांस्कृतिक महत्ता भी लुप्त हो चली। इसी समयसे तलांइ भाषा भी पगानमें व्यवहृत होने लगी जिसकी लिपि पालि थी।

तठऊँ विजयने अनोयठाकी महत्त्वाकांक्षाको अतुलित प्रोत्साहन प्रदान किया और उसके बाद ही उसने अराकानपर भी चढ़ाई कर दी। अनोयठाने तो अरी धर्मको तिलांजलि दे दी थी लेकिन अराकानियोंकी इसमें आस्था बनी रही। अनोयठाके कानोंतक यह बात भी पहुँचायी गयी कि अराकानी मन्त्रों-तन्त्रोंमें विश्वास करते थे और उसके द्वारा वे हानि पहुँचा सकते थे। अनोयठाने इसपर कोई चिन्ता नहीं की। इसके विपरीत उसने इस निश्चयसे अराकानपर आक्रमण किया कि वहाँकी तान्त्रिक शक्तियोंका नाश करके ही छोड़ूँगा और यही उसने किया भी। उसने महाम्य मुनि फया (महामुनि मन्दिर) को ध्वस्त कर दिया। अराकानके शासकको सपरिवार बन्दी बनाकर उन्हें पगान ले आया।

अराकानियोंने अनोयठाकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर उसे शाही कर भेजते रहनेका विश्वास दिलाया।

अनेक शां जागीरदारोंने राजा अनोयठाके साथ मैत्री बनाये रखनेकी शपथ ली और उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। इसपर भी उसने अपने राज्यकी पूर्वी सीमापर ४५ सैनिक चौकियाँ स्थापित कीं जिससे राज्यकी सुरक्षाके प्रति आशंका न रहे। ठीक इसके विपरीत पेगूके प्रमुखको मो शानियोंके सम्मुख बार-बार शिकस्त खानी पड़ती थी। इसलिए इसने शानियोंसे लड़नेके लिए अनोयठासे सन्धि एवं सहायताकी माँग की। अनोयठाने अपने चार वीर सेनापतियोंके नेतृत्वमें लड़ाईके लिए फौजी टुकड़ियाँ भेजीं। इन सेनापतियोंमें उसका बेटा च्यां सित्ता भी एक था। शानियोंका दमन कर दिया गया और इससे प्रसन्न होकर पेगूके राज्यप्रमुखने कृतज्ञताज्ञापनके साकार रूपमें अपनी पुत्री अनोयठाके लिए भेंट भेजी। वह च्यां सित्ताके साथ भेजी गयी। राहमें च्यां सित्ताने राजकुमारीके साथ दुर्व्यवहार किया जिसकी शिकायत जब अनोयठाके कानोंतक पहुँची तो वह अति कुपित हुआ। उसने च्यां सित्ताको बँधवाकर दरबारमें बुलवाया और उसपर भालेका प्रहार किया। दैवयोगसे भाला उस रस्सीकी गाँठपर लगा जिससे च्यां सित्ता बाँध रखा गया था। गाँठ कटते ही वह मुक्त होकर दरबारसे भाग निकला। कालान्तरमें उसने जगांइके एक भिक्षुकी तम्बुलऽ नामक लड़कीसे शादी की। उपर्युक्त घटनाने, इस प्रकार, वीरपुंगव च्यां सित्ताके अनोयठाकी छत्रच्छायामें सेनानीके रूपमें जीवन बितानेके अवसरका अन्त कर दिया।

अनोयठाका धार्मिक जीवन दो कालोंमें विभाजित है—१०५६ ई० से पूर्व अरी धर्मावलम्बीका और उसके बाद विशुद्ध बौद्धमतावलम्बीके रूपमें।

तठऊँपर आक्रमण करनेके परिणामस्वरूप बौद्ध-धर्मग्रन्थ तो

अनोयठाको उपलब्ध हो गये थे लेकिन उसके बाद उसकी आकांक्षाएँ भगवान् बुद्धके दाँतों अथवा बालोंके अवशेषोंकी प्राप्तिकी ओर बढ़ीं। यह सुनकर कि नां छोमें एक धातुकी ऐसी मूर्ति है जो बुद्धके दाँतोंसे सम्बद्ध है, वह वहाँ गया लेकिन नां छोके प्रमुखने उक्त मूर्ति देना अस्वीकार कर दिया।

बादमें सिंहलके राजा प्रथम बाहुसे अनोयठाको भगवान् बुद्धके दाँतोंकी एक प्रतिमूर्ति मिली। उन्हीं दिनों भारतीय क्षेत्रसे कुछ लोगोंने सिंहलपर आक्रमण कर दिया था और प्रथम बाहुने अनोयठासे मदद माँगी। अनोयठाकी कुमुक यहाँसे चलकर राहमें ही थी कि प्रथम बाहुने आक्रामकोंको मार भगाया। इस घटनासे अनोयठा और प्रथम बाहुमें घनी मैत्री स्थापित हो गयी। दोनोंके बीच भेंटोंका विनिमय हुआ और प्रथम बाहुने बुद्धके दाँतका अवशेष भेजा। इतिहासकारोंका कहना है कि उस अवशेषको लेनेके लिए अनोयठा जलमें गया और उसे लाकर पगानसे कुछ मील दक्षिणमें लोकनन्दा नामक बौद्ध मन्दिरमें स्थापित किया। दाँतका यह धातु अवशेष एक रत्नजटित मंजूषामें रखा गया था और अनोयठा इसे सिरपर रखकर स्थापनास्थलपर लाया।

बौद्ध धर्मके प्रचारके लिए अनोयठाने अनेक मन्दिर बनवाये। लोकनन्दा, श्वेमोडो और श्वेज़ी गऊँ इनमें सर्वश्रेष्ठ थे। श्वेज़ीगऊँको पूरा करनेकी उसकी अभिलाषा मनमें ही रही कि वह चल बसा। इस मन्दिरके निर्माण-कार्यका वह निरीक्षण कर ही रहा था कि खबर मिली कि एक गाँवके निवासी जंगली भैंसेके उपद्रवसे आतंकित हैं। वह भैंसेको मारनेके लिए तत्काल दौड़ा हुआ गया किन्तु वहाँ स्वयं ही मौतका शिकार बना। यह घटना सन् १०७७ की है। इस प्रकार १०४४ से लेकर १०७७ तक शासन करनेके बाद पगान वंशके प्रथम पराक्रमी राजा अनोयठाने अपनी इहलीला समाप्त की।

सॉलू (१०७७-१०८४)

सॉलूका जन्म राजा अनोयठाकी पहली रानीसे उसके राजगद्दीपर बैठनेसे पहले ही हुआ था। जब अनोयठाने पंचकल्याणीसे शादी कर ली तो सॉलूके एक सौतेला भाई च्यां सित्ता पैदा हो गया। च्यां सित्ताकी बहादुरीने उसे शाही दरबारमें इतना सम्मानित कर दिया कि सॉलू उससे ईर्ष्या रखने लगा। उसके सौभाग्यसे च्यां सित्ता भयानक भूल कर बैठा। पेगूकी राजकुमारीके साथ, जो अनोयठाके पास पहुँचानेके लिए उसे सौंपी गयी थी, वह ऐसा दुर्व्यवहार कर बैठा जिसके फलस्वरूप उसे भाग जाना पड़ा। इसलिए जब अनोयठा बिगड़ैल भैंसेको मारनेके यत्नमें स्वयं अकालमृत्युका ग्रास बना तो सॉलूको निष्कंटक राजगद्दी मिल गयी। गद्दीपर बैठते ही उसने अपने पिता अनोयठाकी तलांइ (मुँ) वंशीय पटरानी खिन् ऊको अपनी रानी बना लिया।

आधुनिक युगमें तो यह कार्य अत्यन्त निषिद्ध माना जायगा परन्तु तत्कालीन राजाओंमें ऐसी चेतना नहीं थी। वे तो समझते थे कि जिस राजाके वे उत्तराधिकारी हों उसकी रानीसे विवाह करना मानो परम्परागत राजकीय शक्तिका अर्जन करना था।

सॉलूका एक बाल्यकालीन परममित्र याज़ऽ तिजां था। वह एक तलांइ (मुँ) था। सॉलू अधिकांश समय उसके साथ जूआ खेलनेमें बिताता था। इस व्यसनके कारण वह राजकीय गुणोंको अर्जित करनेमें सर्वथा असमर्थ रहा। वह अपने चरित्र और आदतोंको सुधारनेसे भी वंचित रहा। १०७७ में राजगद्दीपर बैठनेके बाद भी वह अपने मित्र याज़ऽ,तिंजांके साथ जूआ खेलता रहता था।

इसी जूएके खेलने सॉल्रूको अपने मित्र याज़ऽ तिंजांके हाथ बन्दी बननेका भी अवसर प्रदान कर दिया। सॉल्रूने एक बार बाजी रखते हुए कहा कि 'यदि मैं यह बाजी हार जाऊँगा तो मेरे खिलाफ विद्रोह कर सकते हो' और दुर्भाग्यसे वह हार ही गया। इसपर याज़ऽ तिंजांने एक बड़ी तलांइ फौज लेकर उसपर चढ़ाई कर दी। कुछ लोगोंने सॉल्रूको अनुमति दी कि वह च्यां सित्ताको सहायताके लिए बुलावे और उसने बुलाया भी। लेकिन उसपर अविश्वास करने लगा। जो युद्ध-योजना च्यां सित्ताने प्रस्तुत की उसे उसने नहीं माना। फलस्वरूप याज़ऽ तिंजांकी सेनाने सॉल्रूको बन्दी बना लिया। भाईका बन्दी बनाया जाना च्यां सित्ताको सहन न हुआ। उसने उसे छुड़ाना चाहा। बन्दी शिविरमें जाकर उसने सॉल्रूको पीठपर लेकर भागनेकी कोशिश की लेकिन सॉल्रू दूसरी और अन्तिम बार पुनः च्यां सित्तापर अविश्वास कर गया। उसने जोरोंसे शोर मचाकर मुक्तिके लिए सहायता माँगी। अब च्यां सित्ताको अपनी जान बचानेकी पड़ गयी। वह भाग निकला। कहा जाता है कि वह एयावडी नदीमें तैरता हुआ पकउकूके पास जाकर निकला। वहींसे वह पगानका शासक घोषित हुआ। इसी बीच इधर याज़ऽ तिंजांने सॉल्रूको कत्ल कर डाला और इस नाटकीय रीतिसे च्यां सित्ताका शासनकाल १०८४ ई० से प्रारम्भ हुआ।

च्यां सित्ता (१०८४-१११२)

च्यां सित्ता राजा अनोयठाका दूसरा पुत्र उसीकी दूसरी रानी अराकानी राज्यकन्या पंचकल्याणीसे उत्पन्न था। अनोयठाके राज-सिंहासनपर बैठनेके बाद च्यां सित्ताका जन्म हुआ था। च्यां सित्ताके व्यक्तित्वमें राजवंशकी सभी चारित्रिक विशेषताएँ थीं। युद्ध-क्षेत्रकी निपुणता तो मानो वह जन्मसे ही लेकर आया था। पेगूके राजप्रमुखकी सहायतामें मो शानियोंके विरुद्ध लड़ते हुए उसने ऐसी रणचातुरीका परिचय दिया था कि उसकी ख्याति चारों ओर फैल गयी। इस बातकी पूर्ण आशा थी कि अनोयठा अपना उत्तराधिकारी च्यां सित्ताको ही बनाता परन्तु जैसा कि पहले ही संकेत किया जा चुका है कि उसने पेगूकी राजकुमारी खिन् ऊ को पगान अनोयठाके पास ले जाते हुए राहमें उसके साथ अनुचित व्यवहार किया था और जब इसकी सूचना अनोयठाको मिली तो वह बहुत क्रोधित हो गया तथा च्यां सित्ताको बँधवाकर राजदरबारमें बुलवाया। अनोयठाने उसपर भाला फेंककर प्रहार किया। भाला रस्सीकी गाँठपर जाकर लगा जिससे गाँठ कट गयी और च्यां सित्ता दरबारसे भाग निकला।

वह ज़गांइके पास शिं व्यू नामक ग्राममें रहने लगा। यहीं इसने एक भिक्षुकी तम्बुलऽ नामक लड़कीसे शादी की। तम्बुलऽको जीवनसाथी बनानेसे पहलेकी उसकी आत्मकथा द्रवीभूत करनेवाली है। पिताके दरबारसे राजकुमार च्यां सित्ता जब ज़गांइके निकट आया तो इसे जीवन-यापनकी भीषण कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। कुछ कालतक तो वह घोड़े चराने, तथा सईसी जैसा काम करके पेट पालता रहा। एक दिन वह भूख

की ज्वालासे पीड़ित होकर एक शिं ब्यू बौद्ध मन्दिरके नींबूके बगीचेमें आया और मूर्च्छित-सा पड़ गया। उसकी यह दयनीय दशा देखकर तम्बुलऽ वहाँ आयी। यही मिलन दोनोंके एक सूत्रमें बँधनेका कारण हुआ। कालान्तरमें उन्हें एक पुत्र हुआ।

जैसा पहले ही कहा जा चुका है, उसके सौतेले भाई सॉल्लूको, जो पगानका राजा था, १०८४ ई० में उसकी सहायताकी आवश्यकता पड़ी, क्योंकि याज़ऽ तिंजां नामक एक तलांइने उसपर आक्रमण कर दिया था। च्यां सित्ता उसके सहायतार्थ गया भी किन्तु सॉल्लू उसकी योजनाओंको सक्रिय रूप न दे सका जिसके फलस्वरूप वह बन्दी बना लिया गया। यह अवसर च्यां सित्ताके राजगद्दी हस्तगत करनेका था। यदि वह चाहता तो सरलताके साथ ऐसा कर भी सकता था लेकिन इस वीरने आपद्ग्रस्त सौतेले भाईकी आपत्तिसे लाभ उठाना उचित न समझा। इसके विपरीत वह अपने अतुलित साहसिक चरित्रका परिचय देते हुए चुपकेसे उस शिविरमें प्रवेश कर गया जिसमें सॉल्लू बन्दी बनाकर रखा गया था। वह चाहता था कि सॉल्लूको बन्दीगृहसे निकालकर भाग जाय लेकिन सॉल्लूकी सन्देहदृष्टिने उसे फिर धोखा दिया और च्यां सित्ताको देखकर वह शोर करने लगा। उसने सोचा कि च्यां सित्ता उसे मार डालना चाहता है और इसीलिए शोर मचाने लगा। अब च्यां सित्ताको अपनी जान बचानेकी फिक्र पड़ गयी और वह शिविरसे भाग निकला।

राजसत्ताके लिए संघर्ष—इतिहासकारोंका कथन है कि एयावडी नदीमें तैरता हुआ वह पकउक्कूके पास आकर निकला। यहाँके निवासियोंने उसका भव्य स्वागत किया। इसी बीच सॉल्लूको याज़ऽ तिंजांने मार डाला और च्यां सित्ता पकउकूसे ही पगानकी राजगद्दीका उत्तराधिकारी घोषित हो गया। लेकिन इस घोषणासे ही काम नहीं बनता था। उसे याज़ऽ तिंजांसे लड़ाई

करनी थी जो पगानके सिंहद्वारोंपर फौज लेकर खड़ा लोगोंसे आत्मसमर्पणकी माँग कर रहा था।

जब च्यां सित्ता पकउकूसे चला तो सौभाग्यसे उसे शिन पोपा नामक अरी धर्मावलम्बी एक भिक्षुकी सहायता मिल गयी। यह भिक्षु, च्यां सित्ताकी बर्मी सेनाके साथ रहकर अपनी तान्त्रिक शक्तियोंके प्रयोग द्वारा च्यां सित्ताकी सहायता करनेके लिए उद्यत हो गया। वह बर्मी फौजके आगे-आगे अपनी तान्त्रिक शक्तियोंका प्रयोग याज़ऽ तिंजांकी सेनाके विरोधमें करता हुआ चलने लगा। परिणामस्वरूप तलांइ (मुँ)की सेना हार गयी। याज़ऽ तिंजां एयावडीकी तराईसे होता हुआ जब पीछे हट रहा था तभी मार डाला गया। इस प्रकार उस विद्रोहका अन्त हो गया और तलांइ (मुँ) ने च्यां सित्ताकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली।

तलांइपर विजय पानेके पश्चात् ही च्यां सित्ताने पगानकी गद्दीपर बैठनेके लिए राज्याभिषेककी तैयारियाँ शुरू कर दीं। यह पहला अवसर था जब एक बर्मी राजा विधिवत् राज्याभिषेक करके गद्दीपर बैठने जा रहा था। राजगुरु शिं अर्हंऽने राजमुकुट, कृपाण, खड़ाऊँ, चँवर और रजतछत्र द्वारा राजकीय संस्कारोंको सम्पन्न किया। उसके बाद वह बर्मी और तलांइ (मुँ) दोनोंका शासक घोषित किया गया। राज्यके सर्वप्रमुख बौद्धभिक्षुकी देख-रेखमें यह विधि पूरी हुई थी। इसीलिए बौद्ध धर्मकी महत्ता और बढ़ गयी। सामान्य लोगोंको यह प्रतीत होने लगा कि स्वयं राजा इस धर्मगुरुके प्रभावसे वंचित नहीं रहेगा। इसके बाद च्यां सित्ताने एक नये राजमहलका निर्माण किया, जिसकी दीवारोंपर अनेक धार्मिक उपदेश उत्कीर्ण किये गये। ये सभी उपदेश तलांइ (मुँ) भाषामें खोदे गये थे।

राज्यका संघटन—राज्याभिषेकके बाद च्यां सित्ता शान्तिमय जीवन बिताने लगा। पिता द्वारा स्थापित साम्राज्यको सुव्यवस्थित

एवं सुदृढ़ बनानेमें ही वह लगा रहा। उसके शासनकालमें बहुत ही कम विद्रोह हुए। ऐसा अनुमान किया जाता है कि शान, अराकानी, और तलांइ (मुँ) ने तो इसलिए आत्मसमर्पण कर दिया था कि वे च्यां सित्ताके प्रारम्भिक जीवनकी वीरतासे अवगत थे। वे भली भाँति समझ गये थे कि विरोधमें सिर उठानेसे कुचल दिया जायगा। च्यां सित्ताकी शासन-व्यवस्थाकी यह बात विशेष उल्लेख्य है कि वह शूरवीर होते हुए भी अपने राज्य-विस्तारको बढ़ानेका महत्त्वाकांक्षी नहीं था। सम्भवतः वह यह सोच रहा था कि राज्य-विस्तारकी अपेक्षा उसे सुव्यवस्थित रखना अधिक आवश्यक था। केवल दक्षिणी अराकानके प्रमुखने एक बार पगान राज्यकी सीमापर चढ़ाई की थी और उसका च्यां सित्ताने इस कठोरतासे दमन किया कि वह फिर कभी सिर न उठा सका। उसका शेष शासनकाल राज्यमें सुदृढ़ व्यवस्था स्थापित करनेमें ही व्यतीत हुआ।

शासनकी सुव्यवस्थामें उसने अपने पिता अनोयठाका ही अनुकरण किया। उसने राज्यको अनेक जिलोंमें बाँट दिया और जिलाधीशों द्वारा भूमि-करकी वसूलीकी समुचित व्यवस्था की। कृषि उत्पादनमें वृद्धि की। उसने योजनाएँ बनायीं और तदनुसार अनेक नहरें भी खुदवायीं। च्यां सित्ताने अपने सौतेले भाई सॉलूके प्रति जो आदर्श कर्त्तव्यपरायणता, भ्रातृभक्ति और नैतिकता दिखायी उसने उसे प्रजाका अनन्य श्रद्धाभाजन बना दिया। वह पगान वंशका सबसे बड़ा शासक माना गया है।

धार्मिक नीति—च्यां सित्ताको अपने धर्ममें परम आस्था थी। पिताकी भाँति ही वह भी धर्मप्रचारके कार्योंमें लगा रहता था। विशाल बौद्ध मठोंके निर्माणमें भी उसकी गहरी दिलचस्पी थी। उस समय भारतमें बौद्ध धर्मका ह्रास होने लगा था और यत्र-तत्र बौद्धमतावलम्बियोंका संहार भी हो रहा था। इसी कारण

भारतसे बौद्धोंका बर्मामें आगमन हो रहा था। उनमें एक बार, उत्कल (उड़ीसा) प्रान्तके ८ बौद्ध भिक्षु च्यां सित्ताके दरबारमें आये। उन्होंने च्यां सित्ताको उदयगिरि पर्वतपर अवस्थित आनन्द मन्दिरका विवरण बताया जिससे वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसी ढंगका मन्दिर बनवानेका संकल्प किया। यह मन्दिर १०९० में पूरा हो गया। यह इतनी विशेष और विलक्षण रीतिसे बनाया गया था कि एक शताब्दीतक पगांकी विशेष दर्शनीय वस्तुओंमें इसकी गणना होती रही। इसका प्रार्थनाकक्ष शिल्प-कलाके सुन्दरतम नमूनोंसे परिपूर्ण था। इस मन्दिरका आकार उड़ीसाके उदयगिरिपर अवस्थित आनन्द मन्दिर जैसा ही था। वह साधना गुहाकी तरह निर्मित किया गया था जिसमें सूर्यकी किरणें प्रवेश नहीं कर सकती थीं। उसका बाह्य भाग रजत-स्वर्ण-पत्रों एवं माणिकोंसे इस प्रकार मण्डित था कि जब प्रातःकालीन सूर्यकी किरणें निकलतीं तो वह जगमगाने लगता था। प्रार्थना-कक्षमें भगवान् बुद्धकी एक विशाल मूर्ति स्थापित थी, जिसके पाँवोंके पास शिं अर्हऽ और च्यां सित्ताकी छोटी-छोटी मूर्तियाँ रखी थीं।

च्यां सित्ताने अपने पिता द्वारा अपूर्ण छोड़े हुए श्वेज़ीगऊँ मन्दिरका निर्माण पूरा किया और ४० छोटे-छोटे मन्दिरोंको बनवाया। उसने अपनी जन्मभूमिके स्थानमें पर्यांमा और जगांइ-में श्वेडि्वनौं मन्दिरका निर्माण किया। बौद्ध मन्दिरोंके संचालन-के लिए उसने छ गाँव और अन्य मूल्यवान् सम्पत्तियाँ दानमें दीं। अपने राजकीय प्रासादमें उसने अनेक धार्मिक समारोह किये और उसमें प्रजाजनोंको भी सम्मिलित होनेके लिए आमन्त्रित किया।

उत्तराधिकारी—अपने शासनकालमें च्यां सित्ताको एक महान् समस्याका सामना करना पड़ा। उसने अपनी पुत्री श्वेअइँ देका

विवाह सॉल्के लड़के सॉयुसे कर दिया। उस पुत्रीसे एक लड़का हुआ जिसका नाम अलौंसीतू था। च्यां सित्ताके कोई लड़का नहीं था। इसीलिए उसने अपने दौहित्र अलौंसीतूको ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। घोषणा करते हुए उसने प्रजाजनोंको सम्बोधित कर कहा था—"अपने राजाको पहचानो! मैं इसकी ओरसे शासन कर रहा हूँ।"

इतिहासज्ञोंका कहना है कि उक्त घोषणाके बाद तम्बुलऽ पगांसे आईं। च्यां सित्ताने उसे अपनी रानी बनाकर रखा।

अपने उत्तराधिकारीकी घोषणा तो वह अलौंसीतूके लिए कर चुका था जिसमें उसने कोई परिवर्तन नहीं किया। किन्तु तम्बुलऽसे उत्पन्न अपने पुत्रको उसने उत्तरी अराकानका सम्पूर्ण-सत्तासम्पन्न शासक बनाकर भेज दिया। सन् ११९२ में च्यां सित्ताकी मृत्युके पश्चात् अलौंसीतू राजगद्दीपर बैठा।

अलौंसीतू (१११२-११६७)

अलौंसीतू, च्यां सित्ताका दौहित्र था। इसके पिता सॉयु और माता श्वेअइं दे थी। जब वह बालक था तभी उसके नानाने उसे गद्दीका मालिक घोषित कर दिया था। १११२ में च्यां सित्ताकी मृत्युके पश्चात् वह गद्दीपर बैठा। उसके गद्दीपर बैठनेके बाद ही राजधानीके पास एक विद्रोह प्रारम्भ हुआ। उसने इसका सफलतापूर्वक दमन कर दिया। उसके दो पुत्र थे। एकका नाम मिं शिं जो और दूसरेका नरऽतू था।

विद्रोहोंका दमन—शासन-सत्ता हाथमें लेनेके पश्चात् ही अलौंसीतूने विदेशोंका पर्यटन प्रारम्भ कर दिया। वह मलाया, अराकानके टापुओं और भारतके बंगाल प्रान्तके भ्रमणके लिए गया। इस तरह राजधानीसे उसकी अनुपस्थितिके परिणामस्वरूप अनेक विद्रोह होते गये। इन विद्रोहोंका दमन करनेमें उसे अपनी शक्ति लगानी पड़ी। अलौंसीतूने किसी नये राज्यपर आक्रमण नहीं किया। अपने नानाकी भाँति ही वह भी शान्तिप्रिय शासक था। उसे अपने जीवनमें तीन विद्रोहोंका दमन करना पड़ा।

दक्षिणी आराकानके प्रमुख तेमिं गडऊँको च्यां सित्ताने युद्धमें हराया था, इसलिए वह पगां शासकोंसे बदला लेनेकी फिक्रमें रहा करता था। उसने १११४ में पगां राज्यकी सीमापर आक्रमण कर दिया लेकिन उसे इसका कुपरिणाम भोगना पड़ा। अलौंसीतूने उसे युद्धमें हराकर मार डाला। कहा जाता है कि रात्रिमें जब अलौंसीतू सोया हुआ था तो महागिरि शक्तिने स्वप्नमें अलौंसीतूसे कहा कि "तुमने तेमिं गडऊँको कत्ल करके गलती की है।" इसपर अलौंसीतू विचलित हो उठा और

दिवंगत प्रमुखके सिरसे क्षमा-याचना करते हुए उसे एक रत्न-जटित मंजूषामें रखकर टु यिन पहाड़ीपर स्थापित किया। जहाँ इस मुण्डकी स्थापना हुई वहाँ मृत प्रमुखके सम्मानमें प्रतिवर्ष मेला लगानेकी प्रथा चालू कर दी गयी।

१११५ में अलौंसीतूको तनासरिमके एक राजद्रोहका सामना करना पड़ा। इसका भी उसने सफलतापूर्वक दमन कर दिया। इसके बाद तलांइ लोगोंने फिर कभी सिर नहीं उठाया।

१११८ में उत्तरी अराकानके प्रमुखको भगाकर एक दूसरा आदमी शासन करने लगा। इसपर प्रथम प्रमुखने अपने लड़के लेया मिंनौंको अलौंसीतूके पास सहायतार्थ भेजा। लेया मिंनौं अलौंसीतूके दरबारमें विचित्र पोशाकमें आया जिससे वह उसका ध्यान आकृष्ट कर सके। जब उसने प्रवेश किया उस समय अलौंसीतू केश-प्रक्षालन संस्कारमें लगा था और उसे देखकर बड़ा ही असन्तुष्ट हुआ। जब उसने लेया मिंनौंको पास बुलवाया और उसकी करुण-कहानी सुनी तो उसकी सहायता करनेके लिए उद्यत हो गया। फौज लेकर वह उत्तरी अराकान गया और लड़ाईमें शत्रुको मार भगाया। इस प्रकार लेया मिंनौं और उसके पिताको पुनः गद्दी मिली। लेया मिंनौंने अलौंसीतूकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली और उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापनके रूपमें बौद्ध गयाके मन्दिरकी मरम्मत करायी।

सन् १११८ से लेकर ११६७ तक अलौंसीतूने और कोई युद्ध नहीं किया। उसने शेष जीवन शान्तिपूर्ण कार्योंमें बिताया और साम्राज्यको एक सूत्रमें बाँधने एवं सुसंघटित करनेकी ओर ध्यान दिया।

प्रशासन तथा समाज कल्याण—अलौंसीतूको इतिहासकारोंने पगां वंशका एक बुद्धिमान् शासक बताया है। उसे नीति-कुशल राजपुरुषकी संज्ञा दी गयी है। शान्तिप्रियताकी नीतिने उसे

प्रशासकीय कार्योंमें अधिक समय देनेका अवसर प्रदान किया। अपने पूर्वज राजाओंकी भाँति ही उसने भी साम्राज्यको जिलोंमें विभाजित कर दिया था और कुशल अधिकारियोंके माध्यमसे प्रशासकीय व्यवस्था संचालित की थी। कृषि उत्पादन बढ़ानेके लिए अलौंसीतूने भी नहरें खुदवायीं और मइटीलऽ झीलकी मरम्मत की। प्रजा बहुत ही खुशहाल रही और इस कारण—अलौंसीतूको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखती थी। अलौंसीतूने वजन और मापके लिए बाट तथा टोकरियोंकी व्यवस्था चालू की और अनेक कानून लागू किये। उसके द्वारा प्रचलित किये गये कानून आगे चलकर एक पुस्तिकामें संगृहीत किये गये जिसे "अलौंसीतू प्याठऊँ" कहा जाने लगा।

मन्दिरोंका निर्माण—अलौंसीतूको भी अपने वंशके पूर्वपुरुषोंकी भाँति ही बौद्ध धर्ममें अविचल आस्था थी और वह पूजन-अर्चनमें लीन रहा करता था। उसके जीवनके सम्बन्धमें एक जनश्रुति प्रचलित है। कहा जाता है कि पर्यटनके सिलसिलेमें वह एक बार जम्बूद्वीपके सफेद सेबके सुप्रसिद्ध बागके पास पहुँच गया। वहाँ शक्तियोंके प्रभु ताया मिंसे उसकी मुलाकात हो गयी जिसने उसे एक पवित्र "काष्ठ-दण्ड" भेंट किया। अलौंसीतूने इस दण्डकी पाँच मूर्तियाँ गढ़वाकर पाँच देवालयोंमें स्थापित कीं। इनमेंसे चारका निर्माण पकउक्कू जिलेके पो कां चुं नामक स्थानमें किया गया और पाँचवेंका श्वेबो जिलेमें। इन देवालयोंके निर्माणकी भूमिका चुनाव विशिष्ट ढंगसे किया गया था। यहाँ, या तो सफेद हाथी घूमनेके लिए छोड़ दिया जाता और वह जहाँ बैठता उस स्थानपर मन्दिरका निर्माण होता अथवा चिड़िया उड़नेके लिए छोड़ी जाती और वह जहाँ बैठती वह भूमि इसके निमित्त अनुकूल मानी जाती। मिन् बू जिलेमें च्यांगडाया पगोडाका उसने निर्माण किया और उसके बाद ११४४ में

"तापिन्यू" मन्दिरका निर्माण पगानमें किया। इस देवालयके सन्निकट ही इसने श्वेगू मन्दिर बनवाया। इन देवालयोंकी दीवारोंपर पालिभाषामें विविध उपदेश उत्कीर्ण कराये गये। उत्तरी अराकानके प्रमुखने बौद्ध गयाके मन्दिरका जब पुनर्निर्माण सम्पन्न करा दिया तो उसके बाद अलौंसीतूने बौद्ध भिक्षुओंको भेजकर उसकी दीवारोंपर पालिभाषामें ऐसे वचन खुदवाये जो पगां वंशके शासकोंकी शासन-शक्तियोंकी ओर संकेत करते थे।

इसके पूर्व १११५ में उसने एक दूतकी मार्फत नां छोके राजप्रमुखके पास सोना, चाँदी, पुष्प और गज-दन्त भेंट भेजवायी। इन भेंटोंके बदले उसे भगवान् बुद्धके दाँतके अवशेष पानेकी आशा थी। राजा अनोयठाकी भाँति यह भी धार्मिक धातु अवशेषोंके संग्रहका महान् अभिलाषी था लेकिन नां छोके प्रमुखने दाँत देनेसे इनकार कर दिया। बताया जाता है कि अलौंसीतू स्वयं भी इसकी प्राप्तिके निमित्त नां छो गया था परन्तु उसका जाना व्यर्थ हुआ। वहाँसे उसके लौटनेके बाद ही राजगुरु शिं अर्हऽकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद भी उसने राजगुरु पदकी प्रथा चालू रखनी चाही, इसलिए उसने 'पांथागू' से राजगुरुके पदपर रहनेका निवेदन किया।

जीवनके अन्तिम दिन—अपने शासनकालके अन्तिम दिनोंमें अलौंसीतूने पतीछायाकी एक राजकुमारीसे शादी की। राजाका इस नयी रानीके प्रति विशेष अनुराग होना तो स्वाभाविक था ही, उधर रानीका दिमाग भी चढ़ा रहना उतना ही सहज था। एक दिन अलौंसीतूका बड़ा लड़का मिं शिं जो जब अपने पिताके कार्य-कक्षमें उसका अभिवादन करनेके लिए गया तो अपनी सौतेली माँके व्यवहारोंसे असन्तुष्ट होकर उसके प्रति कुछ कर्कश शब्द बोल पड़ा। यह अलौंसीतूको सहन नहीं हुआ और उसने

मिं शिं जोको गिरफ्तार कर दरबारमें मँगा लिया तथा उसे कत्ल करनेका हुक्म दिया। राजाके सलाहकारोंने राजकुमारकी जान न लेनेके लिए अपील की जिसके फलस्वरूप मिं शिं जो निर्वासित कर दिया गया।

अलौंसीतूने औं बिन्ले और तामोक्सो झीलों तथा अनेक बड़ी नहरोंके निर्माण भी सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे कराये।

राजा अलौंसीतूके जीवनके अन्तकी कहानी अतीव कारुणिक है। उसका बड़ा बेटा मिं शिं जो निर्वासित होनेके पश्चात् माण्डलेसे पूर्वके एक गाँव टुण्टोपुटेटका स्वामी बनकर रहने लगा और दूसरा बेटा नरऽतू युवराज बन गया। ११६७ में अलौंसीतू इतने भीषण रूपसे बीमार पड़ा कि उसकी मृत्युके दिन गिने जाने लगे। नरऽतूको यह निश्चय हो गया कि अलौंसीतू अब रोगमुक्त नहीं होगा। इसलिए उसने उसे राजमहलसे हटाकर एक देवालयमें भेज दिया और स्वयं राजा बन बैठा। देवालयके शान्त वातावरणका ऐसा प्रभाव पड़ा कि अलौंसीतू शनैः-शनैः अच्छा होने लगा। पिताकी सुधरती हुई दशाने बेटेको घबड़ा दिया। वह सोचने लगा कि यदि पिता नीरोग होकर वापस आये तो अत्यन्त कुपित होंगे और मुझे उनके क्रोधका सामना करना कठिन होगा। इस खतरेसे बचनेका उसे एक ही उपाय सूझा और वह यह कि "अलौंसीतूकी जीवन-लीला समाप्त कर दी जाय।" इस कुत्सित उद्देश्यसे एक दिन वह मन्दिरमें गया और उसने अलौंसीतूका गला घोंटकर उसे मार डाला। सन् ११६७ में अलौंसीतूके शासनका इस प्रकार अन्त हुआ और नरऽतू राजगद्दीपर बैठा।

नरऽतू (११६७-११७०)

नरऽतू अलौंसीतूका पुत्र था। अपने बड़े भाई, मिं शिं ज़ोके निर्वासनके पश्चात् वह युवराज बना और सन् ११६७ में रोगी पिताकी हत्या कर गद्दीपर बैठा। कदाचित् नरऽतूने यह धारणा बनाकर कि वृद्ध और मृत्युशय्यापर पड़े हुएको मार डालना पाप नहीं है; अपने पिताकी हत्या की थी, ऐसा कतिपय इतिहासकारोंका कथन है।

"नरऽतू अपने पिताकी हत्या कर गद्दीपर बैठा था," इस कुकृत्यका समाचार प्रजामें चारों ओर फैल गया। मिं शिं ज़ोको जब यह खबर मिली तो उससे नहीं रहा गया और पिताका बदला लेने वह सेना लेकर पगांकी ओर चल पड़ा। इधर पगांमें भी नरऽतूके सामने एक गम्भीर समस्या उपस्थित हो गयी थी। राजगुरु पंथागू एक हत्यारेके साथ नहीं रहना चाहते थे। पंथागूका जाना नरऽतू सहन नहीं कर सकता था। उसने मिं शिं ज़ोसे सुलह करा देनेकी पंथागूसे प्रार्थना की और राज-सिंहासन मिं शिं ज़ोके निमित्त छोड़ देनेका वचन दिया। नरऽतूकी बातोंपर पंथागूको विश्वास हो गया। वह मिं शिं ज़ोके पास चल पड़ा। नरऽतू द्वारा भेजा गया सुझाव प्रस्तुत होनेपर मिं शिं ज़ो चुपचाप चला आया और नरऽतूने गद्दी भी छोड़ दी परन्तु सिंहासनपर बैठनेके बाद उसी रातको मिं शिं ज़ोको विष दे दिया गया और वह चल बसा। अब राजगुरु पंथागूका धैर्य छूट गया और वह वहाँसे सिंहल चले गये।

अब नरऽतू अपने जीवनसे एकदम निराश रहने लगा। प्रजा भी उससे अत्यधिक घृणा करने लगी। एक ओर तो वह

प्रायश्चित्त करनेकी दृष्टिसे मन्दिर बनवाने लगा और दूसरी ओर प्रजाको भयभीत करके दबा रखनेके लिए संहारकी नीतिपर तुल गया। यहाँतक कि उसने अपनी सौतेली माँ पतीछायाकी राजकुमारीको भी मरवा डाला। उसने आनन्द मन्दिरके नमूनेका ही दूसरा मन्दिर बनवाया और उसका नाम दमायों मन्दिर रखा। वह घण्टों इस मन्दिरमें बैठकर पूजा करता और भगवान्से निजकृत पापोंके लिए क्षमाकी याचना करता था। ११७० में पतीछायाके प्रमुखने अपने आदमी भेज उसकी हत्या करा डाली। इस तरह नरऽतूकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी।

नरऽतूके अन्तके साथ ही धीरे-धीरे पगां राज्यका अधः-पतन भी शुरू हो गया। उसके शासनकालमें राजमहलमें होनेवाले धार्मिक उत्सव बहुत कम हो गये। वह दो पुत्रों नरातिंखा, और नरापातिसीतूको छोड़कर मरा था। नरातिंखा बड़ा था। इसलिए सन् ११७० में पिताके निधनके बाद वही गद्दीपर बैठा।

नरातिंखा (११७०-११७३)

नरऽतूका ज्येष्ठ पुत्र होनेके नाते उसकी मृत्युके पश्चात् नरातिंखा राजगद्दीपर बैठा परन्तु केवल तीन वर्ष ही शासन कर सका। उसका छोटा भाई नरापातिसीतू विद्रोहियोंका दमन करनेके लिए राजधानीसे बाहर गया हुआ था कि इसी बीच नरातिंखाने उसकी पत्नी वेलुवतीसे विवाह कर उसे अपनी रानी बना लिया। नरापातिसीतूको जब यह समाचार मिला तो उसके क्रोधका पारावार नहीं रहा और उसने ८० आदमियोंको भेजकर नरातिंखाकी हत्या करा डाली। नरातिंखाकी मृत्युके पश्चात् नरापातिसीतू गद्दीपर बैठा।

नरापातिसीतू (११७३-१२१०)

राजा नरऽतूके दो पुत्र थे,—नरातिंखा और नरापातिसीतू। नरातिंखा बड़ा था इसलिए नरऽतूकी मृत्युके बाद वह गद्दीपर बैठा, लेकिन उसने एक महान् भूल की जिस कारण उसके छोटे भाई नरापातिसीतूने उसे मरवा डाला। विद्रोहियोंका दमन करनेके लिए नरापातिसीतू बाहर गया हुआ था और उसकी अनुपस्थितिमें अनुचित एवं अनैतिक लाभ उठानेके कारण उसने उसकी स्त्री वेलुवतीसे विवाह कर लिया। यह समाचार जब नरापातिसीतूतक पहुँचा तो वह आग-बबूला हो गया और उसकी हत्या करनेके लिए उसने ८० आदमियोंको भेजा। इन लोगोंने नरातिंखाको मार डाला और उसकी मृत्युके पश्चात् ११७३ में नरापातिसीतू सिंहासनारूढ़ हुआ।

शासनव्यवस्थामें सुधार—नरापातिसीतू शान्तिप्रिय राजा था। उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति और समय राज्यको प्रगतिपथपर ले जानेमें बिताया। सौभाग्यसे उसे अनन्तसूर्य नामक एक नीतिकुशल मन्त्री मिल गया था जिसने शासनव्यवस्था सुधारनेमें पर्याप्त मदद की। नरापातिसीतू जानता था कि राजमहलमें प्रहरी न होनेके कुपरिणामस्वरूप उसके पिता और बड़े भाई मारडाले गये थे इसलिए उसने शाही महलके चारों ओर प्रहरी रखनेकी बिलकुल नयी प्रणाली चालू की। साम्राज्यपर बाहरी आक्रमण सरलतासे न हो सकें इसलिए उसने सीमास्थलोंपर भी सैनिक चौकियाँ स्थापित कीं। उसने स्थायी तौरपर बड़ी संख्यामें सेनाएँ रखना प्रारम्भ कर दिया ताकि युद्धकालमें संकट न हो। उसके मन्त्री अनन्तसूर्यने 'शपथ-पुस्तिका'के प्रयोगकी नीति चालू की

जिसकी परम्परा आज भी चलती आ रही है। अब भी सम्पूर्ण देशके न्यायालयोंमें इसका प्रयोग होता है। खेतोंकी सिंचाईकी ओर भी नरापातिसीतूका ध्यान रहता था जिससे कृषि उत्पादनमें काफी वृद्धि हुई। प्रजा सुखी और भली प्रकार सन्तुष्ट थी।

धार्मिक और सांस्कृतिक पुनरुत्थान—नरापातिसीतूके सिंहासनारूढ़ होनेके बाद साम्राज्यमें पुनः बौद्धधर्मकी महत्ता बढ़ने लगी। सभी धार्मिक कृत्योंकी परम्परा पुनरुज्जीवित हो गयी। सिंहासनारूढ़ होनेके पश्चात् ही नरापातिसीतूने राजगुरु पंथागूको सिंहलसे वापस बुलाया, और वे आ भी गये, परन्तु वह बहुत दिनतक जीवित नहीं रहे। ११८० में उनका देहान्त हो गया। इसपर राजाने दूसरे भिक्षु उ याजीवऽसे राजगुरुका स्थान अपनानेका अनुरोध किया। उ याजीवऽ एक तलाइं (मूँ) भिक्षु थे और उन्होंने सिंहलकी यात्रा करके काफी ख्याति अर्जित कर ली थी। वे 'सिंहलके प्रथम तीर्थयात्री'की उपाधिसे अलंकृत किये गये थे। उ याजीवऽने जब सिंहलकी यात्रा की थी उस समय चापता नामी एक भिक्षु भी उनके साथ था जिसे धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनके निमित्त वे उसे वहीं छोड़ते आये थे। चापता अपना अध्ययन सम्पन्न करके ११९० में ही पगां वापस आ गये और उन्हें 'सिंहलके द्वितीय तीर्थयात्री'की उपाधि दी गयी। चापताके साथ सिंहलसे चार अन्य भिक्षु भी आये थे जिन्हें राजमहलमें ही रहनेकी अनुमति मिली थी। राजाने चापता और अन्य चार भिक्षुओंको पगांके उत्तरमें रहनेकी स्वीकृति दे रखी थी। वहीं न्यांग-ऊके पास चापता मन्दिर के निर्माणमें भी राजाने सहायता की। इस मन्दिरका निर्माण सिंहलमें बने मन्दिरोंके नमूनेपर किया गया था। सिंहलकी धार्मिक शिक्षासे नरापातिसीतू इतना प्रभावित था कि उसने अनेक अन्यान्य भिक्षुओंको भी वहाँ भेजा।

कुछ वर्षों बाद उ याजीवऽ और चापतामें मतभेद उत्पन्न हो गया। धार्मिक रीतियोंके प्रतिपादनमें दोनोंके विचारोंमें भिन्नता आ गयी। चापता पुरानी रीतियोंके अनुसार धार्मिक कृत्योंका सम्पादन करनेसे इनकार कर गये। वे सिंहलीय रीतिसे इसका सम्पादन करना चाहते थे। अन्ततः ११९२ में नरापातिसीतूने इसके लिए अनुमति दे दी और इसे 'उत्तररीति'की संज्ञा दी गयी तथा तठऊँसे आये हुए शिं अर्हऽ आदि भिक्षुओं द्वारा चालू की गयी प्रणालियोंको 'पूर्वरीति' कहा जाता था। इतिहासकार नरापातिसीतूके शासनकालकी विशेषताओंमें सिंहलीय रीतिके समावेशको विशेष महत्त्व है।

राजा अनोयठाकी भाँति नरापातिसीतूने भी अनेकानेक मन्दिर बनवाये। उसके सबसे बड़े मन्दिर डो पलिन और सुलेमान हैं। उसने मिन्नालांग ज्यांग दे मायाज़िका और चौकपाला मन्दिर भी पगांके पास बनवाया। श्वेबो, मर्गुई, तयेटमऊ, मिंजान और यांग्वे (शॉ-स्टेट) में भी उसने मन्दिरोंके निर्माण कराये।

नरापातिसीतूकी मृत्यु १२१० ई० में हुई। उसके पाँच पुत्र थे। जब वह मृत्युशय्यापर पड़ा हुआ था तो उसने अपने पुत्रोंको मिलजुलकर एकतासे रहनेके लिए कहा। उसकी मृत्युके बाद उसका पुत्र जयतईखऽ सिंहासनका अधिकारी हुआ जिसे आगे चलकर ठीलोमिंलो कहा जाने लगा।

ढीलोमिंलो (१२१०-१२३४)

ठीलोमिंलोका प्रथम नाम जयतइंखऽ था। वह राजा नरापातिसीतूका पुत्र था। १२१० में पिताकी मृत्युके पश्चात् वह गद्दीपर बैठा। मृत्युशय्यापर पड़े हुए नरापातिसीतूने जो कुछ निर्देश किया था उसका पालन करना ठीलोमिंलोने अपने कर्त्तव्य समझा। शेष चारों भाइयोंके साथ प्रेमपूर्वक रहनेका नरापातिसीतूने ठीलोमिंलोको जो अन्तिम उपदेश किया था उसे उसने विस्मृत नहीं किया।

परामर्श परिषद्का संघटन—ठीलोमिंलोने चारों भाइयोंको शासन-व्यवस्थामें सहायता करनेके लिए बुलाया। वे प्रतिदिन सायंकाल एक साथ बैठते और व्यवस्थाओंपर विचार करते। परिणामस्वरूप एक 'सलाहकार परिषद्'का गठन हुआ जिसे ल्हुटो यऊँ कहते थे। इतिहासकारोंका कथन है कि ऐसी परिषद्की प्रथा पहले भी थी परन्तु ठिलोमिंलोके शासनकालमें ही इसका एक निश्चित स्वरूप दिखाई दिया और यह राजसभाका एक विशिष्ट अंग बन गयी। इसके बाद तो इसकी प्रथा तथा परम्परा १८८५ में बर्मी प्रभुसत्ताके स्थानपर ब्रिटिश समान्तशाही स्थापित होनेके समयतक चालू रही। परिषद्के सदस्योंका चुनाव राजा स्वयं किया करता था और वह इसके निर्णयका आदर करता था। इस परिषद्के अधिकारोंको पृथक् वैधानिक रूप इसलिए नहीं मिल सका कि इसके संघटनका सम्पूर्ण विशेषाधिकार राजाको था। वही सदस्योंको चुनता था और जब चाहता था उनकी

सदस्यता भी समाप्त कर देता था। परिषद्के प्रत्येक सदस्यको कुछ विशेष सुविधाएँ सुलभ थीं और जो निर्णय परिषद्में हो जाता था उसका उल्लंघन राजा नहीं करता था।

सन् १२३४ में ठिलोमिंलोका शासनकाल समाप्त हो गया और उसका पुत्र चोज्वा राजगद्दीपर बैठा।

चोज्वा (१२३४-१२५०)

अपने पिता ठीलोमिंलोके पश्चात् चोज्वा राजगद्दीपर बैठा। पिता द्वारा प्रवर्तित सलाहकार परिषद् ल्हुटो यऊँकी नीतिको इसने भी अग्रसर किया। यह परम धार्मिक एवं साधुचरित शासक था। यह धार्मिक लेखोंको लिखता और प्रजामें वितरण करता था। इसने अपने पुत्र ऊ ज़नाके लिए सन् १२५० में गद्दी छोड़ दी।

राजा चोज्वाका शासनकाल बौद्ध धर्मके पुनरुद्धारविषयक कार्योंके लिए विशेष रूपसे प्रसिद्ध है। इसी विशिष्ट कार्यने उसे प्रजाका महान् श्रद्धा-भाजन बना दिया था।

ऊ ज़ना (१२५०–१२५४)

ऊ ज़ना सन् १२५० में अपने पिताके उत्तराधिकारीके रूपमें राजगद्दीपर बैठा । उसका शासनकाल अत्यल्पकालीन रहा । वह आमोदप्रिय राजा था और आखेटका अति प्रेमी । वह अपना अधिकांश समय शिकार खेलनेमें विताता था । १२५४ में शिकार खेलनेके सिलसिलेमें ही वह दुर्घटनाग्रस्त होकर अकालमृत्युको प्राप्त हुआ ।

ऊ ज़ना एक दुर्बल और अदूरदर्शी शासक माना गया है । वह शासन-सम्बन्धी सभी कार्य अपने दीवान याज़ऽतिंज़ांपर छोड़ रखता था । इसका एक कुपरिणाम यह निकला कि दीवान, युवराज तईंग्तूसे द्वेष रखने लगा । वह जानता था कि तईंग्तू एक सूयोग्य युवराज है और राजा बननेपर उसकी एक न चलने देगा । इसलिए वह इस प्रयत्नमें लगा रहता था कि तईंग्तूको गद्दी न मिलकर दूसरे राजकुमार नरातीहापातेको मिले । नरातीहापाते अल्पवय था इसलिए याज़ऽतिंज़ां सोचता था कि उसके गद्दीपर बैठनेसे वही चिरकालतक सर्वस्व बना रहेगा । जैसा इशारा वह करेगा, उसीपर नरातीहापाते चलेगा ।

दैवयोगसे उसे एक बहाना मिल ही गया । एक दिन तईंग्तू दीवानके पीछे-पीछे आ रहा था और जव उसने देखा कि दीवानने युवराजका शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन नहीं किया तो उसने क्रोधातुर होकर उसपर थूक दिया । याज़ऽतिंज़ांने इसकी शिकायत कौंसिलमें पेश की । कौंसिलने फैसला किया कि अभी युवराज होते हुए इसमें इतनी अशिष्टता, और बड़े-बूढ़ोंके लिए सम्मान-भावका अभाव है तो राजा होनेपर तो इसके कार्य असह्य होंगे । इसलिए परिषद्ने नरातीहापातेको सिंहासनारूढ़ करनेका निर्णय किया ।

नरातीहापाते (१२५४-१२८७)

राजा ऊ ज़नाके मन्त्री याज़ऽतिंज़ांको भय था कि यदि युवराज तईंग्तू गद्दीपर बैठेगा तो उसकी मनमानी नहीं चलेगी। इसीलिए वह दूसरे राजकुमार नरातीहापातेको गद्दीपर बैठानेके अपने प्रयत्नमें सफल हो गया। परिणामस्वरूप नरातीहापाते राजसिंहानका मालिक बना। उस समय इसकी अवस्था केवल १६ वर्षकी थी। दीवान याज़ऽतिंज़ां सोचता था कि नरातीहापाते एक ओर तो इस बातके लिए सदा कृतज्ञ रहेगा कि उसकी बदौलत यह राजा बना और दूसरे यह आशा भी लगाये था कि अल्पवय होनेके नाते मुझीपर राज्यका प्रशासकीय भार छोड़ रखेगा। लेकिन उसकी मनोकामना पूरी नहीं हुई और उसे निराश होना पड़ा। और नैराश्यने उसे ऐसा भ्रान्त बना दिया कि वह नरातीहापातेसे एक दिन क्रुद्ध होकर कहने लगा—"तुम्हारी माँ तो राजकुमारी न होकर एक बढ़ईकी लड़की थी।" याज़ऽतिंज़ांका इस प्रकार मुखरित होना था कि नरातीहापाते कथनके रहस्यको भाँप गया और सहसा बोल पड़ा—"पितामह, यह जानते हो न कि देवालयके मस्तकपर छत्र बाँसके सहारे ही चढ़ाया जाता है, लेकिन जब छत्र वहाँ चढ़ जाता है तो बाँसका कोई मूल्य नहीं रहता, वह फेंक दिया जाता है। बस वही छत्र और बाँसकी स्थिति मेरी और आपकी है।" तरुण राजाने निश्चय किया कि वह अपने इच्छानुसार शासन-कार्य चलायेगा। याज़ऽतिंज़ांने उसे भयभीत करनेका भी यत्न किया लेकिन वह विफल रहा। इसके विपरीत राजाने उसे राजधानीसे दूर डला भेज दिया।

जब याज़ऽतिंज़ां अपने साथियों तथा घोड़े और हाथियों

समेत नदीके किनारेसे चला जा रहा था तो रास्तेमें एक ऐसा भयंकर तूफान आया कि अधिकांश बड़े-बड़े वृक्ष जड़से उखड़कर गिर गये लेकिन कुछ पौधे जो पानीमें थे हवाके झोंकेको सहन करते हुए लचककर फिर खड़े हो गये। यह देखकर याज़ऽतिंज़ां बोल उठा कि—"मैं पानीके इन पौधोंके समान भी अपनेको बुद्धिशाली साबित नहीं कर सका।"

याज़ऽतिंज़ांके निर्वासनके बाद ही कई स्थानोंमें विद्रोह शुरू हो गये। मडट्टमऽ (मर्त्तबान) और मच्छागिरिके प्रमुखोंने विद्रोह शुरू कर दिये। याज़ऽतिंज़ां डलासे वापस बुलाया गया और क्रान्तियाँ दबा दी गयीं। उसके बाद ही याज़ऽतिंज़ांकी इहलीला समाप्त हो गयी।

सन् १२७७ से १२८७ के बीच नरातीहापातेको दो बड़ी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। एक तो तातार और दूसरी यूनानियोंसे। वास्तवमें इन्हीं युद्धोंके कारण पगां राज्यका पतन भी हुआ।

धार्मिक नीति—नरातीहापाते बुद्धधर्मका परम प्रशंसनीय अनुयायी था। अपने पूर्वजोंकी भाँति वह भी बौद्ध मन्दिरोंके निर्माणका शौकीन था। शासनके अन्तिम दिनोंमें उसने मिंगलेज़ेडी मन्दिर बनवाया। इस देवालयका निर्माण-कार्य चल ही रहा था कि राज्यमें अफवाह फैली कि उक्त देवालयका निर्माण-कार्य पूरा होते ही पगां वंशकी राज्यसत्ता समाप्त हो जायगी। इस चर्चाने नरातीहापातेको विचलित कर दिया और वह मन्दिरका निर्माण रोकनेकी इच्छा व्यक्त करने लगा। लेकिन उसके राजगुरुने ऐसा नहीं करने दिया। उसने कहा कि "संसारकी सभी चीजें विधिकी विधियोंपर निर्भर हैं और क्षणिक हैं।"

कुबलेखान—तातार-जातीय शूरवीर कुबलेखानका सन् १२५३ में एशियाके मध्यसे होकर चीनी समुद्रतक किया गया आक्रमण इतिहासप्रसिद्ध है। इसका प्रभाव बर्मापर उस समय

प्रतीत होने लगा जब १२७१ में कुब्लेखानने नां छोपर आक्रमण किया और वहाँके प्रमुखने उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली। पगांके सभी शासकोंसे नां छोके प्रमुखको भेंटें मिलती आयी थीं। प्रथम राजा अनोयठाने ही इस प्रथाका श्रीगणेण किया था, लेकिन १२७३ में जब नरातीहापातेको यह समाचार मिला कि उक्त प्रमुखने किसी विदेशी शक्तिकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली है तो उसने भेंट न भेजनेका निश्चय कर लिया। नां छोके प्रमुखको इससे बहुत ही असन्तोष पहुँचा और उसने इसका प्रतिवाद कुबलेखानके पास भेजा। कुबलेखानने पगांके राजा और नां छोंके प्रमुखके बीच सुसम्बन्ध स्थापित करनेकी चेष्टा की। उसने अपना राजदूत पगां भेजकर मतभेद दूर करनेका प्रयत्न किया।

कुब्लेखानके राजदूतको पगांकी शाही रीतियों और तहजीबोंका पता नहीं था और वह अनजाने राजाको क्रोधित करनेका कार्य कर बैठा। उसने राजदरबारमें प्रवेश करते समय जूते निकालनेमें यथोचित सावधानीसे काम नहीं लिया। नरातीहापातेने किसी प्रकारकी मुरौवत न दिखाते हुए, कुब्लेखानको सूचना भी न देकर, राजदूतको मरवा डाला। वस्तुतः तातार और बर्मियोंके युद्धका सबसे बड़ा कारण नरातीहापातेका यह कार्य हुआ। तातार शासककी सहायता माँगनेके कारण नरातीहापाते नां छोके प्रमुखके प्रति अत्यन्त क्रोधित हो उसपर चढ़ाई कर बैठा। ऐसी स्थितिमें नां छोके प्रमुखके लिए अनिवार्य हो गया कि वह कुबलेखानकी सहायता लेता और उसने यही किया भी।

नां छोकी शानी और तातारी फौजें एक साथ मिलकर बर्माकी ओर बढ़ीं। सन् १२७७ में उभय पक्षोंकी सेनाओंमें नगास्त्रांजोके पास मुठभेड़ हुई। नरातीहापातेको अपनी सैनिक

शक्ति और मजबूत करनेके लिए भागते हुए पगां आना पड़ा क्योंकि तातारी सेना, बर्मी फौजोंको आसानीसे शिकश्त दे सकती थी। एक तो नसीरुद्दीन नामक युद्धकलानिपुण व्यक्ति तातारी और शां सेनाका सेनापतित्व कर रहा था। दूसरे, तातारी सैनिक घुड़सवार थे जो तुरत निकट जाते और वार कर भाग जाते थे। वे कुशल तीरन्दाज भी थे। इधर बर्मी सैनिक इन सभी साधनोंसे रहित थे। ये दाव और भालेका प्रयोग करते थे जिसका प्रहार दुश्मनके सन्निकट पहुँच कर ही किया जा सकता था। और जबतक ये तातारियोंके पास प्रहारके लिए पहुँचनेका यत्न करते तबतक वे तीरसे इनका काम तमाम कर देते थे।

नां छोपर आक्रमण—नरातीहापातेने सन् १२८३ में फिर नां छोपर आक्रमण किया। वह अपनी पिछली हारका बदला लेना चाहता था। नां छोके प्रमुखको फिर तातारियोंसे सहायता मिली। इस लड़ाईमें नरातीहापातेको पुनः हारका सामना करना पड़ा। वह दौड़ा हुआ अपनी राजधानी आया और उत्तरी तथा पूर्वी सीमाओंपर दुर्ग बनवाये। उसके सलाहकारोंने राय दी कि राजधानी पगांसे हटाकर डला ले जायी जाय ताकि दुश्मनके आक्रमणका मुकाबला करनेकी तैयारियाँ की जा सकें। नरातीहापति यह सलाह मान गया और शीघ्र ही राजधानीके सभी सामान डला और फिर बसीन हटा ले जाये गये। उसके ज्येष्ठ पुत्र ऊ ज़नाने, जो बसीनका राज्यपाल था, भव्य रीतिसे उसका स्वागत किया।

आपत्तियोंका क्रम—जब विधाता वाम होता है तो आपदाओंका अन्त नहीं होता। उसने वहाँसे पगां वापस होनेका निश्चय तो कर लिया किन्तु जब वह आगे बढ़ा तो यह देखकर चकित रह गया कि सामान्य जनता उसके विरोधमें उठ खड़ी हुई है। उसके

लड़के ही—जिनके साथ वह कुव्यवहारोंसे पेश आया था—खुला विद्रोह करनेपर तुले थे। ऐसी स्थितिमें पगांके राजाने नां छोके प्रमुखके पास सन्धिसन्देश भेजा। वहाँसे सन्तोषजनक उत्तर मिलनेपर उसने पगां लौटनेका निश्चय किया। किन्तु वह पगां पहुँचने नहीं पाया। जब वह प्रोम पहुँचा तो उसके लड़के तईंग्तूने अपने सैनिक भेजकर शाही सेनापर घेरा डलवा दिया और राजाके खानेके लिए विषयुक्त भोजन भेजा। भोजनका थाल सामने आते ही नरातीहापातेको अनुमान हो गया कि उसमें उसकी मृत्युका सामान है। उसने खानेसे इनकार किया। परन्तु उसकी रानी सॉने कहा—"ओ राजा! तईंग्तूके जो सिपाही हमें घेरे हुए हैं उनकी तलवारोंकी ओर तो देखो। क्या एक राजाके लिए यह शोभनीय होगा कि वह अपने ही रक्तसे पैदा किसी जनकी तलवारों और भालोंकी नोकपर भयावह मौतके मुखमें जाय?" इस पर राजाने सहसा अंगुलीसे अँगूठी निकालकर उसे पानीमें धोया और यह प्रार्थना की—"ओ परमात्मा, निर्वाणकी प्राप्तिसे पूर्व मैं जिन-जिन योनियोंमें जन्म लूँ मुझे नर सन्तान कभी न देना।" इसके बाद तईंग्तू द्वारा भेजे हुए थालका उसने ज्यों ही भोजन खाया, कालका ग्रास बन गया। इस प्रकार सन् १२८७ में नरातीहापातेका शासन समाप्त हुआ।

पगां साम्राज्यका अन्त—नरातीहापातेकी मृत्युका समाचार मिलनेपर उसी वर्ष नां छो सरकारने पगांपर आक्रमण करनेका निश्चय कर लिया। चीनी और शां सेनाओंने चढ़ाई करके वर्मियोंको पराजित किया। इस प्रकार पगां राज्य अनेक टुकड़ोंमें बँट गया। इसपर चीनी सत्ता स्थापित हो गयी। तो भी नरातीहापातेके उत्तराधिकारियोंको पगांपर शासन करनेका मौका दिया गया और पगांसे प्रोमके बीचकी भूमि उनकी ही सत्ताके अन्तर्गत रही। १२९८ में नरातीहापातेके उत्तराधिकारियों

को म्यिं साँइके एक शां परिवारने भगा दिया। इस प्रकार अनोय द्वारा स्थापित पगां साम्राज्यका अन्त हो गया।

शानियोंकी प्रभाववृद्धि—१२८७ में नरातीहापातेकी मृत्युके बाद ही जब चीनी और शां सेनाओंने पगांपर कब्जा कर लिया तो वास्तवमें उसी समयसे लगभग सम्पूर्ण वर्मामें शानी फैलने लगे। कुछ कालतक पगांसे लेकर प्रोमतककी भूमिपर नराहापातेके उत्तराधिकारी शासन करते रहे और शेष भू-भाग चीनियोंकी सत्ताके अन्तर्गत था। चीनी सरकारने शां अधिकारियोंको नियुक्त किया था जो प्रशासकीय कार्य देखते थे। इसके फलस्वरूप अधिकतर शां परिवार पगां और डेल्टा क्षेत्रमें आकर बस गये और अब सम्पूर्ण बर्मापर शां प्रभाव बढ़ने लगा।

१२९८ के आस-पास सइंबी, मोञ्नि, चाइं ठोन, म्यिं साँइ और मउट्टमऽ जैसी बड़ी शां जागीरोंका आविर्भाव हुआ। इनका शासन चीनी वाइसरायकी छायामें शां जागीरदारों द्वारा होता था। इन जागीरदारोंमें म्यिं साँइका जागीरदार सबसे शक्तिशाली निकला। १२९८ में इसे पगांके प्रमुखके यहाँसे विवाह-सम्बन्ध स्थापित करनेका सन्देश मिला। उसने उसी वर्ष इस सम्बन्धसे अनुचित लाभ उठाकर पगांके राजाको गद्दीसे हटा दिया और पगांको अपनी जागीरमें मिला लिया। पीछे चलकर पगां और प्रोमके बीचकी भूमिको भी उसने अपने आधिपत्यमें ले लिया। इस प्रकार पगां राज्यका अन्त हुआ।

चीनी हमला विफल—चीनियोंको म्यिं साँइकी बढ़ती हुई सत्ता पसन्द न आयी और वे इसका दमन करना चाहते थे, लेकिन उनकी आशा पूरी न हुई वरन् उलटे उन्हें मुँहकी खानी पड़ी।

सन् १३०० में १२,००० सैनिकोंकी एक चीनी सेनाने पगांके पदच्युत प्रमुखको उसके पदपर पुनः प्रतिष्ठित करनेके लिए चढ़ाई की, किन्तु शानियोंने इस आक्रमणका ऐसे दृढ़ संकल्पसे

मुकाबला किया कि वे अपने अभीष्टकी सिद्धि प्राप्त न कर सके। यहाँकी जलवायु, चीनियोंके अनुकूल न होनेके कारण वे बीमार पड़ने लगे और एक बड़ी रकम रिश्वतमें लेकर पीछे हटनेको राजी हो गये। चीनियों द्वारा किया गया यह आक्रमण अन्तिम था। वापस होते समय वे शानियोंकी अनुमतिसे तिंडू नहरकी मरम्मत भी कराते गये। इसका प्रभाव दक्षिणमें डेल्टा-क्षेत्रतक फैल गया। कालान्तरमें वे शां तनासरिम-क्षेत्रमें भी प्रविष्ट हो गये और तलांइ (मुँ) पर भी अपना प्रभाव जमाने लगे। इस समयतक म्यि साँइका प्रभुत्व इतना बढ़ गया था कि उसकी जागीरने आवा-राज्यका रूप ले लिया। साथ ही डेल्टामें एक दूसरे राज्यकी भी स्थापना हुई। यहाँ शानी तलांइ (मुँ) रीति-रिवाजोंको अपनाने लगे थे। इनके अतिरिक्त इन्हीं दिनों टांगू दुर्गके पास एक तीसरे राज्यकी स्थापना हुई। उत्तर और दक्षिण-के कुछ बर्मी, शां-शासन नहीं पसन्द करते थे। इसलिए वे पूर्व-की ओर चले आये और टाँगूके पास रहने लगे। टांगू स्थित इसी ऐतिहासिक दुर्गने आगे चलकर दूसरे और तीसरे बर्मी साम्राज्यों-के लिए नींवका कार्य किया।

अयों (आवा) राज्य

आवा राज्यका प्रादुर्भाव म्यिं साँइकी छोटी-सी जागीरसे हुआ। पगां साम्राज्यपर चीनी आधिपत्य हो जानेके बाद उन्होंने म्यिं साँइके लिए शां अधिकारियोंकी नियुक्ति की और १२९० के आसपास तीन शां बन्धुओंने म्यिं साँइमें आकर शरण ली। चीनी राज्यपालने इन नवागन्तुक शान बन्धुओंको भी काममें लगा लिया और वे वहीं रहने लगे। कुछ वर्षों बाद इस शां परिवारका वैवाहिक-सम्बन्ध पगांके राज्यप्रमुखके यहाँ हो गया। इस सम्बन्धकी स्थापनाके बाद सन् १२९८ में इन लोगोंने पगांके प्रमुखको भगाकर गद्दीपर अधिकार कर लिया। इस तरह इन शां बन्धुओंने पगांको म्यिं साँइ जागीरमें मिला लिया। इस प्रकार इनकी बढ़ती हुई शक्ति चीनियोंको सहन नहीं हो रही थी और उन्होंने इन्हें दबाना चाहा लेकिन विफल रहे। सभी शानियोंने सम्मिलित शक्तिसे चीनी सत्ताका मुकाबला किया और उन्हें बर्मी सीमाके पार म्येङ्गतक खदेड़ दिया।

नये शासकोंको पगांकी अपेक्षा आवामें राजधानी रखना अधिक पसन्द था क्योंकि इसके पास-पड़ोसकी भूमि अधिक उर्वर थी। आवा चौसे जिलेमें पड़ता है। आवा राज्यकी स्थापना तो सन १३०० में हो गयी थी लेकिन १३६४ तक यह दुर्बल अवस्थामें था क्योंकि शानियोंमें परस्पर फूट थी।

१३६५ में मॉ शानियोंने उत्तरकी ओरसे इसपर आक्रमण कर डाला। उन्होंने आवाकी सत्ता समाप्त कर दी। लिनवऽका सफेद

हाथी भी वे साथ लेते गये। उसके बाद आवामें एक प्रतापशाली प्रमुखका उदय हुआ। उसका नाम थाडोमिंञ्या था। उसने शानियोंमें ऐक्य स्थापित किया और वर्मी रीति-रिवाजोंका पालन करनेके लिए उन्हें निर्देश दिया। इस प्रतापशाली प्रमुखकी इस नीतिपटुताने उसे बर्मियोंका श्रद्धाभाजन बना दिया और उसने आवाके पास एक स्वर्णप्रासादका निर्माण किया। उसके बाद उसका साला मिंजीञ्ज्यासोके सन् १३६८ में गद्दीपर बैठा।

मिंजीज्वासोके (१३६८-१४०१)

राजा थाडोमिंब्याके पश्चात् उसका साला मिंजीज्वासोके १३६८ में गद्दीपर बैठा और वह अपनी मृत्युपर्यन्त १४०१ तक शासन करता रहा। उसे एक पुत्र था जिसका नाम मिंखांग था।

लोकप्रिय शासन—मिंजीज्वासोके अपनी प्रजाके प्रति स्नेह-भाव रखता था और उनकी उन्नतिके लिए सचेष्ट रहता था। धानकी पैदावार बढ़ानेके लिए उसने नहरोंके निर्माणकी ओर विशेष ध्यान दिया। अल्पकालमें ही वह भी राजा अनोयठाकी तरह प्रजाकी प्रशंसा और श्रद्धाका पात्र बन गया। कुशल सुशासनके कारण उसको बर्मी और शां दोनों ही सम्मान करते थे। मिंजीज्वासोकेने बर्मी रीति-रिवाजोंके पालनका जो नियम बना रखा था उससे उसे सुव्यवस्था स्थापित करनेमें विशेष सहायता मिली। वह बर्मी प्रजाके हृदयके अधिक सन्निकट आ सका। वह वर्ग-विहीन समाज चाहता था और जो जिस योग्य होता था, उसे वही काम देता था। बताया जाता है कि उसने 'वुंजींयाज़ा' नामक एक साधारण किसानको अपना प्रधान मन्त्री बनाया था क्योंकि वह सुयोग्य और सक्षम था।

मिंजीज्वासोकेकी नीति शान्तिकी नीति थी। उसने कभी आक्रामक युद्ध नहीं किया। शान्तिमय और बुद्धिमत्ताके साथ शासन करके उसने अपने साम्राज्यके सम्मानकी रक्षा की। आवा राज्यके पड़ोसकी रियासतोंपर जब आक्रमण होता था तो वह उनकी सहायता करता था।

इसके शासनकालमें अराकानमें गृह-युद्ध शुरू हो गया था और आवा राज्यके सुशासनकी ख्याति उनके कानोंतक पहुँच चुकी थी। इसीलिए वे मिंजीज्वासोकेके पास एक सुयोग्य शासक-की माँग लेकर आये। इसलिए उसने अपने चाचाको अराकान-

की शासनव्यवस्था ठीक करनेके लिए भेजा। इस शां शासकके अन्तर्गत अराकानी पूर्णरूपसे सन्तुष्ट थे। लेकिन इसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गयी।

अराकानियोंने पुनः मिंजीज्वासोकेसे अनुरोध किया कि कोई दूसरा सुयोग्य शासक उन्हें दिया जाय। दोनों राज्योंमें काफी मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस बातकी पूरी सम्भावना थी कि अराकान आवा राज्यका एक अंग बन जायगा, परन्तु जो दूसरा शासक यहाँसे भेजा गया उसका व्यवहार अराकानियोंके साथ निर्दयता-पूर्ण हुआ। कुछ वर्षों बाद क्षुब्ध अराकानियोंने उसके विरोधमें विद्रोह कर दिया और उसे अराकानसे मार भगाया। इस प्रकार दोनों राज्योंका मैत्री सम्बन्ध समाप्त हो गया।

इन्हीं दिनों म्यौंम्यामें लांवफया नामक बहुत तेजस्वी प्रमुख शासन कर रहा था। वह पेगूके शासक राजादरितका चाचा था। राजादरितकी इच्छा थी कि लांवफया म्यौंम्याको उसके राज्यमें मिला दे लेकिन वह इससे सहमत नहीं हुआ। सन् १३८५ ई० में लांवफयाने मिंजीज्वासोकेसे सहायता माँगी और वह राजी हो गया। आवाके राजाने सहायता करनेके लिए अपनी फौज भेज ही दी। युद्ध-क्षेत्रमें आवा और म्यौंम्याकी सम्मिलित सेनाको राजादरितकी सेनाके मुकाबलेमें हार खानी पड़ी और युद्धमें विजयी होनेपर पेगूके राजाने म्यौंम्या अपने राज्यमें मिला लिया। आवाके शासकने उसके दुश्मनकी सहायता करनेके लिए फौज भेजी थी इसीलिए अब वह आवापर आक्रमण कर बैठा। भयंकर युद्ध शुरू हो गया लेकिन दैवयोगसे युद्धकालमें ही मिंजीज्वासोकेकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसके लड़के मिंखांगने लड़ाई चालू रखी और इस तरह सन् १४०१ से मिंजीज्वासोकेका शासन समाप्त हो गया।

मिंखांग (१४०१-१४२२)

मिंजीज्वासोकेके देहान्तके पश्चात् उसका पुत्र मिंखांग आवा राज्यकी गद्दीपर बैठा। मिंखांगका एक पुत्र मिंयेचोस्वा था जो च्यां सित्ताकी तरह बहादुर था। अपने पिताके शासनकालमें वह बहुत ही लोकप्रिय बन गया। मिंखांगके शासनकालमें उत्तरके शां जागीरदारोंने आक्रमण किया था जिसका दमन मिंयेचोस्वाके वीरत्वके फलस्वरूप ही हुआ। इस वीर राजकुमारके सम्बन्धमें एक अनोखी जनश्रुति प्रचलित है। बताया जाता है कि पेगूके राजा राजादरितने अपने पुत्रपर यह सन्देह कर कि वह उसके विरोधमें षड़यन्त्र कर रहा है, उसे मरवा डाला। मृत्युकालमें राजकुमारने राजादरितको चेतावनी दी थी कि वह इस अन्यायका बदला लेगा। परिणामस्वरूप जब मिंयेचोस्वाके प्रभुत्वके बारेमें राजादरितने सुना तो उसे सन्देह हुआ कि उसके मृत पुत्रकी आत्माने ही दूसरे स्थानमें जन्म लिया है। इसीलिए वह आवापर चढ़ाई करनेके लिए उत्सुक बैठा था।

शासनकालके दो युद्ध—मिंखांगको अपने शासनकालमें दो युद्ध करने पड़े। पहला युद्ध तो शां जागीरदारोंके साथ करना पड़ा और दूसरा पेगूके राजा राजादरितसे। मिंखांगके शासनकालमें बहुसंख्यक शां बर्मामें चले आये थे। वे आवा राज्यकी उत्तरी सीमापर आक्रमण भी करते रहे। परिणामस्वरूप मिंखांगको इनका दमन करनेके लिए अपने पुत्रके नेतृत्वमें फौज भेजनी पड़ी। यह प्रयत्न पूर्णरूपसे सफल रहा। शानियोंका इस प्रकार दमन कर दिया गया कि वे बिलकुल शान्त हो गये और भविष्यमें उन्होंने फिर कभी सिर नहीं उठाया।

शां बगावतका दमन करनेसे पूर्व ही मिंखांगको राजादरितसे युद्ध करना पड़ा। जब वह गद्दीपर बैठा उसके बाद ही राजादरितकी फौजें आवा-दुर्गके सिंहद्वारोंपर खड़ी मिलीं। वे मिंखांगकी सेनासे आत्म-समर्पणकी माँग कर रही थीं। यह बड़ा ही नाजुक समय था। मिंखांगने अपने सलाहकारोंको राजमहलमें बुलाया। उन्होंने राजादरितसे सुलह कर लेनेकी राय दी और कहा कि यह कहकर कि एक बौद्ध मतावलम्बी राजाको हिंसक वृत्ति अपनाना शोभा नहीं देता, उसे युद्ध करनेसे रोका जाय। यह सुझाव लेकर जब मिंखांगके सलाहकार बौद्धभिक्षु राजादरितके यहाँ पहुँचे तो उसने उनका स्वागत किया और धर्मके नामपर सैनिकोंको वापस बुला लिया। आवा युद्धकी विभीषिकासे बच गया और दोनों राज्योंके बीच मैत्रीसम्बन्ध स्थापित हो गया, लेकिन इससे युद्धका पहला खतरा ही टला।

कुछ ही काल पश्चात् दूसरी संकटकी स्थिति उत्पन्न हुई। आवासे वापस होते हुए राजादरितने प्रोमपर आक्रमण कर दिया। प्रोमका तत्कालीन प्रमुख मिंखांगका रिश्तेदार था इसलिए उसके सहायतार्थ मिंखांगको अपनी फौजें प्रोम भेजनी पड़ीं। लेकिन उन्हें असफलताके दिन देखने पड़े। इन्हें शिकस्त मिली और ये राजादरितके साथ सन्धि करनेके लिए विवश हुईं। फिर भी मिंखांगका शासनकाल निरापद नहीं बीता। कुछ वर्षों पश्चात् मिंखांगने चिंगमाइके प्रमुखसे राजादरितके खिलाफ गुप्त सन्धि करनी चाही। इसलिए उसने पत्र भेजा, परन्तु वे मुहरबन्द पत्र चिंगमाइ पहुँचनेसे पूर्व ही राजादरितके राज्यपालों द्वारा मिंखांगके दो अधिकारियोंके द्वारा पकड़ लिये गये। इसके फलस्वरूप राजादरितने तीसरी बार आवाके खिलाफ़ युद्ध किया। वह अपनी फौज लेकर डेल्टा क्षेत्रके लांयज़े शहरपर चढ़ आया। यहाँका प्रमुख मिंखांगका जामाता था। उसकी मदद

करनेके लिए मिंखांग फौज लेकर राजादरितके मुकाबलेके लिए दौड़ा आया। इस बार उसे फिर बहुत बुरी तरह हार खानी पड़ी और वह अपनी फौज लेकर डेल्टासे चल पड़ा।

पिताकी हार सुनते ही मिंयेचोस्वाने सेनाका नेतृत्व अपने हाथमें ले लिया और राजादरितको मार भगाया। सन् १४१५ में वह डेल्टा प्रदेशकी रियासतोंका एकमात्र शासक था, परन्तु राजादरितसे यह देखा नहीं गया। सन् १४१७ में उसने मिंयेचोस्वाको गिरफ्तार कर लेनेका षड्यन्त्र रचा जो सफल रहा। उसने मिंयेचोस्वाको मरवा डाला और ज्यों ही उसकी फौजोंको यह पता चला, डेल्टा क्षेत्रसे भागकर आवा चली आयीं। मिंखांगने फिर डेल्टा प्रदेशपर चढ़ाई नहीं की क्योंकि शां जागीरदार सर्वदा आवा घेरे रहते थे। उसे उनसे ही मुक्ति नहीं मिलती थी। इसके अतिरिक्त अब प्रोम इतना शक्तिशाली हो गया था कि आवा और पेगूके बीच एक स्वायत्त सत्तापूर्ण मध्यवर्ती राज्यका काम करने लगा था।

मिंखांग बुद्धिमान् शासक था। उसने अपने पिताकी नीतिका अनुसरण कर प्रजाको शान्तिमय शासनकी सुविधाएँ उपलब्ध करना चाहीं। आवा निवासी घबड़ा गये थे क्योंकि वहाँ वर्षों-तक युद्ध ही चलता रहा था। युद्धोंके कारण आवाका वैभव भी समाप्त हो चला था। मिंखांगने राजादरितसे जो दो युद्ध किये उनसे वह बच सकता था और इस प्रकार आवाकी शक्ति भी सुदृढ़ रह सकती थी। तब यह सम्भव था कि आवा शताब्दियों-तक एक शक्तिशाली राज्यके रूपमें विद्यमान रहता, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उसके शासनने आवाको अत्यन्त निर्बल राज्य बना दिया। कुछ वर्षों बाद वह शां जागीरदारोंके हाथमें चला गया। सन् १४२२ में मिंखांगकी मृत्यु हुई और उसके सभी उत्तराधिकारी निर्बल निकले।

मिंखांगकी मृत्युके पश्चात् ही उत्तरी क्षेत्रके शां जागीरदार आवांपर आक्रमण करने लगे। उन्होंने उन चीनियोंसे, जो मोगोककी रत्नोंकी खानोंपर आँख लगाये थे, सहायता ली और आवा राज्यको छिन्न-भिन्न करना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे आवाका स्वामित्व और शौर्य समाप्त हो गया और सन् १५२७ में मोइयनके जागीरदारने आवाके शासकको सत्ताहीन कर दिया और अपने लड़के तोहांब्वाको आवाका शासक घोषित कर दिया।

आवापर शां सत्ता (१५२७-१५५५)

आवापर शां-सत्ता प्रारम्भ होनेपर उसका प्रथम शासक मोइयनके जागीरदारका लड़का तोहांब्वा हुआ। उसने सन् १५२७ से सन् १५४३ तक शासन किया। आवाकी जनता उसे पसन्द नहीं करती थी। सत्तारूढ़ होनेके बाद सबसे पहले उसने बौद्ध मन्दिरोंको ही तोड़वाना शुरू किया। वह उनमेंसे बहुमूल्य रत्न निकलवाकर रख लेता। उसका कहना था कि मन्दिर खजाने रखनेके कक्षभर हैं। इन कार्योंसे प्रजा उससे घृणा करने लगी। सन् १५४३ के आस-पास तोहांब्वाने बौद्ध भिक्षुओंसे बदला लेना शुरू किया, क्योंकि प्रायः वे ही उसके कार्योंका विरोध करते थे। उसने बौद्ध-भिक्षुओंकी एक सभा बुलायी जिसमें लगभग १३३० भिक्षु उपस्थित हुए। उसी समय उसने उन्हें कत्ल करनेके लिए अपने सैनिकोंको भेजा और उनमेंसे अधिकांश मार डाले गये। इस कुकृत्यके परिणामस्वरूप तोहांब्वा सन् १५४३ में मार डाला गया।

मिंचीयानांग नामक एक भिक्षुने यह व्रत ले लिया था कि वह भिक्षुओंकी हत्याका बदला अवश्य लेगा और वास्तवमें उसने वही किया भी। उसने तोहांब्वाके शयनकक्षमें प्रवेश कर उसकी हत्या कर डाली। आवाकी जनताने उसे उनके प्राणोंका त्राता घोषित करते हुए उसका स्वागत किया। आवाका शासक बननेके लिए उसके सामने सुझाव आये किन्तु उसने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया।

तोहांब्वाके बादके शां शासक उससे अच्छे थे और सन्

१५५५ तक आवा शां जागीरदारोंके हाथोंमें था। सन् १५४६ में डबिन्श्वेठीने आवापर आक्रमण किया और शानियोंने उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली। फिर सन् १५५५ में जब टाँगूके राजा बयिंनौंने आवामें प्रवेश किया तो उसने उसे अपने राज्यमें मिला लिया। इस तरह आवासे शां-सत्ताका अन्त हुआ और वह टाँगू राज्यका एक अंग बन गया।

पेगू राज्य (१२८७-१५५१)

पेगू राज्यकी स्थापना शां वंशमें उत्पन्न वारीउ नामक एक फेरीवालेने की थी। इसका जन्म डउंवुँ नामक स्थान में हुआ था। सउगडे जागीरदारके दरबारमें उसे पहरुओंके प्रमुखकी नौकरी दी गयी थी। पीछे वारीउ अतीव महत्त्वाकांक्षी बन गया और उसे प्रमुख बननेकी इच्छा होने लगी। कहा जाता है कि यह सउगडेके प्रमुखकी लड़की लेकर भाग गया और इस तरह शाहीवंशसे सम्बन्ध होनेके कारण अपनेको डउंवुँका प्रमुख घोषित कर दिया।

वारीउकी राजसत्ता धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उसकी एक लड़की थी जिससे मउट्टमऽका युवक राजा शादी करना चाहता था। वारीउने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, लेकिन जब वह युवक शादी करने आया तो वारीउने उसे मरवा डाला और मउट्टमऽको अपनी जागीरमें मिला लिया। इस तरह अब वह निचले बर्माका एक शक्तिशाली शासक बन गया।

कालान्तरमें पेगूका राजा तरफ्या पगांके राजाके विरोधमें लड़नेके लिए वारीउके पास सहायतार्थ आया। वारीउने उसकी सहायता की और तरफ्या स्वच्छन्द होकर पेगूपर शासन करने लगा। अब वह वारीउकी ओरसे सशंक रहने लगा और उसके विरोधमें षड्यन्त्र करना शुरू कर दिया। इस षड्यन्त्रकी खबर वारीउको लग गयी और उसने तरफ्याकी हत्या कराकर पेगूको अपने राज्यमें मिला लिया। अब उसका राज्य-विस्तार डउंवुँसे लेकर पेगूतक विस्तृत हो गया। उसकी राजधानी मउट्टमऽमें थी। और उसने राज्यसत्ता काफी दृढ़ बना ली थी।

पेगू राज्यका संस्थापक—बर्मी इतिहासमें वारीउका नाम पेगू राज्यके संस्थापकके अतिरिक्त अन्य दृष्टियोंसे भी उल्लेख्य माना गया है। वारीउने अपने मित्र भिक्षुओंकी सहायतासे कानूनकी पुस्तकें तैयार करायीं जो उसकी विशेष देन हैं। इन सभी पुस्तकोंको संगृहीत कर एक साथ रखा गया था जिसे "वारीउ डम्मत्" कहा जाता है। आगे चलकर ये पुस्तकें बर्मी विधि-साहित्यके निमित्त उपयोगी बनीं। सन् १२९६ में वारीउका देहान्त हो गया। वह कोई सबल उत्तराधिकारी छोड़कर नहीं मरा। इतिहास पर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होता है कि १२९६ से लेकर १३८५ तक लगभग एक शताब्दीके बीच कोई ऐसी घटना नहीं घटी जिसे ऐतिहासिक महत्त्व दिया जाय। राजधानी मउट्टमऽसे हटाकर पेगू लायी गयी और इसी समय श्यामियोंने तनासरिम क्षेत्रपर आक्रमण करके मउट्टमऽको अपने राज्यमें मिला लिया। इस प्रकार अब पेगू राज्यके अन्तर्गत खास पेगू और डउंवुँ ही रह गये थे। सन् १३८५ में राज्य परम्पराका सर्वाधिक तेजस्वी राजा राजादरित गद्दीपर बैठा जिसने पेगूकी राज्यसत्तामें चार चाँद लगा दिये।

राजादरित (१३८५-१४२३)

जिस पेगू राज्यकी स्थापना वारीउने की थी उसका सबसे प्रतापी राजा राजादरित १३८५ में गद्दीपर बैठा। गद्दीपर बैठनेके लिए उसे रक्तरंजित स्थितियोंसे होकर गुजरना पड़ा था। राजसिंहासनपर बैठनेके बाद भी उसे अपने अधिकांश शासनतन्त्रमें तलवारसे ही काम लेना पड़ा था। उसने अपने एक मन्त्री डइमानियूको छोड़कर बाकी सबकी हत्या करा दी थी। उक्त मन्त्रीने अपनी भूलोंको स्वीकारकर वफादारीके काम करनेका वचन दिया था। इसीलिए राजादरितने उसे सिरियमका राज्यपाल बनाकर भेज दिया।

शंकालु और हत्याकी नीति—राजादरितका एक पुत्र बोलोचौटो था। वह प्रतिभावान् था और उसपर 'होनहार बिरवान के होत चीकने पान'की कहावत चरितार्थ होती थी। वह बड़ा योद्धा था और उसने अपने पिताकी युद्धमें अनेक बार सहायता की थी। सन् १३९० में उसकी ही सहायतासे राजादरित मौंम्यापर पुनः सत्ता स्थापित कर सका था। सन् १३९० का शासनकाल राजादरितके शौर्य और शक्तियोंके चरम उत्कर्षका था। अपने राज्यपर होनेवाले बर्मी विद्रोहियोंके आक्रमणोंको बार-बार विफल करते हुए इन्हीं दिनों इसने मौंम्याके जागीरदार लांवफयाको पराजित कर वहाँ भी अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। मनोकामनाकी सिद्धि होनेके उपलक्ष्यमें उसने श्वेमोडो पगोडापर मूर्त्तियाँ स्थापित कीं और एक हजार भिक्षुओंको निरन्तर सात दिनोंतक भोजन कराया तथा स्वर्णका तुलादान कर मन्दिरको दान दिया। यही नहीं, उसने ही बन्दी लांवफया-

को जीवनदान देकर उसे श्वेमोडो पगोडामें सुरक्षित और शान्तिमय जीवन व्यतीत करनेके लिए निर्देश करते हुए स्वयं सन्तुष्ट होनेका अनुभव किया। लेकिन राजादरित उसपर सन्देह करने लगा था। उसे आशंका हो गयी थी कि कहीं उसका बेटा उससे गद्दी न छीन ले। इसीलिए उसने उसकी हत्याके लिए अपने दो दरबारियोंको भेजा।

इन लोगोंने अपना इरादा जब बोलोचौटोपर प्रकट किया तो उसने कहा कि मुझे मौतकी तैयारीके निमित्त कुछ अवसर दीजिये। दरबारियोंने उसके इस अनुरोधको स्वीकार कर लिया। इसपर बोलोचौटो श्वेमोडो पगोडामें आया और वहाँ पूजन-अर्चनके पश्चात् अपने रत्नजटित कण्ठहार तथा कर्ण-बालीको भेंटकर भगवान्से प्रार्थना करते हुए कहा कि—"हे प्रभु! यदि मेरी भावना अपने पिताके प्रति कलुषित रही हो तो मैं चिरन्तन कालतक नरकवास पाऊँ, आगामी बुद्धका दर्शन न कर सकूँ। किन्तु यदि ऐसा न हो और मैं शुद्धात्मा होऊँ तो मुझे दूसरे जन्ममें फिर बर्माके ही किसी राज्यवंशमें उत्पन्न होनेका अवसर प्रदान करना।"

जिस समय राजकुमारकी हत्या की जा रही थी उसने अनेक कठोर बातें राजाको कहीं। राजा इसे सुनकर अपने भविष्यके प्रति आशंकित एवं भयभीत हो गया। कालान्तरमें जब उसने आवाके राजा मिंखांगके पुत्र मिंयेचोस्वाकी वीरताके बारेमें सुना तो उसे सन्देह होने लगा कि हो न हो उसका ही पुत्र दूसरा जन्म लेकर वहाँ आया है और मुझसे पूर्वजन्मका प्रतिशोध ले रहा है।

युद्ध और विद्रोहका दमन—उन दिनों मौम्याका प्रमुख लांवफया था जो राजादरितका चाचा था। राजादरितने गद्दीपर बैठनेके बाद ही लांवफयासे कहा कि वह मौम्याको पेगू राज्यमें मिला दे, लेकिन लांवफयाने इनकार कर दिया। उसने आवाके प्रमुखके

साथ मैत्री स्थापित कर संयुक्त शक्तिसे पेगूपर आक्रमण किया लेकिन हार ही हाथ लगी। राजादरितकी फौजने उन्हें कुचल डाला। लांवफया गिरफ्तार करके मार डाला गया और मौंम्या पेगू राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया।

जिन दिनों राजादरित मौंम्याके दमनमें लगा हुआ था। अन्य अनेक स्थानोंमें भी विद्रोह प्रारम्भ हो गये थे, लेकिन राजादरितने उन सबका अपने सेनापति व्याज़ाकी सहायतासे दमन कर दिया। इन्हीं दिनों बसीनमें भी बगावत शुरू हुई थी और उसपर कब्जा कर लिया गया। मौंम्याके प्रमुखने आवाके राजा मिंजीज्वासोकेसे सहायता ली थी अतएव बदला लेनेके लिए राजादरितने आवापर चढ़ाई की। परिणामस्वरूप पेगू-आवा-युद्धका सूत्रपात हुआ जो १४२२ तक चलता रहा। हम पहले ही देख चुके हैं कि राजादरित आवा दुर्गके सिंहद्वारपर खड़ा हो गया और आत्मसमर्पणकी माँग करने लगा। इसपर राजा मिंखांगने बौद्ध भिक्षुओंको शान्ति-सन्देश-वाहकके रूपमें भेजा। उन्होंने धर्मके नामपर युद्ध न करनेके लिए राजादरितसे माँग की जिसे वह मान गया और दोनों राज्योंके बीच शान्ति स्थापित हो गयी। इससे युद्ध कुछ कालके लिए तो समाप्त हुआ लेकिन कुछ ही दिनों बाद फिर संकट उत्पन्न हो गया। पेगूका राजा जब आवासे वापस होने लगा तो उसने प्रोमपर चढ़ाई कर उसपर अपनी सत्ता स्थापित कर ली। आवाका राजा मिंखांग प्रोमके राजाका सम्बन्धी था इसीलिए उसने अपनी फौजें उसकी सहायताके लिए भेजीं लेकिन पेगूकी फौज इतनी शक्तिशाली थी कि उस संयुक्त सैनिक शक्तिका भी दमन कर दिया। मिंखांग सन्धि-सन्देश लेकर दौड़ने लगा। राजादरितने उसे क्षमा करके पुनः सन्धि कर ली।

कुछ वर्षों बाद मिंखांगने राजादरितका मुकाबला करनेके

अभिप्रायसे चींगमाइके प्रमुखसे सन्धि करनेके लिए गुप्त पत्र भेजा। दैवयोगवश पत्रवाहक अधिकारी राजादरितके एक राज्यपाल द्वारा पकड़ लिया गया जिसके पाससे मुहरबन्द पत्र बरामद हुआ। ज्योंही इस षड्यन्त्रका राजादरितको पता लगा उसने मिंखांगपर आक्रमण कर दिया। यह युद्धका तीसरा और अन्तिम अवसर था। राजादरितने लांवज़ेसे होते हुए यात्रा की। वहाँका राजा मिंखांगका दामाद था। इसलिए मिंखांग उसकी सहायताके लिए दौड़ा लेकिन उसका प्रयास विफल गया। उसे हार खानी पड़ी। लांवज़ेपर पेगूके राजाका आधिपत्य हो गया। अब राजादरित आवाकी ओर बढ़ा। इस अवसर पर मिंखांगके बेटे मियेचोस्वाने सेनापतिका भार लेकर राजादरितका मुकाबला किया। कुछ कालतक युद्ध चलता रहा और अन्ततः १४१५ में मियेचोस्वाने राजादरितको शिकस्त दे दी और उसे डेल्टासे भगा दिया। उसके बाद ही उसने अपनेको डेल्टा प्रदेशका स्वामी घोषित कर दिया। डेल्टाके अधिकांश राजा उसका प्रभुत्व मान कर अधीनता-कर भेजने लगे। सन् १४१७ में राजादरितने मियेचोस्वाके विरुद्ध अत्यन्त निन्दनीय षड्यन्त्र रचा जिसके फलस्वरूप आवाका राजकुमार मार डाला गया।

युद्धसे दोनों राज्योंकी शक्ति क्षीण—नेतृत्वविहीन होनेके कारण अब आवाकी फौजें डेल्टासे भाग चलीं। मिंखांग चुपचाप बैठा रहा। उसने अपने लड़केके मारे जानेका प्रतिशोध लेनेका ख्याल नहीं किया। कदाचित् इसका कारण यह था कि उसकी सेना निरन्तर युद्धरत रहनेके कारण अब लड़ना नहीं चाहती थी। दूसरा कारण यह भी था कि अब उत्तरकी ओरसे शां जागीरदारोंने भी आवापर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया था जिसके मुकाबलेके लिए वहाँ भी सेना तैयार रखना जरूरी था। इधर अब राजादरित भी युद्ध करते-करते क्लान्त हो गया था। मिंये-

चोस्वाकी मृत्युके पश्चात् वह शान्तिका अनुभव करने लगा था। इसलिए फिर युद्ध नहीं हुआ और सन् १४२२ में इसका अन्त हो गया।

पेगू और आवाकी शक्तियोंके निरन्तर संघर्षने दोनों राज्योंको क्षीण बना दिया था। आवा इतना दुर्बल हो गया था कि शां आक्रमणोंको बर्दाश्त नहीं कर सकता था और मिंखांगकी मृत्युके पश्चात् आवा राज्यका शौर्य-सूर्य अस्त हो विलीन हो गया। इसका कारण राजादरितका बार-बार आक्रमण करना ही कहा जा सकता है।

राजादरित एक महान् शासक—राजादरित अतीव साहसी और शक्तिशाली शासक था। वारीउ द्वारा स्थापित राज्यपरम्पराका वह सबसे बड़ा शासक माना गया है। मौंम्या, बसीन और लांवज़ेपर सत्ता स्थापित कर उसने अपना राज्य-विस्तार किया। उसने शासनव्यवस्थाके लिए भी नये नियमोंका समावेश किया। उसकी आकांक्षा थी कि पेगूके आस-पासके क्षेत्रोंका सम्बन्ध पेगूके साथ रहे ताकि राजधानीसे प्रशासकीय कार्योंका संचालन किया जाय। इसीलिए उसने अपने राज्यको ३२ क्षेत्रोंमें बाँट दिया था और उनकी व्यवस्थाके लिए अधिकारी नियुक्त किये थे। इतिहासकारोंका कथन है कि यदि राजादरितने शान्तिमय समय बिताया होता तो उसका सम्पूर्ण काल सरकारी कार्योंके सुसंचालनमें ही बीतता और उसकी कुशल सुशासकमें गणना होती। परन्तु अनवरत युद्धरत होनेके कारण वह ऐसा नहीं कर सका। फिर भी उसने अपने जीवनकालमें राज्यको विघटित नहीं होने दिया।

राजादरितने अपनी तलांइ (मुँ) प्रजाके रीति-रिवाजोंको अपनाकर बड़ी ही बुद्धिमानीका काम किया था। इससे उसकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गयी थी। उसने बौद्धमतके आदर्शोंमें अपनी

जो अटूट श्रद्धा दिखायी उसके फलस्वरूप प्रजा उसके प्रति और अधिक आदर प्रदर्शित करने लगी। स्मरणीय है कि उसने जब आवापर पहली बार चढ़ाई की तो भिक्षुओंके यह कहनेपर ही कि धर्मके नामपर युद्ध न कीजिये, अपनी सेना वापस बुला ली थी। यह उसका महान् त्याग था और यह उसकी धर्मके भावना-के ही कारण क्योंकि उसकी महत्त्वाकांक्षा थी कि वह आवा अपने राज्यमें सम्मिलित कर ले। उसने अनेक बौद्ध मन्दिर बनवाये जिसमें 'डमउ' मन्दिर तो अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण था। इन मन्दिरोंके लिए उसने स्वर्ण तथा रत्न दान किया। सन् १४२३ में उसकी मृत्यु होनेके ३० वर्षों बादतक उसके उत्तराधिकारी आपसमें लड़ते ही रहे।

यह पराक्रमी नरेश अपने वयके ५४ वें वर्षमें पेगू शहरके पास पर्वतीय क्षेत्रमें स्वयं ही साथियोंकी देख-रेख कर रहा था, और हाथी बाँधनेके रस्सेके बीचमें फँसकर इस प्रकार आहत हो गया कि राजधानी पहुँचनेसे पूर्व मार्गमें ही उसकी इहलीला समाप्त हो गयी। जब उसकी रानियोंको इसका पता लगा तो वे बिलखती हुई शवके पास आयीं। शव पेगूसे उत्तर फयाजी नामक स्थानमें दफनाया गया। इस अवसरपर उसकी रानियाँ कहने लगीं कि यह शेरे शाहंशाह इतना बुद्धिमान्, ऐसा उदार चरित्र और कथनों तथा कार्योंमें इतना शक्तिशाली था कि कभी कोई भी शत्रु उसके सामने नहीं टिक सका।

पेगू राज्यके लिए संघर्ष—सन् १४२३ से १४५३ तक पेगू राज्यकी गद्दीके लिए लड़ाई-झगड़े चलते ही रहे, क्योंकि राजादरित अनेक उत्तराधिकारी छोड़कर मरा था। ये सब एक-दूसरेकी हत्या करके राज्याधिकारी बननेके ही प्रयत्नमें लगे रहते।

इसी बीच राजादरितकी पुत्री शिन् सा पु, जो आवाके प्रमुखसे ब्याही थी पर वहाँ रहना पसन्द नहीं करती थी, दो भिक्षुओंकी

सहायतासे चुपकेसे पेगू चली आयी। एक ओर शिन् सा पु आवासे भागकर पेगू आयी और दूसरी ओर उन्हीं दिनों पेगूका तत्कालीन प्रमुख मार डाला गया था। परिणामस्वरूप वह निरापद रूपसे गद्दीपर बैठा दी गयी। बर्माके इतिहासमें शिन् सा पु प्रथम रानी थी जो एक महत्त्वपूर्ण राज्यकी गद्दीपर बैठी थी। पेगू राज्यसत्ताका उसके हाथमें आना क्या था मानो स्वर्णयुगका प्रादुर्भाव हुआ।

शिन् सा पु (१४५३-१४७२)

शिन् सा पु, राजादरितकी पुत्री थी। उसकी शादी आवाके प्रमुखसे कर दी गयी, लेकिन आवामें वह सुखी नहीं रही। इसलिए वहाँके दो भिक्षुओंकी सहायतासे चुपकेसे पेगू चली आयी। राजादरितके पुरुष-वर्गके सभी उत्तराधिकारी आपसमें लड़-लड़कर खतम हो चले थे और सन् १४५३ में जब शिन् सा पु पेगू आयी तो वह निर्विरोध राजगद्दीकी उत्तराधिकारिणी बना ली गयी। उसका शासनकाल पेगू राज्यके इतिहासमें 'स्वर्णयुग'की तरह शुरू हुआ।

शिन् सा पु मातृजातीय सुलभ उदारहृदय थी। वह प्रजाके प्रति वात्सल्य-भाव रखती थी और उन्हें शान्तिमय ढंगसे रखनेकी चेष्टा करती थी। वह युद्धसे प्रजाको बचाना चाहती थी। उसे डम्मऽजेटी नामक एक बुद्धिमान् भिक्षु-सलाहकार मिल गया था। उसकी सहायतासे शिन् सा पुने अपने पिताकी शासन-प्रणाली चलानी शुरू की। उसने अपने राज्यको फिर ३२ क्षेत्रोंमें बाँट दिया और वहाँ शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करनेके लिए योग्य अधिकारियोंको भेजा। उसकी इस शान्तिप्रियताके फलस्वरूप राज्यकी आर्थिक स्थितिमें भी काफी सुधार आ गया। तलांइ (मुँ) जातिके लोगोंमें आज भी इस रानीके सम्बन्धमें भाँति-भाँतिकी कहानियाँ कही जाती हैं। इतिहासकारोंका कहना है कि अपने पिता राजादरितके राज्यको इसने पुनः दृढ़ताके साथ स्थापित कर दिया।

वह बौद्ध धर्मके नियमोंका पालन करती और पूजन-अर्चनमें लीन रहती थी। उसने बहुत-सी मूर्तियोंकी स्थापना की और

देवालयोंको स्वर्ण तथा रत्न दानमें दिया। इसने श्वेज़ीगऊँ पगोडाकी मरम्मत की और इस प्रकार सम्पूर्ण राज्यमें धार्मिक प्रवृत्ति जाग उठी। शाही महलमें उत्सव किये गये जिनमें भाग लेनेके लिए प्रजा भी आमन्त्रित की जाती थी।

सन् १४७२ ई० के आस-पास शिन् सा पुने राज्य-शासनभार छोड़ना चाहा। अब वह अपने जीवनके शेष वर्ष किसी देवालयमें बिताना चाहती थी। उसे केवल एक पुत्री थी, जिसके हाथोंमें वह राजसत्ता नहीं छोड़ना चाहती थी; क्योंकि उसमें अपेक्षित प्रशासकीय योग्यताओंकी कमी थी। शिन् सा पु किसी सुयोग्य उत्तराधिकारीको शासन-भार देना चाहती थी। उसकी इच्छा थी कि दोमेंसे एक भिक्षु उसका उत्तराधिकारी बने। उसकी दृष्टिमें दो भिक्षु थे। दोनों ही समान गुणशील थे अतएव उसके लिए यह निर्णय करना कठिन हो रहा था कि सिंहासनके लिए किसका चयन करे। इस समस्याका हल उसने सर्वशक्तिमान् ईश्वरके हाथोंमें छोड़नेका निश्चय किया। एक दिन उसने गुप्तरूपसे शाही चिह्नोंको दोमेंसे एकके भिक्षा-पात्रमें छोड़ा। ये पात्र प्रतिदिन दोनों भिक्षुओंके पास भेजे जाते थे। संयोगवश ये चिह्न डम्मऽजेटीके पात्रमें पड़े और इस प्रकार वह राज्यका उत्तराधिकारी घोषित किया गया। शिन् सा पुने अपनी लड़कीसे उसकी शादी कर दी और स्वयं राज्य-कार्यसे मुक्ति लेकर एक बौद्ध मन्दिरमें रहना प्रारम्भ कर दिया। उसी मन्दिरमें १४७२ में उसकी मृत्यु हो गयी।

शिन् सा पुके शासनकालमें जो आर्थिक प्रगति हुई उससे उसका राज्यकाल स्वर्णयुग कहा जाने लगा। उसके समयमें धार्मिक पुनर्जागरण हुआ और राज्यकी स्थिति सुदृढ़ बनी।

डम्मऽजेटी (१४७२-१४९२)

राजगद्दीपर बैठनेसे पहले डम्मऽजेटी एक भिक्षु था। जब शिन् सा पु आवासे भागकर पेगू आयी तो यह उसके साथ आया था। शिन् सा पुके शासनकालमें वह मुख्यमन्त्री था और प्रशासकीय कार्योंमें रानीकी सहायता करता रहा। सन् १४७२ के लगभग शिन् सा पुने उसे अपना उत्तराधिकारी बनानेके पश्चात् अपनी पुत्रीका विवाह भी उससे कर दिया। पहले पहल तो उसके दरबारी असन्तुष्ट हुए लेकिन थोड़े ही दिन बाद उसकी प्रशासनिक कुशलता और सुव्यवस्थाओंने सबको सन्तुष्ट कर दिया।

वैधानिक सुधार—डम्मऽजेटी एक बुद्धिमान् और साधुचरित शासक था। वह रानी शिन् सा पुकी शासन-व्यवस्थाका अनुसरण करता रहा। परिणामस्वरूप प्रजाको काफी सफलता मिली। उसने राज्यके व्यवसायको भी प्रोत्साहन दिया। चीन, चिंगमाइ, और श्यामके साथ इन्हीं दिनों व्यापारिक-सम्बन्ध स्थापित हुए।

जिस प्रकार अलौंसीतूने नये कानून बनाये थे वैसे ही डम्मऽजेटीने भी कुछ नये कानून चालू किये। इन वैधानिक सुधारोंको 'डम्मऽजेटी प्याठऊँ' नामक पुस्तकके रूपमें संगृहीत किया गया। बुद्धागता नामक एक तलांइ (मुँ) भिक्षुकी सहायतासे इसने 'वारीउ डम्मत्'का बर्मी भाषामें रूपान्तर कराया।

धार्मिक पुनर्जागरण—डम्मऽजेटीके शासनकालमें धार्मिक पुनर्जागरणका काम जोरोंसे हुआ। शिन् सा पुकी तरह इसने भी अनेक बौद्ध मन्दिर बनवाये। इसमें श्वेची और चाइपउँ मन्दिर, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे। उसने सिंहल और बुद्धगया (भारत)

धर्मप्रचारक भेजे, लेकिन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रचारकमण्डल सिंहल ही भेजा गया। इस मण्डलमें २२ भिक्षु थे। इनके साथ भगवान् बुद्धके कैंडीमें स्थापित दन्त अवशेषोंपर चढ़ानेके लिए बहुमूल्य सामान भेजे गये। सिंहलके राजाके लिए भी बहुमूल्य भेंटे भेजी गयीं। सिंहल स्थित महावीर मठके मठाधीशसे विशेष धार्मिक दीक्षाप्राप्तिके उद्देश्यसे ये भेंटें भेजी गयीं थीं। १४७५ में यह मण्डल वापस आ गया और सम्पूर्ण निचले वर्माके बौद्ध मठाधीशोंको वह दीक्षा दी गयी। इसकी प्राप्तिके लिए श्याम और चीनसे भी भिक्षु आये। इसे 'कल्याणी-दीक्षा' कहा जाता था, क्योंकि सिंहलके कल्याणी नदीके किनारे ये भिक्षु दीक्षित किये गये थे। डम्मऽजेटीने इन सबको शिलालेखोंके रूपमें खुदवाया और इन्हें पेगूके एक विशेष भवनमें रखा गया। इन्हें 'कल्याणी-शिला-लेख' कहा जाता था।

डम्मऽजेटीका सन् १४९२ में देहावसान हो गया। उसके बाद उसका पुत्र बँयायान राजगद्दीपर बैठा।

बँयायान (१४९२-१५३९)

डम्मऽजेटीकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र बँयायान सन् १४९२ में गद्दीपर बैठा। वह अपने पितासे भी अधिक लम्बी अवधितक शासन करता रहा। उसके राज्यकी अवस्था उत्तरोत्तर सुधरती गयी। सन् १५१९ में पुर्तगालके निवासी पेगू आये और वहाँके शासक द्वारा सुविधा प्राप्तकर व्यवसाय करने लगे। उन्होंने मउट्टमऽमें एक व्यापारिक मंडी भी स्थापित की। इसके अतिरिक्त और विशेष उल्लेख्य घटनाएँ नहीं हुईं। वह अपने राज्यको सुव्यवस्थित छोड़कर १५३९ में मरा। उसके बाद उसका बेटा टॅयूपी गद्दीपर बैठा।

टॅयूपी (१५३९-१५४१)

टॅयूपी सबपर अविश्वास करता था, इसलिए तलांइ (मुँ) जनतामें फूट पड़ गयी। इसी बीच १५४१ में टाँगूके राजा डबिन्श्वेठीको इस अस्त-व्यस्त अवस्थाका पता लगा और उसने चढ़ाई करके पेगूपर कब्जा कर लिया। इस तरह पेगू राज्यका अन्त हो गया और यह टाँगूका एक अंग बन गया। धीरे-धीरे शां-प्रभाव दूर हो गया और तलांइ (मुँ) पुनः बर्मी शासनके अन्तर्गत आ गये।

अराकान-१ (१४६-१४०४)

अराकानके इतिहासका प्रारम्भ सन् १४६ ई० से मिलता है। अराकान प्रदेशको पर्वतश्रेणियाँ खास बर्मासे अलग करती हैं तो भी दोनोंके इतिहासपर दृष्टि डालनेसे इनकी परिस्थितियाँ समान ही मिलती हैं।

इस प्रदेशका सर्वप्रथम राजा सान्दातुरिया बताया जाता है। इतिहासकारोंका कहना है कि महामुनि मूर्तिका निर्माण और इसकी स्थापना इसी शासकने की थी ? अराकान, खास बर्माकी अपेक्षा भारतके अधिक संन्निकट होनेके कारण भारतीय रीति-रिवाज और हिन्दू धर्मसे पहलेसे ही प्रभावित रहा है। सान्दातुरियाके पश्चात् जो राजा गद्दीपर बैठे उनके नामोंके आगे 'चन्द्र' लगा रहता था। इसका तात्पर्य यह बताया जाता है कि वे भारतके चन्द्रवंशीय राजाओंके वंशज थे।

भारतसे बाहर, अन्य प्रदेशोंसे ज्यों-ज्यों बौद्ध धर्मका प्रचार बढ़ने लगा त्यों-त्यों अराकान भी इससे प्रभावित होता गया और १० वीं शताब्दीके पश्चात् तो सम्पूर्ण देश ही बौद्धमतावलम्बियोंका हो गया।

पगां वंशके बर्मी राजाओंका आधिपत्य सन् १०४४ से १२८७ तक उत्तरी अराकानपर स्थापित हो जानेके बाद भी दक्षिणी अराकान स्वतन्त्र बना रहा। पगां वंशीय प्रथम नरेश अनोयठाने अराकानपर और उसके बाद महामुनि मूर्तिपर जो चढ़ाइयाँ की थीं वे सर्वविदित हैं। उस आक्रमणके दौरानमें

अनोयठाने अराकानी युवराजको जिसकी राजधानी अक्याब जिलेके पिंसा शहरमें थी, अपनी सत्ता स्वीकार करनेके लिए विवश किया लेकिन महामुनि मूर्तिको हटानेकी कोशिश नहीं की। इस सम्बन्धमें इतिहासकारोंका कथन है कि कदाचित् अनोयठाके पास ऐसे साधन नहीं थे कि वह उस महामूर्तिको अपनी राजधानीतक ले आ सकता। मन्दिरमें स्थापित मूर्तिपर चढ़ाये गये सोने और चाँदीके पात्रोंको वह लेता गया था। बड़ी मूर्तिके पासकी जिन छोटी मूर्तियोंको शक्तिदायिनी बताया जाता था उन्हें वह जमीनमें गाड़ता गया था। उन मूर्तियोंकी शक्ति अपनी राजधानी ले जानेके अभिप्रायसे ही उसने ऐसा किया था।

अनोयठाकी अराकान चढ़ाईके पश्चात् बहुत दिनोंतक किसी बर्मी राजाने अराकानपर आक्रमण नहीं किया। जब राजा अलौंसीतूने शासनसूत्र हाथमें लिया तो उत्तरी अराकानका युवराज लेयामिंनौं उसके सहायताकी याचना करने गया। लेयामिंनौं अपने पिता समेत राजधानीसे मार भगाया गया था। अलौंसीतूसे सहायता पानेपर वह फिर अपनी गद्दी वापस पा सका। अलौंसीतूकी इस सहायताके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए लेयामिंनौंने वार्षिक कर भेजने और बौद्धगयाके मन्दिरका जीर्णोद्धार करानेका वचन दिया। लेयामिंनौंके बादके अराकानी राजा, वंशपरम्पराके अनुसार राजा होते गये। वे बर्मी राजाओं द्वारा नियुक्त राज्यपाल नहीं होते थे, लेकिन वे बर्मी राजाको वार्षिक कर भेजा करते थे।

सन् १३७४ के लगभग अराकानमें गृह-युद्ध छिड़ गया और स्थिति इस प्रकार बिगड़ चली कि कुछ अराकानी, आवाके तत्कालीन राजा मिंजीज्वासोकेके पास सहायतार्थ गये। मिंजीज्वासोकेने अपने चाचाको न्याय और उदारतापूर्वक शासन करनेके लिए भेजा। उसका शासन अराकानियोंको इतना पसन्द

आया कि उसकी मृत्युके पश्चात् उन्होंने वैसा ही दूसरा शासक मिंजीज्वासोकेसे माँगा। इस बार उसने अपने एक पुत्रको भेजा लेकिन वह अयोग्य सिद्ध हुआ। अराकानियोंने उसे खदेड़ दिया और वह आवा चला आया। इसी बीच सन् १४०१ में मिंजीज्वासोकेका देहान्त हो गया और अराकानियोंने फिर कोई उत्तराधिकारी नहीं माँगा।

अराकान-२ (सन् १४०४ से १५३४)

अराकानका दूसरा ऐतिहासिक काल राजा नरामेखलाके शासनके समयसे सन् १४०४ में प्रारम्भ हुआ। उसने अनावश्यक ही अपने राज्यपर आपत्ति बुला ली। उसके नेतृत्वमें अराकानियोंने आवा राज्यके पकउकू जिलेके याँ और लांवज़े नामक स्थानोंपर चढ़ाई कर दी। उस समय आवाका शासक मिंखांग था और उसने अपने पुत्र मिंयेचोस्वाके सेनापतित्वमें एक बड़ी सेना अराकानियोंके दमनके लिए भेजी। मिंयेचोस्वा अराकानियोंके दमनमें पूर्ण सफल हुआ और नरामेखला जान बचाकर सन् १४०४ में बंगाल भाग गया। यहाँके गौड़ राजाने उसका स्वागत किया और वह सन् १४३० तक निर्वासनमें ही रहा। नरामेखलाकी अनुपस्थितिमें पहले पहल अराकानपर बर्मी फौजने आक्रमण किया और फिर तलांइ (मुँ) ने। तलांइ (मुँ) फौजका नेतृत्व राजादरितने किया था। लांवज़ेपर बर्मी सत्ता स्थापित हो गयी और मिंखांगका दामाद अराकानका शासक नियुक्त किया गया।

सन् १४१५ में राजादरितकी तलांइ फौजने फिर अराकानपर आक्रमण किया था। उन्हीं दिनों राजादरित आवाके राजा मिंखांगके साथ भी युद्धरत रहा। इस द्रोहके परिणामस्वरूप राजादरितने मिंखांगके दामादको, जो अराकानमें लांवज़ेका शासक था, मार भगाया और वहाँके अराकानी परिवारके ही एक सदस्यको गद्दीपर बैठा दिया।

सन् १४३० में नरामेखलाको गौड़के राजासे सैनिक सहायता मिली और वह फिर सिंहासनारूढ़ हो गया। उसके बाद उसने कृतज्ञताज्ञापनके रूपमें गौड़-नरेशको भेंट भेजी और उसके

मुसलमान अनुयायियोंको म्योहौंमें सन्दिखान मसजिद बनवानेकी अनुमति दी। इसके बाद उसने अपनी राजधानी भी सन् १४३३ में लांवजेसे हटाकर म्योहौंमें स्थापित कर दी क्योंकि लांवजेपर बार-बार आक्रमण होते रहते थे। उसका शासनकाल उसके बाद एक दरबारी अदूमिन्यो द्वारा रचित एक गीतके लिए भी विशेष रूपसे प्रसिद्ध है। सन् १४३४ में उसका देहान्त हो गया और उसकी जगह उसका भाई अली खाँ गद्दीपर बैठा।

नरामेखलाके पश्चात्‌के दो राजा अराकान राज्यका विस्तार करनेमें सफल हुए। अली खाँ सन् १४३४ में गद्दीपर बैठा और उसने रामू अपने राज्यमें मिला लिया। उसके बाद बा सॉप्यो १४५९ से १४८२ तक शासन करता रहा और उसने चित्तागौंपर कब्जा कर लिया। ये राजा यद्यपि बौद्धमतावलम्बी थे तो भी इन्होंने मुसलमानोंकी उपाधियाँ और नाम रखे थे। इन्होंने शपथ लेनेकी प्रथा भी फारसी लिपिकी पुस्तकोंमें चालू कर रखी थी और उपाधियाँ भी इसलामी ढंगकी देते थे।

अराकान-३ (१५३१-१६८४)

अराकानका तीसरा ऐतिहासिक युग, जो एक शताब्दीसे भी अधिक समयतक रहा, सर्वाधिक महत्त्वका माना जाता है। इसका प्रारम्भ सन् १५३१ में राजा मिंबिनके शासनकालसे होता है। इसके कालमें अराकानपर पुर्तगालियों और बर्मियोंके विध्वंसक आक्रमण निरन्तर होते रहे। मिंबिनका शासनकाल सन् १५३१ से १५५३ तक था। वह बहुत ही सुयोग्य शासक था। उसने गद्दीपर बैठनेके बाद ही राजधानी नगर म्योहौंकी सुरक्षाके लिए फौज तैनात कर दी। यह व्यवस्था इतनी सुनियोजित थी कि बर्मी सेनाएँ शहरपर कब्जा न कर सकीं। मिंबिन रामू और चटगाँवको भी अपने शासनके अन्तर्गत रखनेमें समर्थ रहा, यद्यपि उन्हीं दिनों पुर्तगालियोंके भी आक्रमण तटीय प्रदेशोंपर चालू थे। इस समय अराकानी सैनिक-शक्ति किनारेपर स्थित पुर्तगाली जहाजोंको भयभीत रखनेके लिए पर्याप्त थी।

मिंबिन एक साधु चरित्रका आदमी था। वह बौद्ध धर्मका बड़ा ही नैष्ठिक उपासक रहा। उसने म्योहौंमें शितां, दुक्खातेंइ, लेम्याथना और श्वेडांग देवालयोंके निर्माण कराया। धार्मिक शिष्टमण्डल सिंहल भेजकर उसने भगवान् बुद्धके दाँतकी प्रतिमूर्ति प्राप्त की और उसकी स्थापना आनाण्डऽ मन्दिरमें की। मिंबिनके उत्तराधिकारियोंने साम्राज्यको और भी सुदृढ़ बनाया। उन्होंने पुर्तगालियोंसे मैत्री की जिसके फलस्वरूप चटगाँवके बन्दरगाहसे होनेवाला व्यवसाय बहुत ही प्रगति पा गया। चटगाँव और रामूके पास अराकानी फौजें रख दी गयी थीं और इस प्रकार साम्राज्यकी स्थिति पूर्ण सुरक्षित बन गयी। मिंबिनके उत्तराधिकारियोंमें सबसे शक्तिशाली मिंराजागी, मिंकामांग और सान्दातुदमा थे।

मिंराज़ागी (१५९३ से १६१२)

मिंराज़ागी भी अपने पूर्वपुरुषोंकी भाँति ही एक कट्टर बौद्ध-मतावलम्बी राजा था। उसने म्योहौंके पास परावा पगोडा बनवाया और अन्यान्य देवालयोंके सुधारके लिए भी सहायता दी। उसके नीतिकुशल और बुद्धिमान् मन्त्री महापिन्याज्योने कानूनोंका संग्रह करके एक पुस्तक प्रस्तुत की जिसका नाम 'महापिंज्योप्याठोन' रखा गया। इसका उल्लेख मनुधम्माथतके आधारपर किया गया था जो विशुद्ध बौद्ध आदर्शोंपर अवलम्बित रहा।

मिंराज़ागीके शासनकालमें अराकानियोंने पेगू राज्यपर आक्रमण किया। टाँगूके राजाने तत्कालीन पेगू नरेश नण्डाबएँपर आक्रमण करनेके लिए अराकानी शासकसे सहायता माँगी। इसपर, मिंराज़ागीने एक पुर्तगाली सेनापति डी ब्रिटोके नेतृत्वमें जहाज भरकर सैनिक भेजे। उसका मन्त्री महापिन्याज्यो भी फौजके साथ-साथ आया। अराकानियोंकी विजय हुई और सिरियमपर उनकी सत्ता स्थापित हो गयी। इसके पश्चात् पेगूपर घेरा पड़ा और टाँगू तथा अराकानकी सम्मिलित फौजने नण्डाबएँको सपरिवार गिरफ्तारकर कत्ल कर डाला। इस विजयके पश्चात् जब अराकानी वापस होने लगे तो वे ३ हजार परिवार, एक सफेद हाथी, और बयिनौं द्वारा जीतकर अयोडियऽ (अयोध्या)से लायी गयी ५० मूर्तियाँ लेते गये। इस तरह अराकानियोंके आधिपत्यका प्रभाव बर्माके भीतरी भागोंपर भी होने लगा।

मिंकामांग (१६१२-१६२२)

मिंकामांगका दूसरा नाम हुसेन शाह था। वह बौद्ध धर्मके प्रति अनुराग रखता था और उसकी रानीने म्योहौंके पास रत्नाबों देवालयका निर्माण करनेमें उसे काफी सहायता पहुँचायी थी। उसके शासनकालमें पुर्तगालियोंने अराकानी किनारोंपर फिर आक्रमण शुरू कर दिया था। उन्होंने सैंद्वीपपर अपना शिविर बना लिया था। यह टापू व्यावसायिक केन्द्रस्थल था और गंगाके डेल्टा प्रदेशके सभी व्यवसायोंका नियन्त्रण यहींसे होता था। मिंकामांगको पुर्तगालियोंकी शक्तिका भी दमन करनेकी जरूरत पड़ गयी थी और इसलिए उसने डच सरकारसे भी मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करके सन् १६१७ में सैंद्वीपपर सत्ता स्थापित कर ली। पुर्तगाली उसकी सेवा करनेके लिए राजी हो गये। वे चटगाँव प्रदेशमें आबाद हो गये और नोआखाली तथा सुन्दरबनको अराकानमें मिला लेनेके लिए सहायक सिद्ध हुए। उन्होंने ढाका और मुर्शिदाबादपर भी आक्रमण किया और उसपर सत्ता स्थापित करके वहाँके बहुसंख्यक निवासियोंको बन्दी बना लिया। अब अराकानी बंगालके दक्षिणी भागमें भी शक्तिसम्पन्न हो गये थे।

अराकान–४ : सान्दातुदमा तथा उसके बाद (१६५२-१७८५)

सान्दातुदमा सन् १६५२ में गद्दीनशीन हुआ और ३० वर्षोंसे भी अधिक समयतक शासन करता रहा। यह अराकानके सर्वश्रेष्ठ शासकोंमेंसे प्रमुख माना गया है। उसने अपनी राजधानीमें बहुत-से बौद्ध मन्दिर बनवाये जिनमेंसे ज़िनामानांग, दी च्यामानांग, रत्नामानांग, श्वेच्यातेर और लोकामूके नाम विशेषरूपसे उल्लेख्य हैं। उसने बौद्धधर्मप्रचारकोंका एक शिष्टमण्डल भी सिंहल भेजा। सन् १६६० के लगभग उसने अपने राज्यमें सिक्केकी प्रथा चलायी और तभीसे अराकानमें सिक्कोंका प्रचलन प्रारम्भ हुआ।

सन् १६६० में सान्दातुदमाने भारतके मुगल शाहंशाह औरंगजेबके भाई शुजाको शरण दी। शुजा मक्कामें जाकर मरना चाहता था और उसकी इस मनोकामनाकी सिद्धिमें सहायक होनेका वचन सान्दातुदमाने दिया था और इसी इरादेसे शुजा आया भी, किन्तु आगे चलकर जो कुछ हुआ उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकी थी।

शुजा सपरिवार अराकान आया था और उसके साथ उसकी एक अत्यन्त रूपवती पुत्री थी जिसके साथ सान्तातुदमाको वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करनेकी लिप्सा हो गयी। उसने शुजाके सामने इसका प्रस्ताव रखा परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। अब, सान्दातुदमाने शुजाके खिलाफ सख्त कदम उठानेका निश्चय कर लिया। इसका पता जब शुजाको लगा तो वह मुसलमान अराकानी जनताको विद्रोह करनेके लिए भड़काकर स्वयं

भाग निकलनेके प्रयत्नमें लग गया। किन्तु वह इसमें सफल नहीं हुआ। सान्दातुदमाने विद्रोहका दमन तो कर ही दिया, शुजाको भी सपरिवार बन्दी बना लिया और उन सबको कत्ल करा डाला। यहाँतक कि उसने उस रूपवती राजकुमारीको भी मरवा डाला जिससे विवाह करनेकी उसे लिप्सा थी।

शाहंशाह औरंगजेबको अराकानके राजाकी यह हरकत पसन्द नहीं आयी और उसने बंगालके मुगल वाइसराय शाइस्ता खाँको सैंद्वीप और फिर चटगाँवपर आक्रमण करनेके लिए आदेश दिया। सन् १६६६ में मुगल सेनाने चटगाँवपर आक्रमण करके दो हजार अराकानियोंको बन्दी बना लिया। चटगाँवका पतन अराकानकी सफलताके लिए विध्वंसक सिद्ध हुआ। अराकानियोंकी जातीय शक्तिका ह्रास शुरू हो गया, तो भी सान्दातुदमाने मुगलोंके आक्रमणसे अपनी राजधानी बचाकर रखी। सन् १६८४ में उसकी मृत्यु हुई और उसके बाद ही विप्लव और अराजकता फैल गयी। मुगलोंने राजधानीपर आक्रमण किया और देशको भी रौंद डाला। वे मनमानी हत्याएँ करके अपनी ओरसे राजाओंको गद्दीपर बिठाते गये। उनकी यह मनमानी सन् १७१० तक चलती रही। इसी समय सान्दाविजया नामक एक नेता इनके बीच हुआ जिसने मुगलोंका पूर्णरूपसे दमन कर अपनेको शासक घोषित कर दिया। उसने १७१० से १७३१ तक शासन किया। ये दिन अराकानियोंके लिए शान्तिके थे क्योंकि वहाँके निवासी मुगल विस्थापित करके रामरी क्षेत्रमें भेज दिये गये।

सन् १७३१ में सान्दाविजयाका भी कत्ल कर दिया गया और उसके बाद अर्द्ध शताब्दीतक अराकानमें विप्लव और अराजकता ही बनी रही। गृहयुद्ध शुरू हो गया और एकके बाद एक राजाकी हत्या होती गयी।

सन् १७८२ में तामादा नामक दूसरे आराकानी नेताका प्रादुर्भाव हुआ। वह अन्तिम शासक था। जनता उसके अनाचारपूर्ण शासनसे बहुत घृणा करने लगी थी। फलस्वरूप जिस वर्ष उसने शासन सँभाला उसी वर्ष कतिपय अराकानी नेता भागकर आवा आये और राजा बोडोफयासे अनुरोध किया कि वह अराकानको अपने राज्यमें मिला लेवे। राजा बोडोफयाने उनका अनुरोध तो स्वीकार कर लिया किन्तु साथ ही वह महामुनि मूर्तिकी जादूभरी शक्तिसे भयभीत भी हो रहा था। इसलिए उसने कतिपय दैवी-शक्तिसम्पन्न अपने दरबारियोंको भिक्षुवेशमें उस मूर्तिकी शक्तिका अनुमान तथा नाश करनेके लिए भेजा। उसके बाद १७८४–८५ में ३० हजार सैनिकोंकी फौज अराकानपर कब्जा करनेके लिए भेजी गयी। जिस समय यह बर्मी फौज अराकानमें पहुँची, अधिकतर ग्रामीण वाद्य और गानके साथ उनका स्वागत करने आये। कुछ ही काल पश्चात् अराकानियोंने बर्मियोंके विरोधमें विद्रोह करना भी प्रारम्भ कर दिया क्योंकि बर्मी फौजके अनाचारपूर्ण व्यवहार उन्हें असह्य होने लगे। यह गृह-युद्ध निरन्तर चालू ही रहा और अराकानी ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र चटगाँवमें जाकर शरण लेने लगे। दैव-योगवश सन् १८१५में अराकानी नेता ङा चिन प्याँकी मृत्यु हो गयी और अराकानियोंने बर्मी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली।

टाँगू राजवंश-(१२८७-१७५२)

टाँगू राज्यकी नींव तो सन् १२८७ में ही पड़ गयी थी किन्तु इसे व्यवस्थित एवं औपचारिक रूप सन् १३६८ में मिला। प्यांछी नामक एक प्रतिभाशाली व्यक्तिने इसे व्यवस्थित रूप दिया। सन् १२८७ के आस-पास चीनी और शां आक्रमण बर्मापर इतने वेगसे होने लगे कि वहाँ की जनता घबराकर इधर-उधर भागने लगी थी। वह सिट्टौं नदीके किनारेसे होती हुई टाँगूकी ओर आयी और यहीं घर बनाकर रहने लगी। नवागन्तुकोंने यहाँ एक किला भी बनवाया और १३६८ के आस-पास इनमेंसे प्यांछी नामक एक ऐसा प्रतिभाशाली पुरुष पैदा हुआ कि उसने इस किलेको राजधानी दुर्गका रूप दे दिया। टाँगूके पास-पड़ोसके लोगोंमें उसने एकता स्थापित की और अधिकतर गाँवोंको इस राज्यमें मिला लिया। यही कारण है कि उसे टाँगू राज्यका संस्थापक कहा जाता है। प्यांछीकी १३७७ में मृत्यु हो गयी किन्तु मृत्युकालतक उसने राज्यको सब प्रकार सुदृढ़ बना दिया था।

सन् १४८६ के आस-पास एक दूसरे प्रतिभाशाली पुरुषका उदय हुआ। उसका नाम मिंजीयो था और वह १५३१ तक राज्य करता रहा। अपने शासनकालमें उसने एक दूसरे गाँवकी स्थापना की जिसका नाम डेयावडी था। अल्पकालमें ही वह मध्य बर्माका एक बहुत ही शक्तिशाली व्यक्ति बन गया। आवाके प्रमुखने उसका विवाह अपनी लड़कीसे कर दिया और चौसे जिला दहेजमें दिया। इससे टाँगूकी महत्ता और ख्यातिमें एक विशेषता आ गयी।

सन् १५२१ में मोइयनके प्रमुखने जब आवापर आक्रमण कर उसपर कब्जा कर लिया तो मिंजीयो भयभीत हो उठा। उसे खयाल हुआ कि कहीं टाँगूपर भी आक्रमण न हो जाय और इसलिए उसने अपने राज्यकी रक्षाके लिए एक अद्भुत उपायसे काम लेना शुरू किया। उसने टाँगूके चारों ओर एक झील खुदवा दी और वहाँसे लेकर चौसेतककी भूमिको बीरान कर दिया। इस रीतिसे वह शां आक्रमणोंसे अपनेको बचा सका परन्तु चौसे ज़िलेसे उसे बाज आना पड़ा।

सन् १५३१ में मिंजीयोकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका पुत्र डबिन्श्वेठी गद्दीपर बैठा। मिंजीयो उन बर्मी शासकोंमें गिना जाता है जिसके कारण टाँगूकी बर्मी जनताका अस्तित्व कायम रह सका।

डाबिन्श्वेढी (१५३१-१५५०)

मिंजीयोकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र डबिन्श्वेठी टाँगूकी राजगदीपर बैठा । उस समय वह केवल १४ वर्षका था । बचपनसे ही उसकी प्रवृत्ति युद्धात्मक थी । एक तो उसे सैनिक जीवन पसन्द था और दूसरे वह महत्त्वाकांक्षी भी था इसलिए गदीपर बैठनेके बाद ही उसने अपना राज्य-विस्तार शुरू कर दिया । वह अपने यत्नमें सफल रहा । कुछ ही वर्षोंमें उसने एक दूसरे वर्मी साम्राज्यकी स्थापना की ।

डबिन्श्वेठीने आक्रामक प्रवृत्तिसे काम लेना शुरू कर दिया । उसने आवापर यद्यपि आक्रमण नहीं किया तो भी अन्यान्य अनेक पड़ोसी क्षेत्रोंपर आक्रमणकर उन्हें अपने राज्यमें मिला लिया । आवापर हमला करके उसपर विजय पानेका उसे भरोसा नहीं था इसलिए वह ऐसा करनेमें हिचकता था । उसकी आकांक्षा थी कि वह पास-पड़ोसके क्षेत्रोंपर अधिकारकर और अपनी शक्ति सबल बनानेके बाद ही आवापर चढ़ाई करे जिससे शां जागीरदारोंको निश्चय ही हटा सके । उन दिनों पेगू राज्यकी आर्थिक स्थिति पूर्ण सन्तोषप्रद थी । लेकिन वहाँका तत्कालीन शासक लोकप्रिय नहीं था । इसलिए तलांइ (मुँ) जनतामें फूट चल रही थी । इस फूटसे लाभ उठानेकी सोचकर डबिन्श्वेठीने पेगूपर आक्रमण कर दिया । वह इस अभियानमें सफल हुआ और तलांइ (मुँ) ने उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली । सन् १५४१ में पेगू टाँगू राज्यका एक अंग बना लिया गया और इस तरह लगभग ३ शताब्दियों बाद तलांइ (मुँ) फिर वर्मी प्रभुत्वके नीचे आ गये ।

१५४२ में डबिन्श्वेठीने प्रोमपर आक्रमण किया और उसे जीत लिया । अब वह अपनेको ऊपरी वर्मापर कब्जा करनेके योग्य

समझने लगा क्योंकि प्रोम-विजयने उसका हौसला बहुत बढ़ा दिया था। अब वह उत्तरी बर्माकी ओर चल पड़ा।

सन् १५४४ से ४६ के बीच उसने पगांपर चढ़ाई करके सरलताके साथ आधिपत्य प्राप्त कर लिया और इस भाँति पगांसे प्रोमके बीचका सम्पूर्ण डेल्टा-प्रदेश बर्मी प्रभुत्वके अन्तर्गत आ गया।

अब डबिन्श्वेठीको राज्याभिषेक करानेकी महत्त्वाकांक्षा हुई। वह पगांसे वापस टाँगू आनेके बाद ही इसकी तैयारीमें लग गया। सन् १५४६ में पगांके राजाओंने उसका निहित विधियोंसे राज्याभिषेक किया। उसने तलांइ (मुँ) रीति-रिवाजोंका भी व्यवहार करना शुरू कर दिया जिसके परिणामस्वरूप तलांइ (मुँ) जनता उसे श्रद्धाभरी दृष्टिसे देखने लगी।

डबिन्श्वेठीके प्रोम-अभियानकालमें अराकानके प्रमुखने प्रोमके जागीरदारकी सहायताके लिए अपनी फौज भेजी थी। इसलिए डबिन्श्वेठी अराकानके प्रमुखसे बदला लेनेके लिए क्षुब्ध बैठा था। उसने १५४६ में अपनी सेना जल और स्थल दोनों मार्गोंसे अराकानपर चढ़ाईके लिए भेज दी। अराकानके राजधानी नगर म्योहौंपर घेरा डाल दिया गया, परन्तु अराकानियोंने आत्मसमर्पणकी माँग ठुकरा दी। इसी बीच निचले बर्मापर श्यामियोंके आक्रमण होने लगे और बर्मी राज्यकी सीमाओंपर पड़ोसियों द्वारा आक्रमण तो कुछ पहलेसे ही होते आ रहे थे। ऐसी स्थितिमें डबिन्श्वेठी अराकानसे अपनी सेना वापस बुलानेके लिए विवश हो गया। वह अपनी राजधानी टाँगू दौड़ा आया क्योंकि अब उसे अपने राज्यकी रक्षाकी आ पड़ी थी, श्यामियोंके आक्रमणने उसे घबड़ा दिया था। अराकानपर आक्रमण विफल हुआ और अब श्यामकी राजधानी अयोडियऽके घेराबन्दीकी योजना प्रारम्भ हुई।

अराकानके विफल अभियानसे वापस होनेके बाद ही डबिन्-

श्वेठीने श्यामपर चढ़ाई कर दी। पेगू और मउट्टमऽसे होता हुआ वह आगे बढ़ा। उसने मउट्टमऽके आगेकी खाड़ी नौकाओंसे बनाये गये एक पुलसे पार की। उसकी फौजने हाथियों और टटटुओंका भी उपयोग कर रखा था। तोपें डबिन्श्वेठीके साथ-साथ ले जायी जा रही थीं। उसने कुछ पुर्तगाली सैनिकोंको किरायेपर ले रखा था जो अंगरक्षकोंका काम करते थे। उसके बाद उसकी फौज अतारन नदीसे होती हुई ऊपरकी ओर बढ़कर 'त्रै मन्दिर' (तीन पगोडा) शहरको पहुँची और इधर मेखलांग नदीसे होती कांबुरी आयी। ऐसी सैनिक घेरेबन्दीके बाद बर्मी सेनाने राजधानी नगर अयोडियऽपर आक्रमण किया। आक्रमण असफलप्राय हो चला था परन्तु डबिन्श्वेठीके भाग्यसे श्यामका युवराज उसके चंगुलमें आ गया। डबिन्श्वेठीने युवराजको अपने एक अतिथिके रूपमें रखकर श्यामके राजासे अपनी सेना निरापद जाने देनेकी माँग की। इच्छा न होते हुए भी श्यामके राजाको इसके लिए राजी होना पड़ा और डबिन्श्वेठी रैहोंग होता हुआ वापस आ गया।

डबिन्श्वेठीकी आक्रामक और विस्तारवादी नीतियोंके परिणामस्वरूप इधर तनासरिम क्षेत्रसे लेकर उधर ऊपरी बर्माके पगांतक उसकी सत्ता स्थापित हो गयी थी। उसके राज्याश्रयमें अनेक स्वायत्त सत्तावाले जागीरदार थे जो डबिन्श्वेठीकी प्रभुसत्ता स्वीकार किये हुए थे। वह इतनेसे ही प्रसन्न रहता था। उसने उन जागीरदारोंको छूट दे रखी थी, लेकिन उसे यह ध्यान नहीं था कि राज्यका केन्द्रीकरण विशेष अर्थ रखता है और ऐसा न होनेपर जब भी कोई दुर्बल राजा गद्दीपर बैठेगा, वे विद्रोह कर सकते हैं। वस्तुतः इस अदूरदर्शी नीतिका आगे चलकर उसे कुपरिणाम भी भोगना पड़ा। १५५० में डबिन्श्वेठीकी मृत्युके बाद ही उसका राज्य अनेक टुकड़ोंमें बँट गया।

डबिन्श्वेठी द्वितीय बर्मी साम्राज्यके संस्थापकके रूपमें माना गया है। वह बर्मी और तलांइ (मुँ) दोनों ही प्रजाजनोंका श्रद्धाभाजन था। तलांइ (मुँ) रीति-रिवाजोंका व्यवहार करनेके कारण वह और भी लोकप्रिय बन गया। अब वह तलांइ (मुँ) की भाँति ही केश रखता था और उनकी जैसी ही पोशाक पहनता था। उसकी परिषद्के अनेक सदस्य भी तलांइ (मुँ) थे।

इतिहासकारोंका कहना है कि १५५० ई० के आस-पास डबिन्श्वेठीको शराब पीनेकी आदत पड़ गयी थी। उसकी मैत्री एक पुर्तगाली अधिकारीसे हो गयी जिसकी कुसंगतिने उसे शराबी बना दिया। वह राज्य-कार्यकी परवाह छोड़कर इसीमें लीन रहने लगा। लेकिन सौभाग्यसे उसे बयिंनौं जैसा विश्वस्त सौतेला भाई मिल गया था। वही सम्पूर्ण प्रशासकीय कार्योंको देखता था। परिणामस्वरूप राज्य सलाहकार परिषद्के अनेक सदस्योंने उसे गद्दीपर बैठ जानेका भी सुझाव दिया, लेकिन बयिंनौंको यह प्रलोभन कर्तव्यपथसे विचलित नहीं कर सका। वह ऐसे प्रस्तावोंको ठुकराता ही रहा।

१५५० में राज्यकी दृढ़तापर आघात होने लग गये थे। स्येंठॉ नामक एक तलांइ (मुँ) भिक्षुने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया था। बयिंनौं इसका दमन करनेके लिए राजधानीसे चल पड़ा। वह विद्रोह-दमनमें ही लगा था कि इधर कतिपय तलांइ (मुँ) अधिकारियोंने उसे मार डाला। वे डबिन्श्वेठीको यह प्रलोभन देकर जंगलमें ले गये कि एक सफेद हाथीका पता लगा है। उसे वहीं मार डाला गया। डबिन्श्वेठीकी मृत्युके पश्चात् सभी जागीरदार, जो उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार करते थे, स्वतन्त्र हो गये। बयिंनौंको जंगलमें शरण लेनी पड़ी और इस प्रकारसे द्वितीय बर्मी साम्राज्यका मानो अन्त हो गया।

बयिंनौं (१५५१-१५८१)

सन् १५५० में डबिन्‌श्वेठीके देहान्तके बाद बयिंनौं नाममात्रके लिए ही राजा बना क्योंकि न उसे टाँगूकी राजगद्दी मिली थी और न राज्यविस्तारपर ही उसकी हुकूमत चल रही थी। उसके साथ कुछ विश्वस्त सैनिक अवश्य थे जिन्हें लिये हुए वह जंगलमें छिपा था। राज्यके कुछ तलांइ (मुँ) अधिकारी, राज्यपाल और जागीरदार तो चुपचाप बैठे थे लेकिन कुछ विद्रोह कर रहे थे और जो शान्त थे वे उन विद्रोहोंके दमनमें बयिंनौंका साथ देनेके लिए भी तैयार नहीं रहे। उसके निजी सगे-सम्बन्धी, जो ऊपरी बर्मामें थे, अपने शहरोंकी चहारदीवारीके भीतरसे तमाशाभर देखते थे और इस प्रतीक्षामें थे कि जब बयिंनौंका पतन हो जाय तो वे स्वच्छन्द होकर अपने-अपने पराक्रमका प्रयोग करने लगें। उनमेंसे प्रत्येक बृहद् बर्मी-राज्यस्थापनाका महत्त्वाकांक्षी था। पेगूमें स्यैंठॉने तो क्रान्ति मचा ही रखी थी, राजमहलके अग्रणी अधिकारी भी बगावत कर रहे थे। ऐसी विषम परिस्थितिके बीचमें बयिंनौं संकल्प-विकल्पमें ही था कि उसके कतिपय पुर्तगाली मित्र उसकी सहायताके लिए उद्यत हो गये। कालान्तरमें कुछ बर्मी और तलांइ (मुँ) परिचित जन भी सहायता करनेके लिए तैयार हो गये। बयिंनौं अपने सौतेले भाईके प्रति कितना वफादार रहता आया था, इसका स्मरण बहुतोंको रहा और वे बड़ी ही शुभेच्छासे उसकी सहायता करनेके लिए तैयार हो गये।

शक्ति-संघटन और सैनिक विजय—इस प्रकार जब उसकी सैनिक शक्ति आत्मविश्वासदायक बन गयी तो वह सबसे पहले टाँगूकी

राजगद्दीपर आधिपत्य स्थापित करनेके लिए चला जिसपर वह अपना जन्मजात अधिकार समझता था। टाँगूमें उसके अनेक विश्वस्त अनुयायी थे इसलिए वह उसपर पहले अधिकार करना चाहता था। उसे यह भी भरोसा था कि टाँगू निवासी अधिकांश जनता उसके राज्याधिकारके औचित्यको अनुभव कर सहायताके लिए तैयार हो जायगी। उसका यह अनुमान साकार भी हुआ। उसने टाँगूपर विजय प्राप्त कर ली। इस स्थितिसे लाभ उठाकर स्येंठॉने पेगूमें भयंकर विद्रोह किया और वहाँका शासक बन गया था। इसके बाद बयिंनौं प्रोमकी ओर चल पड़ा और वहाँ उसे आसानीसे विजय मिल गयी। प्रोम विजयके बाद बयिंनौंने पेगूकी ओर अभियान किया और वहाँ भी उसे शानदार सफलता मिली। पेगू भी टाँगू राज्यमें सम्मिलित कर लिया गया। स्येंठॉ गिरफ्तार कर मार डाला गया। पेगूमें वारीउकी राज्य-परम्पराका यह अन्तिम पुरुष उत्तराधिकारी था। इसलिए इसके पश्चात् पेगूमें विद्रोह नहीं हुआ। १५५१ तक बयिंनौंने उन सभी राज्योंको फिरसे जीत लिया जो द्वितीय बर्मी राज्य-सत्ताके अन्तर्गत थे और डविन्श्वेठीके निधनके समय छिन्न-भिन्न हो गये थे।

टाँगू, प्रोम और पेगू जीतनेके बाद बयिंनौंने अनेक आक्रामक युद्ध किये। अपने सौतेले भाईकी तरह उसे भी बृहद् राज्य-स्थापनाकी आकांक्षा थी। सन् १५५५ में उसने ऊपरी बर्मापर आक्रमण शुरू किया। बर्मी और तलांइ (मुँ) सैनिकोंकी संयुक्त सेना लेकर वह एयावडीकी घाटीसे होता हुआ आवा पहुँचा और उसपर कब्जा कर लिया। आवाके साथ ही चौसेपर भी अधिकार कर लिया गया। आवा विजयके बाद वह शां पठारकी ओर बढ़ा। एक-एक करके सभी शां जागीरदारोंने आत्मसमर्पण कर दिया। इस भाँति सन् १५५५ तक ऊपरी बर्मा और शां राज्य उसके शासनके अन्तर्गत आ गये। लेकिन शां जागीरदारोंपर

उसका शासन नाममात्रके लिए ही था। शां जागीरदार प्रतिवर्ष उसे कर दिया करते थे। वे करमें उन्हीं वस्तुओंको देते थे जिनका उत्पादन करते। मोमीकका जागीरदार अपने राज्यकी खानसे निकलनेवाले माणिक करमें देता था। कतिपय निपुण कलाकार बयिंनौंके दरबारमें काम करने भी जाते थे। कुछ शां जागीरदार अपने लड़कोंको बर्मी शाही दरबारमें शिक्षाप्राप्तिके लिए भी भेजते थे।

सन् १५५५ से १५६३ के बीच निचले बर्मामें पूरी शान्ति थी। विदेशी व्यवसायी सामुद्रिक मार्गसे डेल्टा प्रदेशके बन्दरगाहोंतक व्यापारके लिए आते थे जिनमेंसे कुछ वहाँ बस भी गये थे। बयिंनौंके व्यवहार इनके साथ उत्तम थे इसलिए व्यापारमें भी वृद्धि होने लगी थी। वह उनसे अनुचित कर नहीं लेता था। कुछ वर्षोंमें ही डेल्टा प्रदेश ऐसे लोगोंसे भर गया कि उनका आमोदप्रिय जीवन ग्रामीणोंमें सर्वदा चहल-पहल मचाये रखता था। कुछ वर्षोंमें ही उसकी राजधानी सुन्दरतम भवनोंसे शोभित हो गयी लेकिन बयिंनौं इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं था। वह अपना राज्य श्यामकी भाँति सफल देखना चाहता था। श्यामकी राजधानी अयोडियऽके वैभवसे वह अत्यन्त प्रभावित था और उसने सुना था कि यह वैभव वहाँ बँधे चार सफेद हाथियोंके ही कारण था। इस कारण वह अपनी महत्त्वाकांक्षा रोक न सका और उसने अयोडियऽपर आक्रमण करनेका निश्चय कर लिया।

सन् १५६३-६४ में बयिंनौं अयोडियऽकी ओर फौज लेकर चल पड़ा। उसकी सेनाने कांपेंगपेट् और सुखोटेपर सरलतासे कब्जा कर लिया। उसके बाद वह अयोडियऽकी ओर बढ़ा। बयिंनौंके बहुतेरे सैनिक मारे गये लेकिन वह अयोडियऽ पहुँच गया। श्यामका राजा अपने दरबारियों और शाही परिवार सहित गिरफ्तार कर लिया गया। उसने अयोडियऽके प्रमुख कलाकारों-

को भी पकड़ लिया और उन्हें बर्मा भेज दिया। उसने अयोडियऽका शासन वहाँके युवराजके हाथोंमें सौंप दिया और उसकी सहायता तथा सुव्यवस्थाके निमित्त तीन हजार बर्मी सैनिक रख दिये गये। युवराजने बयिंनौंकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली थी। बयिंनौंका यह अभियान 'अयोडियऽकी दूसरी चढ़ाई'के नामसे प्रसिद्ध है।

सन् १५६६ में बयिंनौंको चींगमाइके विद्रोहका दमन करनेके लिए जाना पड़ा। जिस समय बयिंनौं श्यामकी चढ़ाईमें व्यस्त था, चींगमाइके प्रमुखने अवसरसे लाभ उठाकर विद्रोह कर दिया। बयिंनौं इससे बहुत क्रोधित हुआ और उसने तत्काल विद्रोहका दमन करनेके लिए अभियान किया। इसके विद्रोहके दमनमें उसने बड़ी ही कठोरतासे काम लिया। कहते हैं कि जब दमन और सैनिक प्रहार बन्द करनेका निवेदन लेकर कुछ बौद्ध भिक्षु बयिंनौंके पास गये और तभी कुछ नेताओंकी जान बची।

श्यामके जिस राजाको बयिंनौं गिरफ्तार करके लाया था वह १५६८ में भिक्षु बन गया और वह अयोडियऽ जाकर वहीं साधुजीवन बिताना चाहता था। बयिंनौंने उसे ऐसा करनेकी अनुमति दे दी। लेकिन ज्योंही वह अयोडियऽ पहुँचा उसने अपने कषाय वस्त्रोंको फेंक दिया और बयिंनौंके विरोधमें विद्रोहपर तुल गया। बयिंनौं फिर एक बड़ी बर्मी फौज लेकर श्यामकी ओर चल पड़ा। इस बार श्यामके राजाके एक विशिष्ट दरबारीने बयिंनौंकी सहायता की। अयोडियऽ फिर एक बार बर्मी शासनके अन्तर्गत आ गया, लेकिन उसकी अनुपस्थितिसे लाभ उठाकर डेल्टा प्रदेशके कुछ जागीरदारोंने विद्रोह कर दिया। बयिंनौंको इन विद्रोहोंको दबानेमें मृत्युपर्यन्त लगा रहना पड़ा। सन् १५८१ में उसकी मृत्यु हुई और उस समय भी वह अराकानपर चढ़ाई करनेकी तैयारीमें था।

राज्यव्यवस्था तथा शासनसुधार—बयिंनौंकी राज्य-व्यवस्थाएँ वैसी ही थीं जैसी डबिन्श्वेठीकी। इसमें जागीरदारीकी प्रथा भी चलती रही। बयिंनौं बर्मी इतिहासमें 'शाहंशाह' (राजाओंका राजा) की उपाधिसे विभूषित है, क्योंकि उसने सम्पूर्ण बर्मापर सत्ता स्थापित कर ली थी। उसकी प्रभुसत्ताको २० राजाओंने स्वीकार किया था। इन राजाओंको स्वायत्त सत्ता दे रखी गयी थी और इनसे केवल वार्षिक कर पाकर वह सन्तुष्ट रहता था। बयिंनौंने प्रशासकीय केन्द्रीकरणका ध्यान नहीं दिया था जिसके परिणामस्वरूप उसे सर्वदा ही क्रान्तियोंका सामना करना पड़ता रहा। वह जब भी राजधानीसे बाहर जाता था, एक-न-एक और कभी-कभी एक ही साथ अनेक जागीरदार विद्रोह कर बैठते थे।

बयिंनौंने सामाजिक सुधारों और धार्मिक प्रचारोंके लिए अनेक नये नियम लागू किये। उसने साम्राज्यके सभी प्रतिष्ठित अधिकारियों और मूर्धन्य भिक्षुओंको बुलाया और धार्मिक कानूनकी पुस्तकोंको एकत्र करनेके लिए कहा। उन्होंने 'वारीउ डम्मत्' और 'डम्मत चो' तथा 'कोसाइंग चौक'को आधिकारिक धर्मग्रन्थकी संज्ञा दी। इन्होंने जो निर्णय दिया वह 'हंतावडी सिंब्युशिं' नामक ग्रन्थमें एकत्र किया गया। इसने नाप-तौलके अनेक नियमोंको भी चालू किया। उन दिनों शानियोंमें बलिकी प्रथा बहुत अधिक चालू थी जिसे बन्द करानेका भी बयिंनौंने यत्न किया। शां जागीरदारोंके मरनेके बाद उनके प्रजाजन बहुतायतसे दासों और पशुओंकी बलि इस विश्वाससे चढ़ाया करते थे कि उनका प्रभु (जागीरदार) यह शरीर छोड़कर जहाँ भी होगा वहाँ उसकी सेवाएँ इनके द्वारा होती रहेंगी।

दासों और पशुओंकी बलिकी प्रथा रोकेनेकी प्रेरणा बयिंनौंको इसलिए हुई कि वह बौद्ध धर्मके सिद्धान्तोंमें अटूट आस्था रखता था और ऐसी रीतियाँ भगवान् बुद्धके उपदेशोंके विपरीत

थीं। महागिरि पर्वतकी शक्तिको बलि चढ़ानेकी बहुत ही निन्दनीय प्रथा चालू थी और बयिंनौंने उसे भी दबाया। नशीली वस्तुओंके प्रयोग और शराबखोरीका भी वह विरोधी था। उसने सम्पूर्ण राज्यमें मद्यनिषेधकी घोषणा कर दी थी। इस घोषणाका उल्लंघन करनेवालेको मृत्युदण्डकी भी चेतावनी दी गयी थी।

धार्मिक नीति—बयिंनौं अत्यन्त धर्मपरायण व्यक्ति था। अपने पूर्वजोंकी तरह वह भी मन्दिर-निर्माणमें विश्वास रखता था। उसने अनेक मन्दिर बनवाये जिनमें पेगूका महाज़ेडी फया(मन्दिर) सर्वश्रेष्ठ था। इस मन्दिरमें उसने एक पत्थरका भिक्षापात्र स्थापित कराया जो उसे सिंहली राजकुमारने भेंट किया था। अनेक बार उसने अपने राजमुकुटको तोड़वाकर उसके जवाहिरात मन्दिरोंकी शोभा बढ़ानेमें लगवा दिया। उसने अनेक बार भिक्षुओंको सामूहिक रूपसे भोजन कराया और साधारण जनताको बुलाकर दीक्षा दिलायी। इन कृत्योंको वह निजी देख-रेखमें कल्याणी तेंइमें सम्पन्न कराता रहा। राज्यकी जनतामें वह बौद्ध धर्मके सिद्धान्तोंको छपवाकर बँटवाता था। श्वेमोडोके पास उसने अनेक मन्दिर बनवाया। पेगूके महाज़ेडी मन्दिरमें अनोयठा तथा च्यां सित्ताकी तरह उसने भी अपनी, अपने परिवार और अधिकारियोंकी मूर्त्तियाँ स्थापित करायीं।

बयिंनौंने सिंहलके साथ धार्मिक सम्बन्ध स्थापित किया। पगां वंशके प्रारम्भके राजाओंकी भाँति वह भी भगवान् बुद्धके दाँतोंको अपनी राजधानीमें रखनेका अभिलाषी था। १५६० के आस-पास पुर्तगालियोंने सिंहलपर चढ़ाई की और वे उस दाँतको वहाँसे गोवा उठा ले गये। इसपर बर्मी राजाने दाँत पानेके लिए सोना और चाँदीकी बड़ी राशि पुर्तगालियोंको भेंटमें भेजी, लेकिन इसके पहले ही वह दाँत गोवासे कैंडी वापस चला आया। बयिं-

नौं वह दाँत प्राप्त करनेके लिए कृत-संकल्प था। इधर अनेक ज्योतिषियोंने भी उसका भविष्यफल बताते हुए कहा कि उसके भाग्यमें एक सिंहलीय राजकुमारीसे विवाह लिखा है। इसलिए उसने अपने दूत सिंहल भेजे जिन्होंने सिंहल नरेशसे बयिंनौंकी महत्ताओं और कामनाओंको व्यक्त किया। सिंहलका राजा इससे बहुत प्रभावित हुआ किन्तु उसके कोई लड़की ही नहीं थी। इसलिए उसने अपने मन्त्रीकी लड़कीसे विवाहका प्रस्ताव रखा और भगवान् बुद्धका दाँत भेंट किया। १५७६ में दाँत बसीन पहुँचा। इसे लेकर एक भव्य जुलूस निकाला गया जिसका नेतृत्व बयिंनौंने खुद किया। दाँत रखनेके लिए एक रत्नजटित मंजूषा तैयार करायी गयी थी। मंजूषामें दाँत रखकर बयिंनौं उसे पेगूके महाज़ेडी मन्दिरमें ले आया। यह बयिंनौंके लिए सर्वाधिक सुखद दिन था। उसने कहा—"भगवान् मुझपर कृपालु हैं, क्योंकि अनोयठाको वास्तविक दाँतसे स्पर्श कराया हुआ ही दाँत सिंहलसे मिला था। अलौंसीतू नाहक चीन गया लेकिन मुझे यह दाँत मेरी साधुता और बुद्धिमत्ताके प्रतिफलरूप ही मिला है।"

बयिंनौंने एक अद्भुत साम्राज्यकी स्थापना की थी और इसकी सफलताके लिए भी उसने बहुत कुछ किया था। लेकिन इतने महान् कार्योंको करते हुए भी, अपने शासनके अन्तिम दिनोंमें वह प्रजाकी घृणाका पात्र बन गया था। प्रजाजन उससे असन्तुष्ट रहने लगे क्योंकि उसकी अयोडियऽ(श्यामकी राजधानी) की चढ़ाइयों और आये दिन होती रहनेवाली बगावतोंके कारण वे सर्वदा ही आतंकग्रस्त रहे। वह अपने विशाल राज्यकी एकताको सुदृढ़ रखनेमें असमर्थ रहा। उसका सम्पूर्ण शासनकाल लड़ाइयोंमें बीता। इससे अधिकांश परिवार अकाल, क्षुधा, ग्लानि और मृत्युके शिकार बनते रहे। उसका साम्राज्य मानो लोगोंके

जीवन-दानपर निर्मित था। अयोडियऽकी चढ़ाइयाँ करके उसने भूलें कीं। उसे यह खयाल नहीं हुआ कि इसके कुपरिणाम-स्वरूप महान् जन-शक्तिकी आहुति हुई। श्याम इतनी दूरीपर था कि उसपर आधिपत्य कायम रखनेकी चेष्टा निरर्थक थी। ऐसा कर बयिंनौंने अपनी प्रजाको कठोर यातनाएँ दीं। उसकी अयोडियऽ चढ़ाईके कारण राज्यमें विप्लव शुरू हो गया जिसे दबानेमें बयिंनौंको अपने शासनकालका सर्वाधिक मूल्यवान् समय देना पड़ा।

१५८१ में बयिंनौंकी मृत्यु हुई। इसके कुछ ही वर्षों बाद उसका साम्राज्य अनेक छोटी-छोटी जागीरोंमें बँट गया। जागीरोंके मालिक स्वेच्छया शासन करने लगे। बयिंनौंके बाद उसका पुत्र नन्डाबएँ गद्दीपर आसीन हुआ।

नन्डाबएँ (१५८१-१५९९)

नन्डाबएँ बयिंनौंका पुत्र था। राजगद्दीपर बैठनेसे पहले इसे भी अपने पिताकी भाँति ही विद्रोहोंका सामना करना पड़ा था। जब वह गद्दीपर बैठा तो भी विद्रोहोंको दबानेमें उसे यत्नशील रहना पड़ा, उसका सम्पूर्ण शासनकाल युद्धपूर्ण रहा। लोग युद्धकी विभीषिका और उसमें भाग लेनेसे ऊब गये थे। फौजमें भरती होनेमें डरने लगे थे। फलस्वरूप नन्डाबएँको बलपूर्वक फौजमें भरती करनेका निर्णय करना पड़ा। इस निर्णयने उसे अत्यन्त अलोकप्रिय बना दिया और बहुत-से लोग जान बचानेके लिए बौद्ध मन्दिरोंमें जाकर शरण लेने लगे।

१५८४ में आवाके प्रमुखने नन्डाबएँके विरोधमें विद्रोह किया। उसने चींगमाइ और प्रोमके शासकोंसे भी सहायताप्राप्तिकी कोशिश की लेकिन यह प्रयत्न विफल रहा। टाँगूके प्रमुखने नन्डाबएँको आवाके शासक द्वारा किये गये प्रयत्नोंकी सूचना दे दी जिससे कुपित होकर आवापर चढ़ाई करनेके लिए फौज लेकर चल पड़ा। उसका यह अभियान सफल रहा। उसने शीघ्र ही आवाको अपने राज्यमें मिला लिया।

युद्धोंसे जनता त्रस्त—इन्हीं उथल-पुथलपूर्ण परिस्थितियोंके बीच १५९३ में अयोडियऽ (श्याम) की सेनाने तनासरिम क्षेत्रपर आक्रमण कर दिया। नन्डाबएँ तुरत दक्षिणकी ओर दौड़ पड़ा लेकिन उसकी सेनाके पहुँचते-पहुँचते अयोडियऽकी सेना वापस वहाँ पहुँच चुकी थी। उसने अपनी सुरक्षाकी व्यवस्था भी कर ली थी। इसके बाद नन्डाबएँने पुनः अपनी फौज तैयार कर अयोडियऽपर आक्रमण कर दिया, परन्तु श्यामी सेनाने प्रानरेट

नामक कुशल सेनापतिके नेतृत्वमें बर्मी सेनाका डटकर मुकाबला किया और अन्ततः उसे पीछे हटा दिया। इस युद्धमें नन्डाबएँको अपने पुत्रसे भी हाथ धोना पड़ा और तब वह अपनी राजधानीकी ओर लौट पड़ा। अयोडियऽपर की गयी यह चढ़ाई पूर्णतः असफल रही। अब श्यामी आये दिन निचले बर्मापर आक्रमण करते रहते थे। इन आक्रमणोंका प्रतिरोध करनेके लिए नन्डाबएँने फिर प्रयत्न नहीं किया। राज्यकी स्थिति शोचनीय बनती जा रही थी। सम्पूर्ण डेल्टामें अकाल और भुखमरी फैल गयी थी जिसका दोषारोपण राजापर किया जा रहा था।

डेल्टा प्रदेशकी ऐसी अस्त-व्यस्त स्थितिसे लाभ उठाकर टाँगूके प्रमुखने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। उसने अराकानके राजासे सहायता भी माँगी। १५९९ में अराकान और टाँगूकी संयुक्त फौजने पेगूपर आक्रमण कर दिया। नन्डाबएँ लोगोंको जबरन फौजमें भर्ती करता आ रहा था इसलिए जनता असन्तुष्ट थी। बहुतोंने उसका साथ छोड़ दिया था और वह शत्रुके हाथमें पड़ गया। परिणामस्वरूप वह अपने पुत्र समेत कत्ल कर डाला गया।

राजधानी नगर पेगू बुरी तरह ध्वस्त कर दिया गया और अराकानी फौज अपने साथ तीन हजार परिवार, एक सफेद (ऐरावत) हाथी और अयोडियऽसे लायी गयी काँसेकी ३० मूर्तियाँ लेकर वापस गयी। अराकानके राजाने सिरियमको भी अपने राज्यमें मिलाकर इसे भी अपने साम्राज्यका एक अंग बना लिया। वह अपने एक पुर्तगाली सेनानायकको सिरियमका प्रशासन करनेके लिए छोड़ता गया। टाँगूका राजा भगवान् बुद्धका दाँत और पेगू मन्दिरमें रखा हुआ भिक्षापात्र लेता गया। वह डेल्टा प्रदेशसे बहुत-सी सम्पत्ति लूटके रूपमें भी ले गया। पेगू बिलकुल बीरान बन गया। इस भयंकर आक्रमणके बाद

ही श्यामके राजाने फिर डेल्टापर आक्रमण कर दिया। अबकी पुनः इस प्रदेशकी बहुत बरबादी हुई और मउट्टमऽ (मर्तबान) श्याम राज्यमें मिला लिया गया। कुछ वर्षों बाद पेगूके प्रमुखने, जो बयिंनौंका बेटा था, डेल्टा प्रदेशपर चढ़ाई की और इसे जीत लिया। इसके बाद उसका पुत्र अनावपेटलौं १६०५ में आवाकी गद्दीपर बैठा और वही डेल्टा प्रदेशका भी शासक बना।

अनावपेटलौं (१६०५-१६२८)

राजगद्दीपर बैठते ही अनावपेटलौंको युद्धरत होना पड़ा। सबसे पहले उसने प्रोमपर चढ़ाई की और उसपर सफलतापूर्वक कब्जा कर लिया। फिर १६१० में उसने टाँगूपर आक्रमण किया और उसे भी अपने राज्यका एक अंग बना लिया। टाँगूका राजा भागकर सिरियम चला गया और वहाँके डी ब्रीटो नामक एक पुर्तगाली राज्यपालकी शरणमें रहने लगा।

अनावपेटलौंको डी ब्रीटोकी शासनरीतिसे असन्तोष था क्योंकि सिरियमके देवालयोंको वह बहुत क्षति पहुँचाता आ रहा था। वह देवालयोंमें लगे हुए स्वर्णपत्रोंको उतरवाकर तीर्थ-यात्रियोंको बेच दिया करता था। १६१३ में अनावपेटलौंने डी ब्रीटोंकी सत्ताका दमन करनेका निश्चय किया—इसलिए सबसे पहली माँग तो उसने यह की कि वह टाँगूके प्रमुखको, जो उसका बन्दी था और जिसने सिरियममें जाकर शरण ली थी, वापस कर दे। पुर्तगाली राज्यपालने इसे अस्वीकार कर दिया। इसपर अनावपेटलौंने सिरियमपर आक्रमण कर दिया और डी ब्रीटो तथा टाँगूका प्रमुख नशिंनौं कत्ल कर दिये गये। जो पुर्तगाली सिरियममें रहते थे वे श्वेबो भेज दिये गये और उन्हें फौजमें तोपें चलानेका काम दे दिया गया। इन पुर्तगालियोंने पीछे चलकर श्वेबोके आसपास बयिंजी गाँवोंको बसाया। थोड़े ही समयमें अनावपेटलौंने तनासरिमपर कब्जा करना चाहा लेकिन श्यामियों-ने उसकी सेनाको मार भगाया। तब उसने मौलमीन जिलेके चींगमाइ और ये स्थानोंपर कब्जा करनेके लिए सेनाएँ भेजीं और उन्हें अपने राज्यमें मिला लिया।

१६१९ में उसने युद्ध करना बन्द कर दिया क्योंकि अब वह प्रशासकीय सुव्यवस्थाओंकी ओर विशेष ध्यान देना चाहता था। वह अपनी शासनपद्धति न्याय और उदारतापूर्ण रीतिसे चलाना चाहता था। इसलिए उसने राजमहलके बाहर एक घण्टा टँगवा दिया था और प्रजाको सूचित कर दिया था कि यदि अधिकारियों द्वारा किसीको कष्ट पहुँचाया गया हो तो वह आकर इस घंटेको बजाये। उसने उसके साथ समान न्याय करनेका भी वचन दिया।

अनावपेटलौं बर्मी इतिहासमें महाधमायाजाके नामसे भी प्रसिद्ध है क्योंकि उसने बर्माको पुनर्गठित किया था। १६२८ ई० में उसके पुत्र मिंरेडिपाने उसकी हत्या कर डाली।

मिंरेडिपा (१६२८)

पुत्रके हाथों कत्ल किये जानेके कारण अनावपेटलौंकी जो आकस्मिक मृत्यु हुई उससे सम्पूर्ण राजदरबार चकित रह गया। मिंरेडिपाके ऐसे पैशाचिक कृत्यपर दरबारियोंको उससे घृणा हो गयी। उस अल्पकालमें ही जितने दिनोंतक वह शासन करता रहा वे उसकी नीतिसे ऊब गये थे। इसलिए उन्होंने उसके चाचा थालुनको बुलवाया। मिंरेडिपाको जब यह निश्चय हो गया कि उसे गद्दी छोड़नी ही पड़ेगी और थालुन इसका अधिकारी बनेगा तो उसने अराकान भागनेकी कोशिश की किन्तु उसके साथियोंने उसे पकड़ लिया। थालुन उन दिनों माण्डलेमें हो रहे विद्रोहका दमन करनेमें लगा था। वहाँसे वह बुलाया गया और तुरन्त पेगू आ गया। मिंरेडिपा मार डाला गया और थालुन गद्दीपर बैठा।

थालुन (१६२८-१६४८)

थालुन राजा बयिन्नौंका नाती था। वह अनावपेटलौंका छोटा भाई था। बयिन्नौंकी भाँति ही यह भी बड़ा लड़ाकू था। अपने भाईके शासनकालमें थालुन फौजमें काम करता रहा। १६२८ में जब अनावपेटलौंकी हत्या उसके पुत्र मिंरेडिपाने कर दी उस समय थालुन ऊपरी बर्माके शां-विद्रोहका दमन करनेमें लगा हुआ था। पिताकी हत्या करके मिंरेडिपा गद्दीनशीन तो हो गया लेकिन उसकी क्रूर शासन-प्रणालीने कुछ ही महीनोंमें उसके सलाहकारोंको चकित एवं चिन्तित कर दिया। इसलिए उन्होंने थालुनको राजसिंहासनपर बैठनेके लिए बुलाया। थालुनके राज्याभिषेककी काररवाइयाँ चालू ही थीं कि कतिपय तलांइ (मुँ) अधिकारियोंने इसे रोकना चाहा। लेकिन उनका तत्क्षण दमन कर दिया गया।

शान्तिपूर्ण नीति—थालुनके दो पुत्र थे। एकका नाम पिंडले और दूसरेका पी था। राज्याभिषेकके बाद ही थालुनने शान्तिपूर्ण नीति अपनानेका निश्चय किया और अपना सम्पूर्ण समय प्रशासकीय कार्योंके केन्द्रीकरणमें लगाना चाहा। उसने लगभग २० वर्षोंतक शासन किया और इस कालमें बर्मी साम्राज्यने शान्तिके दिन देखे। व्यापारिक प्रगति हुई और समूचे राज्यमें सब प्रकारकी सफलता दीखने लगी। टाँगू राज्यवंशका सर्वोत्कृष्ट राजपुरुष थालुन माना गया है। वह अनावश्यक युद्धोंमें नहीं फँसा, यद्यपि उसका विशाल साम्राज्य आवासे मउट्टमऽतक फैला हुआ था।

प्रशासनिक व्यवस्था—थालुनने सम्पूर्ण राज्यको अनेक जिलों

और गाँवोंमें बाँट रखा था। प्रत्येक जिलेकी शासनव्यवस्थाके लिए उसने अधिकारियोंकी नियुक्ति की थी। कुछ ही वर्षों बाद उसने आवाको अपनी राजधानी बनाया। क्योंकि वह यह नहीं चाहता था कि श्यामी सेनाएँ उसके राज्यपर आक्रमण करें। वह अपने राजधानीकी मध्यवर्ती स्थिति रखना चाहता था। इसके अतिरिक्त वह बर्माके 'चावलके बखार' चौसे जिलेके पास अपनी राजधानी रखना चाहता था। सिंचाईके प्रयोगमें आनेवाली नहरोंकी स्थितिको उसने सुधारा। जिन परिवारोंको उसने बन्दी बनाया था उन्हें नहरके आसपास रहनेका मौका दिया था, ताकि वे सुव्यवस्थित जीवन बिता सकें। उन बन्दियोंको उसने फौजमें भर्ती होनेका भी मौका दिया था। इन समस्त कार्योंके कारण थालुन प्रजाकी भक्ति और प्रशंसाका पात्र बन गया था।

१६३८ में थालुनने कर-जाँचकी व्यवस्था की। यह व्यवस्था बर्मी इतिहासमें अपने ढंगकी निराली थी। प्रत्येक ग्रामीणको शपथ लेकर यह कहना पड़ता था कि उसके गाँवके निवासियोंकी क्या संख्या थी, कितनी जमीन जोती जाती थी, कौन-कौन-सी चीजें खेतीसे पैदा होती थीं, कितनी संख्यामें कौन-कौन-से पशु गाँवमें थे और वह कितना कर देता था। कांइसामनु नामक उसका बड़ा ही बुद्धिमान् प्रधानमन्त्री था इसने एक नये ढंगका डम्मत् चालू किया जिसे मनुसराश्वेमिन या महाराजा डम्मत् कहते थे, बर्मी भाषामें लिखी गयी। यह सर्वप्रथम कानूनकी पुस्तक थी। अन्यान्य कानूनी पुस्तकोंसे इसके निर्माणमें सहायता तो ली गयी थी किन्तु इसे तैयार करनेमें बर्मी विचारधाराका समावेश विशेष रूपसे रहा। इस धर्मग्रन्थमें हिन्दू सिद्धान्तोंका पुट नहीं था। थालुन मन्दिरोंके तैयार करानेमें भी विशेष दिलचस्पी लेता था।

अपने पूर्वपुरुषोंकी भाँति इसने भी अनेक मन्दिर बनवाये।

लेकिन ये सब सिंहलीय नमूनेके थे। थालुन द्वारा निर्मित किया गया सर्वश्रेष्ठ मन्दिर याज़ऽमनीसूंलऽ था जिसका निर्माण जगांइके पास किया गया था। बर्यिनोंको सिंहलसे जो भिक्षापात्र और भगवान् बुद्धका दाँत मिला था उनकी स्थापना उसने इसी मन्दिर-में की थी।

थालुनने अपने राज्यके व्यवसायको भी बढ़ाया। सन् १६४८ में उसका देहान्त हुआ। उसके बाद उसका पुत्र पिंडले राज्याधिकारी बना।

पिंडले (१६४८-१६६१)

थालुनका ज्येष्ठ पुत्र पिंडले था। पिताकी मृत्युके बाद सन् १६४८ में वह राजगद्दीपर बैठा। वह अपने पिता जैसी प्रशासकीय योग्यता नहीं रखता था। उसने अपनेको एक दुर्बल शासक साबित किया। थालुनने जैसी शासनव्यवस्था चालू की थी वह उसपर अमल करना चाहता था। परन्तु दुर्भाग्यवश पिंडले सुव्यवस्थित शासन नहीं कायम कर सका, क्योंकि चीनी सैनिकोंने उसके साम्राज्यपर आक्रमण कर उसे छिन्न-भिन्न कर डाला था।

सन् १६५८ के आस-पास मिंवंशीय यूंगली सम्राट्को मंचूरियाकी सेनाने बुरी तरह हराया। वह भामो भाग आया और उसने आवाके पास बसनेके लिए पिंडलेसे अनुमति माँगी। बर्मी शासक राजी हो गया। यूंगली आवा बसनेके लिए चला आया। इसी बीच चीनी शासकीय वंश-परम्परामें परिवर्तन आ गया और विद्रोहियोंकी सैनिक टुकड़ियोंने मंचूरियाकी सेनापर छापामारी प्रारम्भ कर दी। कालान्तरमें ये सैनिक टुकड़ियाँ यूनान और फिर ऊपरी बर्मामें प्रवेश कर गयीं। उन विद्रोहियोंने आवापर भी आक्रमण किया परन्तु असफलता हाथ लगी क्योंकि इस शहरके चारों ओर दीवारें थीं। लेकिन पास-पड़ोसके गाँवोंको उन्होंने बर्बरतापूर्वक रौंदा। पिंडलेने इन चीनी लुटेरोंसे लड़नेके लिए एक तलांइ (मुँ) फौज तैयार की। लेकिन तलांइ (मुँ) बर्मियोंकी हित-रक्षामें दिलचस्पी नहीं रखते थे। फलस्वरूप अधिकांश सेनासे भाग गये। इसपर पिंडलेने इन भगोड़ोंको सजा देनेका निश्चय किया। फलस्वरूप बहुत-से तलांइ (मुँ) परिवार बर्मासे श्याम निकल भागे और कितने ही डेल्टा प्रदेश छोड़-

कर भी यत्र-तत्र चले गये। सम्पूर्ण मउट्टमऽ एक तरहसे जनहीन हो गया, क्योंकि वहाँके निवासी तलांइ (मुँ) यह भय मानने लग गये थे कि कहीं पिंडले बदला लेनेपर न तुल जाय। इसी बीच चौसेपर चीनियोंका कब्जा हो गया। वहाँ चावलका अभाव हो गया और सम्पूर्ण राज्यमें यातना फैल गयी। फलस्वरूप कुछ अधिकारियोंने पीको बुलाया और शासनसूत्र लेकर राज्यकी विषम स्थिति सम्हालनेके लिए उससे कहा।

दोनों भाई पिंडले और पी एक साथ तो शासन नहीं कर सकते थे। इसलिए पिंडलेका परिवार उसी वर्ष डुबो दिया गया और पीने शासनसूत्र अपने हाथमें लिया।

पी (१६६१-१६७२)

पी एक उदारहृदय शासक था लेकिन वह प्रतिकूल परिस्थितियोंसे विवश रहा। उसके राज्यकी उत्तरी सीमापर चीनियों और दक्षिणी सीमापर श्यामियों तथा चींगमाइकी फौजोंके आक्रमण होते रहते थे।

पिंडलेके शासनकालमें जो यूंगली सम्राट् अपने साथियोंके साथ आकर आवाके पास बस गया था उसपर पीके दरबारी अविश्वास करने लगे। इसलिए उसने उन आदमियोंको तितर-बितर करना चाहा और कुछको वहाँसे जगांइ चले जानेका आदेश किया। लेकिन यूंगलीके अनुगामियोंने इस आदेशकी अवहेलना की। इसपर क्रुद्ध होकर पीने सम्राट्को छोड़कर शेष सभी चीनियोंको कत्ल करा दिया। किन्तु यूनानपर शासन करनेवाले मंचूरियन कुछ ही समयमें इतने शक्तिशाली बन गये कि उन्होंने आवापर आक्रमण कर दिया और पीसे सम्राट् यूंगलीको माँगने लगे। पीमें उनकी माँग ठुकरानेकी शक्ति नहीं थी फलतः उसने यूंगलीको वापस दे दिया।

पीका शासनकाल सन् १६७२ में समाप्त हुआ।

१६७३ से १७३३ कालीन तीन राजा

पीके पश्चात् मिंयेचोडिन, सनेमिन और टनिंगन्वे टाँगू वंशके तीन राजा गद्दीपर बैठे। मिंयेचोडिन १६७३ से १६९८ तक राज्य करता रहा। सनेमिन १६९८ से १७१४ तक और टनिंगन्वे १७१४ से १७३३ तक।

इन तीनोंके शासनकालमें ऐतिहासिक उल्लेखकी घटनाएँ नहीं घटीं। कभी-कभी क्रान्तियाँ और सीमाओंपर आक्रमण हो जाते थे। विदेशोंसे आनेवाले व्यापारिक शिष्टमण्डल और राजपूतोंका बर्मी राजाओं द्वारा यथोचित सम्मान होता था। डेल्टा प्रदेशकी स्थिति प्रगतिपथपर न होनेके कारण १६५७ में ‘डच ईस्ट इंडिया कम्पनी’ने वहाँकी अपनी शाखा बन्द कर दी। इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी शाखाएँ आवा और सिरियममें चालू ही थीं। १६७७ में अंग्रेजोंने भी अपना व्यापार बन्द कर दिया क्योंकि मिंयेचोडिनने चुंगी-कर बढ़ा दिया था। इसके अतिरिक्त जब कभी भी कोई माल जहाज डेल्टा प्रदेशमें आकर फँस जाता था, बर्मी शासक अविलम्ब उसका माल जब्त कर लेते थे। मिंयेचोडिनको अंग्रेजों द्वारा सहसा व्यापार बन्द किया जाना पसन्द नहीं था और इसलिए १६९२ में उसने अपने कतिपय अधिकारियोंको एक अंग्रेजी जहाज तबतक जब्त कर रखनेके लिए आदेश दिया जबतक कि अंग्रेज पुनः व्यापारिक सम्बन्ध चालू करनेके लिए राजी न हो जाते। फलस्वरूप १७०९ में नया व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस समय राजा सनेमिन शासक था। व्यापारमें अच्छी वृद्धि हुई। इसके बादके राजाने भी राज्यके व्यवसायको बढ़ानेमें काफी दिलचस्पी ली।

महाडमायाज़ा डॉपांते (१७३३-१७५२)

मनीपुरका शासक बर्मी राजा बयिंनौंको १५५१ से ८१ तक तो कर भेजता रहा, परन्तु उसके बाद मनमाना चलने लगा। कभी-कभी वह सीमास्थलीय प्रदेशोंपर आक्रमण भी कर देता। उन दिनों मनीपुरमें अच्छी जातिके घोड़े पाये जाते थे और मनीपुरी घुड़सवारीके साथ ही पोलो खेलनेके भी अच्छे अभ्यासी थे। सन् १७१४ से ५४ तक राजा गरीब नेवाज़ मनीपुरका शासक था और उसके शाशनकालमें मनीपुरियोंके इतने आक्रमण हुए कि बर्मी आतंकग्रस्त रहने लगे। १७४२ से ५४ के बीच तो प्रायः प्रति तीसरे वर्ष आक्रमण होते रहे। आक्रमणकालमें वे आवाके सन्निकटतकके प्रदेशोंको रौंद डालते और वापस होते हुए विविध सम्पत्तियाँ लूटकर ले जानेके साथ ही पशुओं तथा निवासियोंको भी साथ ले जाते। एक बार उन्होंने बर्मी शाही सेनाके दो-तिहाई सैनिकोंको मार डाला जिनमें एक सेनापति भी था। उनका सन् १७३८ का आक्रमण भयंकरतम था। उन्होंने आवाकी चहारदीवारीके भीतरके सभी घरों और देवालयोंको जला दिया, सैनिक टुकड़ियोंको पशुओंकी तरह कत्ल किया और लुटॉ-परिषद्के एक मन्त्रीको भी मार डाला। राजा गरीब नेवाज़ देवालयोंके पूर्वी दरवाजोंसे जब प्रवेश कर रहा था तो उसकी तलवारके प्रहारोंके कारण बिजली जैसी चमक हो उठती थी।

मनीपुरियोंको बर्मी, कर आदि देनेके सिलसिलेमें परेशान भी करते थे तो भी साधारणतया जैसा चाहते वैसा ही करते। एक दूरस्थ घाटीमें बसे हुए होनेके कारण वे बाह्य जगत्से बिल-

कुल अपरिचित थे। और अपनेको वीर-बाँकुरा समझ बैठे थे। बर्मापर आक्रमण करना वे बहुत सरल और आमोददायी समझते थे। वे यह कभी नहीं समझते थे कि बर्मा उनके प्रदेशसे कई गुना बड़ा था और उनकी यह कल्पना खतरेसे खाली नहीं थी। उनके ऐसे मधुर स्वप्नोंका एक विशेष कारण यह भी था कि तत्कालीन बर्मा एक अयोग्य राजाके शासनके अन्तर्गत रहा।

मनीपुरका दमन करनेमें असमर्थ होनेके कारण महाडमायाज़ा डीपति अपने सेनापतियोंपर क्रोधके अंगारे बरसाता रहता था। उन्हें धूपमें खड़ा करके उनकी गर्दनपर तलवार रखकर कहता—"यदि तुम मनीपुर विजयमें असफल रहे तो यह मेरी तलवार तुम्हारा खात्मा करेगी।" परन्तु उसकी यह चेतावनी किसी काम नहीं आती थी। कारण न तो वह स्वयं कभी युद्ध-क्षेत्रमें उतरा और न उसके उत्तराधिकारियोंमेंसे कोई सन् १६४८ तक लड़ाईके मैदानमें गया। अन्ततः उसका साम्राज्य विघटित हो गया।

बर्मी सरकारोंकी स्थापनाके नियम राजवंशीय परम्पराके अनुसार चले आते थे इसलिए वे चिरस्थायी नहीं रहते। कोई भी राजवंश न तो तीन शताब्दियोंतक शासन करता मिलता है और न किसीमें तीन पीढ़ियोंसे अधिक शासन करनेका शौर्य एवं शक्ति दीखती है। इसका एक कारण, यहाँके राजाओंमें अनेक रानियोंकी प्रथाका भी है। राजकुमारोंका लालन-पालन ईर्ष्या-द्वेषसे परिपूर्ण वातावरणमें औरतोंके बीच होता था, जिसके कारण उनमें अपेक्षित राजकीय गुण एवं पुरुषत्व उत्पन्न नहीं हो पाते थे। उन्हें अपने पिताके दर्शन भी यदाकदा हो पाते थे। इसके ठीक विपरीत साधारण बर्मियोंकी पारिवारिक स्थिति थी। वैवाहिक सम्बन्ध तो वे स्वेच्छया स्थापित करते ही थे, उनके बच्चे भी स्वच्छन्द वातावरणमें पलते थे।

डेल्टा प्रदेशमें प्रायः एक शताब्दीतक किसी प्रकारका उपद्रव नहीं हुआ, क्योंकि बयिंनौंके युद्धोंके कारण वहाँकी तलांइ (मुँ) आबादीमें जो क्षीणता आ गयी थी उसकी पूर्तिमें काफी समय लगा। अब वे भी सशक्त हो रहे थे और उन्होंने विद्रोह प्रारम्भ कर दिये। बर्मी राजाकी ओरसे करोंमें इतनी बहुलता आ गयी थी कि कपड़ा बुननेके औरतोंके करघोंपर भी कर लगाया जाने लगा था। इससे ऊबकर तलांइ (मुँ) ने विद्रोह कर दिया और पेगू सिरियम और मउट्टमऽके पासके बर्मियोंको कत्ल करके मिमटॉ बुद्धाकटी नामक एक भिक्षुको जो आवाके राजाका एक दूरस्थ सम्बन्धी था, राजा घोषित कर दिया।

यह १७४० से ४७ तक राज्य करता रहा। परिपूर्ण राजा कहलानेके लिए एक सफेद हाथीका होना आवश्यक था। इसलिए वह राजकीय कार्योंकी परवाह न कर जंगलोंमें उसीकी तलाश करता फिरता था। फलस्वरूप १७४७ में उसके स्थानपर उसका स्वसुर गद्दीपर बैठा दिया गया जो १७५७ तक राज्य करता रहा। प्रोम और टाँगूके साथ ही सम्पूर्ण दक्षिणी प्रदेश तलांइ (मुँ) शासन-सत्ताके अन्तर्गत था। वे हजारोंकी संख्यामें एकत्र होकर नदी-मार्गसे आवातक आक्रमण करते रहते। आवा विजयमें वे इसलिए असफल रहते थे कि वह चहारदीवारीसे घिरा हुआ नगर था।

इन आक्रमणोंके कारण उत्तरी बर्माको महान् क्षति पहुँच रही थी। कृषिकार्य तो बन्द-सा हो गया था। डाकेजनी चलती रहती थी। कृषक इतने त्रस्त रहते थे कि खेती करनेमें उनका मन ही नहीं लगता था। इसी बीच तलांइ (मुँ) ने चौसे नहरपर भी कब्जा कर लिया और आवा शहरको घेर लिया। यह घेरा महीनोंतक पड़ा रहा। सन् १७५२ के अप्रैल महीनेमें तलांइ (मुँ) बलपूर्वक शहरमें घुस आये, उसे भस्म कर

डाला और देख-रेखके लिए उन्होंने अपनी सैनिक टुकड़ी छोड़ दी और राजा तथा उसके सभासदोंको वन्दी बनाकर पेगू ले आये। उनके साथ पर्याप्त संख्यामें सैनिक नहीं थे इसलिए वे आवासे आगे नहीं बढ़ सके। उन्हें स्यामियोंके आक्रमणका भय लगा हुआ था, अतएव वहाँ अधिक समयतक नहीं रुके और पेगू वापस आ गये।

अलॉवफया (१७५२-१७६०)

अलॉवफयाका जन्म १७१४ में श्वेबोके पास मउसोबोम्यो नामक ग्राममें हुआ था। यह ३०० घरोंका एक विशाल गाँव था और अलॉवफयाके पूर्वज शताब्दियोंसे उस गाँवके मुखिया रहते आये थे। उसका यह भी दावा था कि वह १५वीं शताब्दीमें आवापर शासन करनेवाले राजाओंका वंशज था। कुछ वर्ष-तक निरन्तर अराजकता रहनेके कारण इसके ग्रामवासियोंने सुरक्षाकी दृष्टिसे ग्रामके चारों ओर घेरे डाल रखना चाहा और ऐसी स्थितिमें उन्हें एक नेताकी आवश्यकता प्रतीत हुई। अलॉवफयाकी वीरप्रकृतिसे वे प्रभावित थे और उन्होंने उसे ही अपना अग्रणी चुना। पास-पड़ोसके अन्यान्य ४६ ग्रामोंके निवासी भी अरक्षाका अनुभव करते आ रहे थे और उन सबने मिलकर एक लड़ाकू गिरोहका निर्माण किया जिसका नेता अलॉवफया बनाया गया। इस दलको अच्छे हथियार तो उपलब्ध नहीं थे, तो भी उन्होंने कुछ पुरानी धराऊ बन्दूकें ढूँढ़ निकालीं और उनसे काम लेना प्रारम्भ कर दिया।

आवापर सत्ता स्थापित कर लेनेके पश्चात् तलांइ (मुँ) ने पास-पड़ोसके क्षेत्रोंमें सन्धि-सन्देशवाहक सैनिक टुकड़ियाँ भेजीं। इनके साथ वह पवित्र जल (तिस्सा-ये) भी था जो तत्कालीन प्रथाके अनुसार सन्धि-सन्देशके रूपमें स्वीकार्य भेजा जाता था। उनमेंसे एक सैनिक टुकड़ी जब श्वेबो आयी तो अलॉवफयाके पिताने यह कहते हुए कि तलांइ (मुँ) सेना इतनी शक्तिशाली है कि हम उसका मुकाबला नहीं कर सकते, अपनी आधी सम्पत्ति देकर सत्ता स्वीकार कर लेनेकी तत्परता व्यक्त की। परन्तु वीर

अलॉवफया पिताके विचारोंसे सहमत न हुआ। उसने कहा "जब हमें अपनी ही भूमिके लिए लड़ना है तो हम बहुसंख्यक अथवा अल्पसंख्यक हैं, इसकी परवाह नहीं की जानी चाहिये। इसके लिए तो सर्वाधिक अपेक्षा इस बातकी है कि हमारे साथियोंमें सच्चा आत्मबल हो और लड़नेके लिए मजबूत हथियार हों।" यह कहते हुए उसने अपने साथियोंके साथ "हालिम"से दक्षिण जाकर झाड़ियोंकी ओटसे तलांइ (मुँ) सेनापर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप तलांइ (मुँ) को स्वामी कर मिलनेको कौन कहे, उनकी जानके लाले पड़ गये। अधिकांश मौतके घाट उतार दिये गये और जो भाग्यशाली थे वे ही बच कर वापस गये।

इस हारसे कुपित होकर तलांइ (मुँ) और बड़ी तथा सशक्त सैनिक टुकड़ी लेकर श्वेबो वापस आये। अलॉवफयाने एक राजकीय झोपड़ेका निर्माण कर रखा था। और तलांइ (मुँ) सेनाको प्रेमपूर्वक वहाँ लानेका तथा उनका पथ-प्रदर्शन करनेके लिए उसने १० घुड़सवारोंको आगे भेजा। इन घुड़सवारोंने पथ-प्रदर्शनके बहाने उन्हें ऐसे रास्तेसे लाना प्रारम्भ किया जिसके दोनों ओर झाड़ियाँ थीं और जिनमें अलॉवफयाके सशस्त्र सैनिक छिपकर बैठे थे। फलस्वरूप तलांइ (मुँ) वहाँतक पहुँच भी नहीं पाये। मुश्किलसे जो आधा दर्जन बच गये वे अपनी रामकहानी सुनानेके लिए वापस आवा गये। कालान्तरमें हजारों सैनिकोंको लेकर तलांइ (मुँ) ने श्वेबोपर फिर आक्रमण किया। उनका इरादा श्वेबोका अस्तित्व ही मिटा देनेका था, किन्तु उनके साथ तोपें नहीं थीं इसलिए वे अपना हौसला पूरा नहीं कर सके। वे शहरपर घेरा डालकर बैठे रहे। अलॉवफयाने एक रात कुछ घुड़सवारोंको ले एकाएक उनपर छापामारी युद्ध शुरू कर दी। इससे अलॉवफयाको और किसी प्रकारकी सफलता तो नहीं

मिली परन्तु एक ऐसा अद्‌भुत प्रचार शुरू हो गया कि जिससे अलॉवफयाकी सारी परेशानी ही दूर हो गयी। सर्वसाधारणमें यह खबर फैल गयी कि 'मिञ्युशिनदेव' सफेद घोड़ेपर सवार होकर अलॉवफयाकी ओरसे लड़ाई कर रहे थे। यह सुनते ही तलांइ (मुँ) नौकाओंमें चढ़कर भाग चले और अपनी कहानी सुनानेके लिए आवामें भी नहीं रुके अपितु नदीके रास्ते निचले बर्माके अपने आदिवासके क्षेत्रमें चले गये।

यह समाचार फैलते ही उसके सम्बन्धकी अन्य अनेक कहानियाँ कही जाने लगीं। बहुसंख्यक ऐसे अधिकारी जिन्हें राजमहलसे छुट्टियाँ मिल गयी थीं और जिन्होंने बन्दूकें छिपाकर रखीं थीं, उसकी सशस्त्र सेनामें काम करनेके लिए आ गये। ऊपरी बर्माके अधिकतर ग्रामोंसे उत्साही युवक तथा अन्य लोग भी इस नये नेताके नेतृत्वमें काम करनेके लिए आ गये।

सन् १७५३ के अन्ततक अलॉवफयाने मडाया-ओकयो निवासी शां और तलांइ (मुँ) का इस प्रकार दमन किया कि आवा निवासी तलांइ (मुँ) भयभीत होकर वहाँसे भाग गये। सन् १७५४ में पेगू निवासी तलांइ (मुँ) को यह भान होनेके कारण कि उनके विरोधमें बर्मामें कोई षड्‌यन्त्र तैयार किया जा रहा था, उन्होंने आवाके राजाको जो बन्दी बनाकर रखा गया था, कत्ल कर डाला। इस घटनाने डेल्टा प्रदेशके बर्मियोंको इतना उत्तेजित कर दिया कि वे विद्रोह कर बैठे और उन्होंने प्रोमपर कब्जा कर लिया। जब अलॉवफयाको इसकी खबर मिली तो उसने यहाँके बर्मियोंको पत्र लिखकर प्रोत्साहित किया और फिर १७५५ में आक्रमण करके हेंज़ड़ा जिलाके लुंशे और इधर रंगूनपर भी कब्जा कर लिया। इस विजयने तो उसे इतना उल्लसित कर दिया कि उसने अपने अधिकारियों समेत एक जलूस निकाला और मन्दिरमें देव-पूजन किया।

इस समयतक फ्रांसीसी और ब्रिटिश सत्ताओंसे भी बर्मा काफी प्रभावित हो चुका था। जो फ्रांसीसी सीरियममें थे उन्होंने तलांइ (मुँ) राजाको मान्यता दे रखी थी और अब अँग्रेज अलॉवफयाको मान्यता देनेकी सोचने लगे थे। तलांइ (मुँ) ने जब रंगून पर पुनः कब्जा करना चाहा तो फ्रांसीसियोंने अपने जहाज सहायतार्थ भेजा। किन्तु जब वे रंगून बन्दरगाहमें आये तो उन्हें एक अँग्रेजी जहाज दिखाई पड़ा जिसका अधिकारी बीमार होकर किनारेपर पड़ा था। तलांइ (मुँ) ने उसपर अपने नाविक रखकर उससे लड़ाई करनेका काम लिया और उसकी पाँच तोपें ले जाने दिया। अलॉवफयाको यह कार्य विश्वासघातक प्रतीत हुआ। उसने अँग्रेजोंको शंकाभरी दृष्टिसे देखना शुरू कर दिया। पहले तो उसने समझौता वार्ता भी बन्द कर देनी चाही किन्तु अँग्रेजोंकी ओरसे स्पष्टीकरण किये जानेपर वह मान गया।

अँग्रेजोंसे अलॉवफया भयभीत नहीं था। वह उनसे तोपें भर चाहता था क्योंकि तब बर्मामें तोपें नहीं थीं। कुछ पुरानी पुर्तगीज तोपें थीं वे भी तलांइ (मुँ) के अधिकारमें थीं। उसके पास जो सबसे बड़ी तोप थी वह केवल ३ पौंडका गोला फेंक सकती थी इसलिए १७५७ में जब अँग्रेजोंने इंसिन लेस्टरको एक ऐसा समझौता सम्पन्न करनेके लिए भेजा जिसके अनुसार वे अलॉवफयाको प्रति वर्ष एक ऐसी तोप देते जो १२ पौंडका गोला फेंक सकती और उसके बदलेमें इसे उनपर लगायी जानेवाली चुंगी माफ करनी थी तथा उन्हें नीग्रेसकी रक्षा-व्यवस्था करनेकी छूट देनी थी, तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

सिरियम निवासकालमें अंग्रेजोंको इतना कटु अनुभव हुआ था कि सन् १७५३ में नीग्रेस जानेके बाद उन्होंने अपनी स्थिति इतनी सुरक्षित रखनी चाही जिससे वे चैनकी नींद ले सकते। वस्तुतः थोड़ी ही सावधानी रखनेपर वे ऐसा कर भी सकते थे

क्योंकि नीग्रेस बसीन नदीके मुहानेपर बसा हुआ था। वहाँसे बर्माके आन्तरिक भागके साथ उत्तमोत्तम व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित हो सकते थे। इसलिए यहाँ इन्होंने तोपें रखकर एक मजबूत किलेबन्दी कर ली थी।

अलॉवफया‌की डेल्टा प्रदेशकी चढ़ाईमें भूमियुद्धके कारण ही बर्बादियाँ नहीं होती रहीं बल्कि जलमार्ग भी युद्धकी विभीषिकासे बचा नहीं रहा। दोनों किनारोंपर सैकड़ों तोपें थीं, अबतक उसे किसी ऐसे शहरपर चढ़ाई नहीं करनी पड़ी थी जिसके चारों ओर चहारदीवारी रही हो लेकिन सिरियम ऐसा ही नगर था। अलॉवफया अपनी महत्त्वाकांक्षाका दमन न कर सका और उसने चढ़ाई कर ही दी, यद्यपि उसके सैनिकोंको यहाँ महान् कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। उसके सैनिक दीवारोंके ऊपर रखी लकड़ीको पकड़कर ज्यों ही भीतर-प्रवेशका प्रयत्न करते त्यों ही उनकी अँगुलियाँ काट दी जातीं और ये पेड़से छिन्नमूल शाखाओंकी भाँति नीचे आ जाते। सिरियम फ्रांसीसियोंका खास जहाजी अड्डा था इसलिए उनसे भी तलांइ (मुँ) को युद्ध-सम्बन्धी युक्तियाँ प्राप्त होती रहती थीं।

सिरियमकी घेराबन्दी और पतन—यह घेराबन्दी वर्षभरतक चलती रहनेके कारण एक ओर तो तलांइ (मुँ) भुखमरीसे परेशान होने लगे और दूसरी ओर अलॉवफया भी इस अवस्थासे ऊब चला और उसने इसका अन्त करनेका संकल्प कर लिया। उसने ९३ साहसी युवकोंके एक 'स्वर्ण दल'का निर्माण किया और १७५६ के जुलाई मासमें एक दिन अभूतपूर्व उत्सवका आयोजन किया। परिणामस्वरूप तलांइ (मुँ) को यह विश्वास हो गया कि बर्मी आमोदमें लिप्त हैं और उन्होंने सतर्क रखवालीकी चिन्ता छोड़ दी। यह अवसर पाते ही "स्वर्ण दल"ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। उसने सैनिक प्रहरियोंको मार डाला और मुख्य द्वार

खोल दिया। बर्मी सैनिक शहरमें घुस गये और अवसर पाकर मनमानी लूट-हत्या की। अलॉवफयाके सैनिक ऊपरी बर्माके निवासी थे इसलिए उनके निमित्त शहरकी अनेक वस्तुएँ जैसे दर्पण, मोमबत्तियाँ, कुर्सियाँ, घड़ी और लालटेन आदि आश्चर्य-चकित करनेवाली लगीं। अलॉवफयाने चाँदीका एक ढेर लगा दिया और स्वर्णदलके जो लोग बच गये थे उनसे मनमानी लूटनेके लिए कहा।

सिरियम निवासी फ्रांसीसी प्रतिनिधि बोर्नोने तलांइ (मुँ)के सहायतार्थ पांडिचेरीकी सरकारको लिखा था और वहाँसे दो जहाज आये। परन्तु, उनके पहुँचते-पहुँचते सिरियमका पतन हो चुका था। इस स्थितिसे अनभिज्ञ होनेके कारण वे बर्मी चालकोंकी सहायतासे जहाज लेकर नदीके भीतरी भागतक आ गये। अलॉवफयाने उन्हें रोकनेका आदेश किया और जहाजके ११ कर्मचारियों तथा बोर्नोके सिर काट डाले गये।

इन १२ फ्रांसीसियोंके कत्ल कर दिये जानेके सम्बन्धमें इतिहासकारोंका मत है कि बर्मियोंकी ओरसे इनके साथ वही व्यवहार अपेक्षित था जो युद्ध-बन्दियोंके साथ होते आ रहे थे। ये फ्रांसीसी तलांइ (मुँ)की सहायता करने आये थे और इन दिनों इस देशमें ऐसी ही कठोरतासे पेश आनेकी प्रथा थी। देर-तक लूट-खसोट और मार-काट चालू रहनेके पश्चात् जब अलॉ-वफयाको यह अनुमान हो गया कि जिन शां और बर्मियोंको तलांइ (मुँ) ऊपरी बर्मासे आते हुए बन्दी बनाकर साथ लाये थे प्रायः वे सब वापस हो गये तो उसने लड़ाई बन्द करनेका आदेश जारी किया। जिन दो फ्रांसीसी पोतोंको अलॉवफयाने पकड़ा था उनमें ३५ तोपें थीं। प्रत्येक तोप २४ पौंडके गोले फेंक सकती थी। उनमें काम करनेवाले २०० आदमी थे। अलॉवफयाने बर्मी औरतोंसे इनकी शादियाँ कराके वयिंजी गाँवमें बसा दिया जहाँ इनके

वंशज आज भी पाये जाते हैं। तोपें पाकर तो उसे महान् प्रसन्नता हुई थी, क्योंकि उसके पास हथियारोंकी बहुत कमी थी। राजमहलके बाहर रहनेवाले सैनिकोंके मध्य औसतन २० सैनिकोंके पीछे एक बन्दूक थी और अधिकांश नोकदार बाँसोंसे हथियारका काम लेते थे।

इतिहासकारोंका कहना है कि अलॉवफया शराब पीनेवालोंको मौतकी सजा देनेके लिए प्रसिद्ध है, लेकिन तोप चलानेवालोंको उसने शराब पीनेकी छूट इसलिए दे रखी थी कि वह शराब तोपकी देवियोंके लिए थी। अलॉवफयाके पास जो तोपें पहलेसे थीं वे ३ पौंडके गोले फेंक सकती थीं और उसने उनके पूजनके लिए आदेश दे रखा था। उनपर स्वर्णपत्र चढ़ाये जाते, इत्रादि छिड़के जाते, सुन्दर रेशमी कपड़े लपेटे जाते और तब शराबकी बोतलें चढ़ायी जातीं।

पेगूकी लड़ाई—अलॉवफयाने सिरियमको इस प्रकार ध्वस्त कर दिया कि उसकी सम्पूर्ण महत्ता जाती रही। उसने रंगूनको बर्माका बन्दरगाह बनाया, इसके शहरी क्षेत्रोंको बढ़ाया और एक उच्चतर राज्यपालकी नियुक्ति की। उसने श्वेडगोन पगोडामें विधिवत् पूजा की। १७५६-५७ में उसने स्थल और जल दोनों मार्गोंसे पेगूपर चढ़ाई की और साथ ही एक शानी सेना टाँगूकी ओर बढ़ी। अलॉवफयाकी सेनाकी प्रगति अतीव मन्थर थी और उसे क्षति भी उठानी पड़ रही थी क्योंकि तलांइ जीतोड़ मुकाबला कर रहे थे। उनके पास जो हथियार थे वे भी अधिक भयावह रहे। उन्होंने बाँसकी नोकोंपर लोहेकी नालियाँ इस प्रकार चढ़ा रखी थीं कि उससे एक पौण्डके गोले फेंके जा सकते थे। उन्होंने शहरसे दक्षिण ४० स्थानोंपर मोरचे बना रखे थे। ये सभी मोरचे न्यांगलेबिनके पास-पड़ोसमें थे। जेन्याबिनके पास तो इन्होंने अलॉवफयाके बहुतायत सैनिकोंको पकड़कर अपने पक्षसे

अलॉवफयाके विरोधमें लड़नेके लिए भी विवश किया। अलॉवफयाने अब फिर वैसे ही स्वर्णदलका निर्माण किया जैसे दलने सिरियमपर विजय प्राप्त की थी। इस वार ३०० युवकोंने इस दलमें भाग लिया और बहादुरीके साथ लड़कर इन घेरोंको पार किया, लेकिन पेगूके पास पहुँचनेपर अलॉवफयाको यह दीख पड़ा कि तलांइ (मुं) लड़नेकी पूरी तैयारी किये बैठे थे। उसने विवश होकर जेतुवदी किलेके पास थोड़े समयके लिए डेरा डाल दिया। एक दिन तो ऐसा भी अवसर आ गया कि तलांइ (मुँ)ने अपने वीर सेनापति तलाबनके नेतृत्वमें उसे कुछ दूर पीछे भी भगा दिया। किन्तु उनका यह साहस बेकार था। वर्मी सेना फ्रांसिसी तोपों और आयुधोंसे युक्त होनेके कारण इतनी शक्तिशाली थी कि तलांइ (मुं) कदापि टिक नहीं सकते थे। इनकी युद्धक नौकाओंने तलांइ (मुँ) बेड़ोंको दूर फेंक दिया और शहरको घेरेमें डाल दिया।

घेरा अधिक समयतक पड़ा रहनेके कारण शहर-निवासी भुखमरीके शिकार होने लगे और बौद्ध भिक्षुओं द्वारा सन्धि-सन्देश भेजनेको विवश हुए। अलॉवफयाने भिक्षुओंका स्वागत किया और उनके हाथसे फूलके दो गुच्छे भेजा जिनमेंसे एकको देवालयमें चढ़ानेको कहा और दूसरेको शृंगारिक कार्यके निमित्त प्रयोग करनेको। उसने यह भी सन्देश भेजा कि "मैं तो धर्मके पुनरुद्धारके लिए दैवी शक्ति लेकर अवतरित हुआ हूँ; राजनिष्ठाकी शपथ भर चाहता हूँ।" भिक्षुओंकी ऐसी सफल वापसीने तलांइ (मुँ)को बड़ी राहत दी और उन्होंने एक गुच्छा श्वेमोडो मन्दिरमें चढ़ाया तथा दूसरेसे राजाकी पुत्रीको अलंकृत किया क्योंकि उसे अलॉवफयाके समक्ष वधूके रूपमें प्रस्तुत करना था। वह राजकुमारी राजाके रक्षामन्त्री वीर तलाबनकी प्रेयसी थी और उसे जब यह समाचार मिला तो वह क्रोधातुर हो उठा। उसने

राजाको सलाह दी कि वह एक वीरकी भाँति मरनेको उद्यत हो जाय, किन्तु राजाने इस प्रस्तावको ठुकरा दिया। वह कुछ अच्छे सैनिकोंको साथ लेकर सपरिवार चल पड़ा और सिट्टौं नदीके किनारे तठऊँके पास जाकर रुका। उसने अपनी पुत्रीको उसकी कतिपय सहेलियों तथा अन्य राजकुमारियोंके साथ अलॉवफयाके पास भेजा। वधूके वेशमें राजकुमारीने घुटने टेककर राजा अलॉवफयाका अभिवादन किया और उसके बाद वह उसके रनिवासमें भेज दी गयी।

१७५७ के मई मासमें अलॉवफयाने पेगू शहर ध्वस्त करनेके लिए प्रयाण किया। उसने शाही ढंगसे हाथीपर सवार होकर मोंबि राजद्वारसे प्रवेश किया। यात्राकालमें उसके चारों ओर मन्त्रिगण, सशस्त्र रक्षक और फ्रांसीसी तोपची थे। उसने श्वेमोडो मन्दिरमें पूजन किया और विजित जिलोंके शासनके निमित्त निजी राज्यपालकी नियुक्ति की। शाही परिवारके साथ तो उसने यथोचित व्यवहार किया परन्तु अन्य लोगोंको गुलामोंकी भाँति यह कहकर बेचा कि इन्होंने ही शहरके रक्षार्थ युद्ध किया था। उसने सैकड़ों तलांइ (मुँ) भिक्षुओंको हाथीके सामने फेंकवा दिया, राजमहल जलवा डाला और शहरको बंजर भूमि सदृश बना डाला।

इतिहासज्ञोंका कहना है कि उसी समयसे तलांइ (मुँ) की संख्या बर्मासे बेहद क्षीण होने लगी। अलॉवफयाने बहुसंख्यक तलांइको या तो कत्ल करा दिया या उन्हें बन्दी बनाकर साथ लाया। जो वहाँ बचे रह गये थे उनमेंसे अधिकांश समय-समयपर श्याम पलायित होते गये। और फिर भी जो शेष थे, विद्रोही जीवन बिताने लगे। किन्तु जब भी वे सिर उठाते, खतम कर दिये जाते। इस प्रकार उनकी संख्या इतनी क्षीण होती गयी कि उनके निवासस्थान वनभूमिमें परिवर्तित दीखने लगे।

वर्मियोंने अपनी सांस्कृतिक विरासत तलांइ (मुँ) से प्राप्त की है, ऐसा इतिहासकारोंका मत है। तलांइ (मुँ) सभ्यता अधिक पुरानी और सुधरी हुई बतायी जाती है। अलॉंवफयाने उनसे सम्बन्धित सभी उल्लेखों और परम्पराओंको समाप्त कर दिया इसलिए आत्मविश्वासके साथ यह कहना कठिन है कि उनके पतनके क्या कारण रहे ? वर्मी क्योंकर उनपर सत्ता स्थापित कर सके, यह भी विचारणीय विषय है। इसके दो मूल कारण बताये जाते हैं। एक तो यह कि वर्मी उत्तरी वर्मामें बसते थे और स्थलीय मार्गोंसे विदेशियोंका उस क्षेत्रमें आगमन निरन्तर होता रहा जिससे उनकी संख्या कभी कम नहीं हो पायी और यह बात तलांइ(मुँ) के लिए नहीं थी। दूसरे, युद्धकालमें वर्मियों (अलॉंवफया)के साथ शां, कछिन् और कादू लश्करें भी रहती थीं और तलांइ (मुँ)को केवल अपने ही लोगोंका सहारा था।

१७५० के लगभग मिन् बू जिलेके सिंन्युजिन स्थानके सोंता नामक प्रमुख भिक्षुने महर्षि मनुकी नीतियोंके आधारपर मनुयें डम्मत्का निर्माण किया। कालान्तरमें अलॉंवफयाके आदेशसे महारिसी उत्तमाजामा नामक एक सैनिकने मनुचे डम्मत्का संग्रह करके प्रस्तुत किया जो साधारण वर्मी भाषामें लिखा गया था। अलॉंवफयाके दरबारके अनेक कवि भी सैनिक थे, प्रमाणस्वरूप लेवे तऊन्ड्र, जिसने पेगूके युद्धमें भाग लिया था, आवाके अन्तिम राजाकी सभामें लुटॉ कौंसिलका एक विशिष्ट लेखक रह चुका था।

मनीपुरपर आक्रमण—१७५५ और १७५८ में अलॉंवफयाने मनीपुरपर आक्रमण किया। मनीपुरियोंके शब्दोंमें यह प्रथम विध्वंसक आक्रमण था। वे अलॉंवफयाको अतीव क्रूर बताते थे। जब वह मनीपुर-आक्रमणसे वापस हुआ तो तमु और तांगदुतमें सैनिक चौकियाँ स्थापित करता आया। उसके उत्तराधिकारी १८१९ तक

मनीपुरपर आक्रमण करते ही रहे और इससे वह देश इतना बर्बाद हो गया कि अब यह बताना असम्भव है कि उनकी तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक स्थितियाँ कैसी रही होंगी। बर्मियोंकी दृष्टिमें मनीपुरी बन्दियोंका बहुत बड़ा महत्त्व था क्योंकि वे अनेक प्रकारके कला-कौशलमें निपुण थे। वे राजदरबारमें स्वर्ण-आभूषण बनाने तथा रेशमके जरी-बूटे निकालनेके काम करते थे। बर्मी सेनामें अच्छे सैनिकोंका भी काम करते थे और दरबारके उत्तमोत्तम ज्योतिषीका भी काम देते थे। जब राजा सिंहासनपर आरूढ़ होता उस समय वे सफेद पोशाक पहनकर उसके दोनों ओर खड़े रहते थे। अलॉवफयाने मुँ नदीपर बाँध बाँधकर और महानन्डऽ झीलका निर्माण कर श्वेबो शहरको पानी पहुँचानेका इरादा किया था परन्तु वह मुँ नदीकी नहरोंका निर्माण करनेमें असफल रहा और वह जो कुछ कार्य कर चुका था वह भी उसकी मृत्युके पीछे नष्ट हो गया।

बर्मी तलांइ (मुँ) संघर्ष-कालमें कभी-कभी दोनों पक्षोंके शरणार्थी निग्रेस जाते थे और उन्हें वहाँ सोनेकी अनुमति मिल जाती थी। उन शरणार्थियोंके मध्य तलांइ (मुँ) व्यापारी भी थे जो अपने धातुके बर्तनोंको देकर अंग्रेजोंसे बन्दूकें लेते थे। कतिपय अर्मेनियन व्यापारी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके एकाधिकारसे क्षुब्ध हो गये थे और उन्होंने अलॉवफयासे जाकर कहा कि अंग्रेज तलांइको तोपें दे रहे थे। इसपर अलॉवफयाने अपने सालेको निग्रेसका विध्वंस करनेके लिए भेजा। उसका साला वहाँ फौज लेकर तो अवश्य गया किन्तु बिना युद्ध किये ही वापस आ गया और उसने कहा कि 'अंग्रेज किसी प्रकारकी गलती नहीं कर रहे हैं'। अलॉवफया उसपर अत्यन्त कुपित हो उठा। उसने उसे एक जंजीरसे बँधवा दिया और दो हजार सैनिक फिर निग्रेस भेजा। ये सैनिक किलेके आस-पास जंगलोंमें छिपे रहे

और इनके सेनापति, जिसके साथ बसीनका राज्यपाल भी था, यह कह कर किलेमें गये कि वे कम्पनीके अंग्रेज प्रबन्धकको राजाका पत्र दिखाना चाहते हैं। उस समय कम्पनीके अधिकारी नाश्ता कर रहे थे और बसीनके राज्यपालने छिपे हुए २००० बर्मी सैनिकोंको उनपर आक्रमण करनेके लिए गुप्त रूपसे संकेत कर दिया। परिणामस्वरूप १२ में से ८ अंग्रेज अधिकारी तत्काल मार डाले गये। एक सौ भारतीय जो उनके साथ थे वे भी मौतके घाट उतार दिये गये और किला भस्म कर डाला गया तथा बर्मी सेना तोपें लेकर वापस आ गयी। यह घटना ६ अक्तूबर सन् १७५९ को हुई।

अलॉवफयाके डेल्टाप्रदेशके अभियानके फलस्वरूप बहुत-से ग्रामोंके अस्तित्व मिट गये थे क्योंकि उनके निवासी या तो युद्धमें काम आ गये या भयभीत होकर दूसरे स्थानोंको चले गये थे। इसलिए उसने उन बन्दियों द्वारा, जिन्हें वह दूसरे स्थानोंसे लाया था, निर्जन जिलोंको बसाना शुरू कर दिया। अब उसकी इच्छा श्यामपर चढ़ाई करनेकी हुई और सन् १७६० के प्रारम्भमें वह मउट्टमऽ और तवाय होते हुए आगे बढ़ा, तनासरिमपर कब्जा कर लिया। फिर पहाड़ियोंसे होता हुआ, वह पूर्व और उत्तरकी ओर श्यामकी खाड़ीपर जा खड़ा हुआ। उसने श्याम-अभियान शरद् ऋतुका अन्त होते-होते शुरू किया था, इसलिए जबतक वह अयोडियऽ (अयोध्या) पहुँचा, वर्षाकाल आ गया। मार्गमें उसे साधारण युद्धोंका भी सामना करते हुए जाना पड़ा और यह भी विलम्बका एक कारण रहा।

अयोडियऽकी चहारदिवारीके बाहर खड़े होकर उसने राजाको सन्देश भेजा कि "यह न समझो कि मैं राजसत्ता उखाड़ फेंकने आया हूँ। मैं स्वर्गिक शक्तिसे सम्पन्न होकर सच्चे धर्मकी पुनः स्थापन ।करने आया हूँ, और मुझे आदर दो इसीसे सारी बातें

ठीक हो जायेंगी"। लेकिन भाग कर श्याम गये हुए कुछ तलांइ (मुँ) भी वहाँ विद्यमान थे जिन्हें पेगूकी घटनाका स्मरण था। इसलिए उन्होंने सिंहद्वारोंको बन्द रखा। हजारों संकल्पवान श्यामी लड़नेके लिए दृढ़तासे खड़े थे और तोपें छूट रही थीं। अलॉवफयाको सर्वत्र इस प्रकार विजय मिलती आयी थी कि इस बार वह बिना पूरी तैयारी किये ही चल पड़ा था। लेकिन उसे जैसी स्थितिका सामना करना पड़ा उसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। जो सेना सर्वदा विजय प्राप्त करती आयी थी, उसकी परम्परा टूटने जा रही थी और इधर अलॉवफयाका स्वास्थ्य भी जवाब देने लगा था। गम्भीरतम स्थिति सामने आनेके कारण अलॉवफयाने लस्करके पिछले हिस्सेके सेनापतित्वके लिए अपने युवाकालीन साथी मिंगौंनोयठाको चुना। इसमें सेनाके चुनिन्दे सैनिक जिसमें ५०० मनीपुरी घुड़सवार और ६००० पैदल चलनेवाले थे, समस्त सैनिक थे। मिंगौंनोयठा इन्हें इस प्रकार यत्रतत्र कतारोंमें फैलाकर रखता कि श्यामी इन्हींमें कुछ समयतक उलझते रहे और तबतक अलॉवफयाकी मुख्य सेना बहुत दूर चली आयी। जब उन्हें इसका पता चला तब बर्मी सेनापर उन्होंने प्रहार प्रारम्भ किये। मिंगौंनोयठाके नेतृत्वमें लड़नेवाले सैनिकोंने युद्ध करना चाहा परन्तु उन्हें अनुमति नहीं दी गयी और कहा गया कि हमारे राजाकी सुरक्षा न लड़नेमें ही है। इसलिए हम केवल बचाव करनेकी चिन्ता करें। यदि तोपके गोलोंकी आवाज होगी तो राजाकी नींद खराब हो जायेगी। इसलिए जब उन्हें रुकना जरूरी लगता तो वे रुकते और जब दौड़ना पड़ता तो दौड़ते। उन्हें शिकस्त भले ही मिलती रही किन्तु उनकी कतार नहीं टूटी। जो सैनिक इधर-उधर झटक जाते उन्हें भी वे साथ लेकर उचित रीतिसे पीछे हटते।

यह स्थिति तो उस सेनाकी थी जो श्यामियोंका मुकाबला

करती हुई आ रही थी परन्तु अलॉवफया बहुत आगे चला आया था। वह इस शीघ्रतामें क्यों था इसका कारण कहीं नहीं बताया गया है। सम्भव है उसे यह भान होने लगा हो कि अब उसके अन्तिम दिन आ गये थे और इसलिए अपनी राजधानी पहुँचनेकी चिन्तामें निमग्न हो गया हो। किन्तु ऐसा हुआ नहीं। सन् १७६० के मई मासमें तठऊँ जिलेके विलिन तहसीलके किन्पुआ स्थानमें सूर्योदयकालमें उसका निधन हुआ।

अलॉवफयाके मृत्युकालमें जो सेनापति उसके आस-पास थे उन्होंने उसकी मृत्युके समाचारको गुप्त रखा ताकि सेना हतोत्साह न हो पाये। उसका शव परिवेष्टित करके उसी सवारीपर रखा रहा जिसपर वह रुग्णावस्थामें पड़ा रहा। सेनाके लिए सभी आदेश उसीके नामसे प्रकाशित किये जाते थे। इस विचारसे कि उसके उत्तराधिकारीके राज्यसिंहासनपर बैठनेमें कोई कठिनाई न हो, सेनापतियोंने गुप्त रूपसे श्वेबो सन्देश भेज दिया था। रंगून पहुँचनेपर उसकी मृत्युका शोक-समाचार जनताको बतलाया गया और शव एक शाही बजरेपर रखकर नदीमार्गसे उत्तरी बर्माकी ओर ले जाया गया। श्वेबो जिलेके च्यौम्यांग स्थानपर उसके सभी राजदरबारी शव लेने आये और वह श्वेबोके ल्हाइंगदा फाटकसे ले जाया गया। शव उसी शाही नगरमें दफनाया गया जो किसी दिन उसका निवासग्राम रह चुका था। एक नूतन राजवंशीय परम्पराके संस्थापकका जीवन इस प्रकार समाप्त हुआ।

नांडॉज़ी (१७६०-१७६३)

अलॉवफयाकी मृत्युके पश्चात् उसका बेटा नांडॅज़ी सन् १७६० में गद्दीपर बैठा। वह अपने पिताके समयके उन दरबारी अधिकारियोंसे भयभीत रहता था जो लब्धप्रतिष्ठ माने जा चुके थे। नांडॅज़ी स्वयं अरक्षित रहनेका अनुभव करता था और इसलिए उसने अपने साम्राज्यके अधिकांश युद्धप्रिय बहादुरोंको राज्यसे बाहर भगा दिया था। यहाँतक कि मिंगौंनोयठाको भी नांडॅज़ीकी इन कार्रवाइयोंके खिलाफ क्रान्ति करनी पड़ी थी लेकिन उसका दमन कर दिया गया। नांडॅज़ीके प्रति उसकी प्रजा घृणा करने लगी और वह अलोकप्रिय हो गया।

नांडॅज़ीके शासनकालकी एक ही महत्त्वपूर्ण घटना थी। वह यह कि निग्रेसमें जो कत्ल किया गया था उसके हरजानेके लिए इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनीने कैप्टेन ऐल्वसको भेजा था। बादशाहने तत्सम्बन्धी अपील सुननेसे इनकार कर दिया और शहरकी सुरक्षा-व्यवस्थाके लिए भी कम्पनीको अधिकार नहीं दिया, यद्यपि उसके पिता अलॉवफयाने इसका वादा किया था। फिर भी अंग्रेजोंको रंगूनमें एक फैक्टरी चलानेकी अनुमति दी गयी।

उसके बाद तलांइने एक बार फिर विद्रोह किया लेकिन उनका दमन कर दिया गया।

तलावन स्वयं तठऊँ जिलेकी कॉगन गुफामें वर्षोंतक रहा परन्तु उसका परिवार गिरफ्तार कर लिया गया। यह समाचार

पाते ही उसे अपने परिवारकी चिन्ता हुई और वह गुफासे बाहर आकर राजाके समक्ष उपस्थित हो गया। उसने परिवारके बदले अपना जीवन देनेका प्रस्ताव किया। उसकी इस शूरताने राजापर प्रभाव डाला अतः परिवारको रिहा करते हुए उसने तलावनको अपने यहाँ आश्रय दिया।

नांडॅज़ी १७६३ में मरा और उसके बाद उसका भाई सिंव्यूशिं गद्दीपर बैठा।

सिंब्यूशिं (१७६३-१७७६)

१७६३ में नांडॅजीकी मृत्यु हो जानेके बाद सिंब्यूशिं गद्दीपर बैठा। यह अलॉवफयाका बेटा और नांडॅजीका भाई था। भाईकी मृत्युके पश्चात् इसे शान्तिपूर्ण रीतिसे गद्दी मिल गयी थी। उसका पुत्र सिंगू था जो युवराज घोषित कर दिया गया था।

सिंब्यूशिं बड़ा ही महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसकी अभिलाषा बयिंनौं जैसा विस्तृत साम्राज्य स्थापित करनेकी थी। गद्दीपर बैठनेके बाद ही उसने उन सभी बहादुर सेनापतियोंको बुलाया जिन्हें उसते भाई नांडॅजीने निष्कासित कर दिया था। वह आक्रामक युद्ध करनेके लिए तैयार था।

सन् १७६३ में उसने मनीपुरपर आक्रमण किया और शिकस्त देकर अधिकांश मनीपुरियोंको बन्दी बनाकर ले आया। मनीपुरियोंने उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली और प्रति वर्ष कर भेजनेका वादा किया।

अयोडियऽ (अयोध्या—स्याम) के साथ मतभेद तो पहलेसे चला आ रहा था और इसलिए सिंब्यूशिंने उसपर चढ़ाई कर दी। उसने शां राज्यसे होते हुए चींगमाइसे अपनी सेना भेजी ताकि ये प्रदेश भी उसकी अनुपस्थितिमें दबाकर रखे जायँ। उसे तीहापाते नामक एक बहुत वीर सेनापतिकी सेवा सुलभ थी।

इन्हीं दिनों शानियों द्वारा बगावत किये जानेकी भी सम्भावना थी। इसलिए तीहापातेकी वहीं नियुक्ति कर रखी गयी थी ताकि वह विद्रोहपर काबू कर सके। शेष सेना महानोयठाके नेतृत्वमें तवाय भेजी गयी और वहाँसे उसे पेचाबुरी जानेका आदेश हुआ। यहींसे वर्मी सेनाने अयोडियऽ (अयोध्या) पर आक्रमण करनेका

निश्चय किया था लेकिन स्यामियोंको भी इसकी खबर लग चुकी थी। उन्होंने राजधानी नगर अयोडियऽकी सुरक्षाकी पूर्ण व्यवस्था-कर ली थी और उसकी बड़ी ही जबर्दस्त मोरचेबन्दी कर रखी गयी थी। इस चढ़ाईके समय ही वर्षा शुरू हो गयी। बर्मी सेनाके लिए कठिनाई बढ़ गयी क्योंकि वह राजधानीसे बाहर शिविर बनाकर पड़ी थी। लेकिन इससे वह घबरायी नहीं और वर्षाके कारण आयी हुई बाढ़ ज्यों ही खतम हुई उसने अयोडियऽ (अयोध्या) पर चड़ाई कर दी। यह आक्रमण सफल रहा। स्यामी बुरी तरह हारे। १७६७ के मार्च मासमें अयोडियऽ फिर बर्मियोंके हाथ आ गया। बहुतायत स्यामी मार डाले गये और शाही परिवार बन्दी बनाकर आवा लाया गया। सिंब्यूशिं एक महान् योद्धा शासकके रूपमें आदृत होने लगा। उसने अयोडियऽ-वासियोंको वैसी ही शिकस्त दी थी जैसी टाँगू राजवंशके राजा बयिंनौंने। सिंब्यूशिं बहुत बड़ी मात्रामें बहुमूल्य सामानोंको लेकर बयिंनौंसे वापस आया। वह स्यामियोंपर शासन करनेके लिए एक बर्मी राज्यपाल अयोडियऽमें छोड़ता आया था। अब स्यामी बर्मी शासनकी प्रभुसत्ताके अन्तर्गत रहने लगे।

बर्मा-चीनयुद्ध—बर्मा और चीनके बीच जो व्यापारिक सम्बन्ध था उसके फलस्वरूप कुछ मतभेद हो गया। बर्माके पूर्वी सीमा-स्थलीय प्रदेशके राज्यपाल और चीनी सरकारके अधिकारियोंके बीच यह मतभेद पैदा हुआ। छोटी-मोटी अनेक ऐसी दुर्घटनाएँ घटीं जिनको शान्तिमय रीतिसे समाप्त करनेके लिए चीनी सरकार तैयार नहीं थी। उन दिनों चीनका शासक एक आक्रामक प्रवृत्ति-का शाहंशाह था और चीनी बार-बार बर्माकी पूर्वी सीमापर आक्रमण करते रहते थे। इसलिए सिंब्यूशिंने लड़कर चीनियोंसे निपटनेका निश्चय किया।

१७६५ से ६९ तक चीनियोंके आक्रमण निरन्तर चालू थे।

इसी बीच केङ्गतुङ्गके पास बर्मियोंके हाथों एक चीनीकी हत्या हो गयी और इस काण्डने स्थितिको गम्भीर बना दिया। चीनी चाहते थे कि हत्यारे बर्मीको उन्हें वापस दे दिया जाय परन्तु केंगतुंग स्थित बर्मी रेजीडेण्ट इसके लिए तैयार नहीं था। वह खूनके हरजानेमें रुपये और साथ ही हत्यारेको मृत्युदण्ड देनेको भी उद्यत था परन्तु चीनी इससे सन्तुष्ट नहीं थे। वे हत्यारेको उनके हवाले करनेकी माँगपर अड़े रहे। फिर भी ऐसी दुर्घटनाके कारण यदि बर्मा और चीनके बीच तब दौत्य सम्बन्ध रहा होता तो युद्ध न छिड़ता और दुर्घटनाके कारणोंकी जानकारी प्राप्त की जा सकती तथा मतभेद दूर किये जा सकते।

युद्धके कुछ और भी कार्य-कारण पहलेसे भी उपस्थित होते ही आये थे और इस हत्याकाण्डने बर्मी-चीनी सम्बन्धोंको इस प्रकार बिगाड़ दिया था कि एक बड़ी चीनी फौज बर्मापर चढ़ आयी।

सेन्वी, भामो, मोगांग और केंगतुंगके जागीरदारोंने भी चीनियोंकी सहायता की। उधर मोगांग नदीकी घाटीके त्रिभुजाकार क्षेत्रमें मोगांग, केंगहुंगके पास और इधर मिंगेके पास भीषण युद्ध चालू हो गया। चीनियोंके मुख्य सैनिक अड्डे भामो और लाश्योके पास थे और वे श्वेली तथा मिंगे नदियोंकी घाटियोंसे होकर आगे बढ़ रहे थे। परन्तु मुख्य युद्धस्थल भामो जिलेमें था जहाँ केंगतुंगके मोरचेपर सेनापति बालामिंदिनने आक्रामक सेनाका बड़ी वीरताके साथ सामना किया था। इससे १२ मील पूर्व श्वेयांगबिनके पास चीनियोंने भी अपना बहुत बड़ा मोरचा तैयार कर रखा था।

राजधानी नगर आवा विपत्तिओंके भयंकर झंझावातमें पड़ा था। ज्यों ही एक चीनी सेना शिकस्त खाकर पीछे हटती उससे भी बड़ी दूसरी सेना चढ़ आती। बीच-बीचमें भूकम्प भी आ

जाया करते थे। राजा सिंब्यूशिंकी घबराहट इतनी बढ़ गयी थी कि उसने आक्रमणकारी शक्तिको अदृश्य रूपसे तुष्टि पहुँचानेके मन्तव्यसे सोने-चाँदीकी हजारों मूर्तियाँ पगां स्थित श्वेज़ीगऊँ और श्वेडगों देवालयोंमें फेंकवायी।

चीनी सेना इतनी सबल थी कि मैदानी युद्धमें वह बर्मी फौजको सरलतासे हरा सकती किन्तु बर्मियोंने इसके लिए अवसर ही नहीं दिया। वे जंगलोंमें छिपकर अपने मोरचोंपरसे ही युद्ध करते। दूसरी कमी चीनी पक्षमें यह थी कि जहाँ बर्मी सेनापति परस्पर परामर्श और सहयोगसे मोरचेबन्दियाँ कायम करते आते थे वहाँ चीनी सेनापतियोंमें यह बात नहीं थी।

सर्वश्रेष्ठ चीनी सेनापतिके नेतृत्वमें मांचूकी सैनिक टुकड़ियाँ लाश्योके मोरचेपर लड़ रही थीं जो बर्मी फौजको पिछाड़ती हुई आगे बढ़ती जा रही थीं। यह चीनी सेना आवासे कुछ ही दूर गोकटेकतक आ गयी थी परन्तु बर्मी फौजने बीचमें ऐसा विक्षेप उपस्थित कर दिया कि उसे पीछेसे रसद मिलनी बन्द हो गयी। अन्ततः बहुत बड़े सैनिक सामानोंके आगार सहित प्रायः २० हजार सैनिकोंके खेत आनेके पश्चात् सन् १७६९ में बर्मी सेनाके मुकाबले चीनी सेना हार गयी।

बर्मा-चीनसन्धि—अब चीनियोंने सन्धि कर लेना उचित समझकर कतिपय अधिकारियों द्वारा बर्मी सेनापतिके पास इसका सन्देश भेजा। उस समयकी चीनी पक्षकी स्थिति इतनी नाजुक थी कि यदि बर्मी चाहते तो बहुसंख्यक चीनियोंका खातमा कर सकते और इसलिए जब सन्धि पैगाम आया तो इनके मध्य दो पक्ष हो गये। एक पक्षने चीनी दुर्बलतासे लाभ उठाना चाहा और दूसरेने सन्धिका स्वागत किया। मुख्य सेनापति महातीहऽतुरऽके विचारमें आया कि यदि कुछ चीनी सैनिक मार ही डाले जाते हैं तो इससे लाभके बदले हानि ही होगी। इससे चीनी-सम्राट्के

बर्मा-विजयविषयक निश्चयको और अधिक बल मिलेगा और युद्धरत रहनेकी स्थिति बनी ही रहेगी। इसलिए उसने चीनी दूतोंको सन्तोषप्रद उत्तरके साथ वापस किया। कांगटोनके पास चीनी और बर्मी पक्षोंके अधिकारी मिले और एक लिखित समझौता सम्पन्न किया गया। इस समझौतेके अनुसार चीनियोंको पीछे हटनेका अवसर प्रदान किया जाना था, दोनों देशोंके बीचके व्यावसायिक कार्योंको पुनः चालू करना था और फिर मतभेद पैदा होनेकी स्थिति न उत्पन्न हो इसलिए प्रति १० वर्षोंके पश्चात् उभय देशोंके बीच शिष्टमण्डलोंके आदान-प्रदानकी व्यवस्था करनी थी। फलस्वरूप चीनियोंने अपनी तोपें पिघलाकर जहाँकी तहाँ छोड़ दीं, और बर्मियोंके देखते-देखते उनकी कतारें टेपिंगकी घाटीमें एक अनिश्चित अभीष्टकी ओर चल पड़ीं।

जब बर्मी सम्राटको यह पता चला कि उसकी सेना द्वारा चीनी सैनिकोंको वापस होनेका अवसर प्रदान किया गया था तो वह आगबबूला हो गया। उसकी मंशा थी कि उन सभी चीनियोंको कत्ल कर देना चाहिये था। इसलिए जो बर्मी सेना चीनियोंसे लड़ रही थी कहाँ तो उसे घर वापस आना चाहिये था और कहाँ वह १७७० के जनवरी मासमें मनीपुर विजयके लिए चल पड़ी। मनीपुर उस समय एक सुयोग्य शासककी छायामें अपने विगत वैभवके पुनरार्जनमें लगा हुआ था कि यह नयी विपत्ति आ घहरायी। बर्मियोंको ज्वलन्त विजय मिली और वे अपने राजाको तुष्ट करनेके लिए बहुसंख्यक गुलामों और पशुओंतकको लेकर वापस आये। अबतक राजाका क्रोध कुछ मन्द पड़ गया था अतएव उसने सैनिको तो राजधानीप्रवेशकी अनुमति दे दी परन्तु सेनापतियोंको समक्ष नहीं आने दिया। महातीहऽतुरऽ और अन्य सेनापति शां-राज्यमें निर्वासित कर दिये गये। जिन मन्त्रियोंने सेनापतियोंके पक्षकी वकालतें कीं उन्हें

भी निर्वासित कर दिया गया। उनकी औरतोंको, जिनमें उसकी रानीकी एक बहन भी थी, राजमहलके पश्चिमी दरवाजेपर धूपमें तीन दिनोंतक खड़ा रखा गया। उनके सिरपर चीनी रेशमकी ओढ़नियाँ मखौलके रूपमें ओढ़ायी गयी थीं। यह रेशमी वस्त्र चीनियोंकी ओरसे भेंटरूप मिला था।

थोड़े ही दिनोंमें सामानसे लदे प्रायः ४०० बैलों और दो हजार टट्टुओंका काफिला यूनानसे आना शुरू हो गया। बर्मियोंका चीनके साथका व्यावसायिक सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गया था, खासकर रूईके निर्यातमें सन्तोषप्रद वृद्धि हो गयी क्योंकि चीन इसका विशेष ग्राहक था। भामोके ऊपरके ९ शां-नगर 'केशांपी' बर्मा अधिकृत हो गये।

इसी बीच स्यामियोंके मध्यसे एक नये नेताका उदय हुआ। इसका नाम प्याटा था। इसके नेतृत्वमें स्यामियोंने बार-बार बर्मी क्षेत्रपर आक्रमण करना शुरू कर दिया। उधर जो बर्मी सेना अयोडियऽमें थी उसमेंसे भी कुछ अपनी जगहसे हटने लगी। निदान, थोड़े ही दिनोंमें सम्पूर्ण बर्मी फौज स्यामसे मार भगायी गयी और स्याम स्वतन्त्र हो गया। इसका एक कारण यह भी था कि राजा सिंब्यूशिंकी आकस्मिक मृत्युके कारण बर्मी सेनाको सहायता नहीं पहुँचायी जा सकी।

सिंब्यूशिंके चरित्रके सम्बन्धमें इतिहासकारोंने लिखा है कि वह एक महान् रणशूर तो था परन्तु वैसा ही राजनीतिज्ञ नहीं था। उसमें प्रशासकीय योग्यताओंका अभाव था। अपने पिताकी तरह वह जागीरदारी रीति-नीति रखता आया। जिन राज्योंको जीतता था वहाँसे वार्षिक करमात्र लेकर सन्तुष्ट रहता था। उसने अपने सम्पूर्ण राज्यका केन्द्रीकरण करनेकी ओर कभी ध्यान नहीं दिया। उसकी राज्यसत्ता इसलिए सुरक्षित रही कि उसके दरबारमें अनेक योग्य सेनापति थे। १७७५ में

सिंब्यूशिंने डेल्टा प्रदेशका भ्रमण शाही शान-शौकतसे किया। उसके साथ उसकी रानियाँ, राजकुमार और दरबारी भी थे। उसने अनेक मन्दिरोंमें विधिवत् पूजन अर्चन और प्रार्थनाएँ कीं। उसने रंगूनके श्वेडगोन पगोडाकी मीनारको ३२७ फुट ऊँचा किया, उसपर सुनहला पानी चढ़ानेके लिए उसने अपने वजनके बराबर सोना दान दिया और १७६९ के भूकम्पके कुपरिणाम-स्वरूप ध्वस्त हुए छत्रके स्थानपर एक दूसरे रत्नजटित स्वर्ण-छत्रका निर्माण कराया।

सिंब्यूशिंके शासनकालमें अनेक साहित्यिक कार्य भी हुए। राजकीय मामलोंमें सहायता पहुँचानेके लिए राजाने वाराणसीसे ब्राह्मण बुलवाये। इन ब्राह्मणों और मांग डांग प्रमुख भिक्षुओंकी सहायतासे व्याकरण, ज्योतिष और औषधि-सम्बन्धी संस्कृतके अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद भी कराया गया। १७७१ में मनु उन्ना चौठिंने प्राचीन कानूनकी किताबोंसे तथ्य एकत्र कर मनुसरा-श्वेमिन डम्मत् नामक संकलन प्रस्तुत किया। मनुवनारा कानूनकी पुस्तक टवडेन सयाडेने लिखी थी। उसके दरबारके लेवेतऊन्ड्र और मा ठ्वे दो महान् कवि थे। अपनी कविताओंके कारण उन्होंने महान् ख्याति अर्जित की थी।

सिंब्यूशिंका सन् १७७६ में देहान्त हो गया और उसके बाद उसका पुत्र सिंगू गद्दीपर आसीन हुआ।

सिंगू (१७७६-१७८२)

अपने पिता सिंब्यूशिंके देहान्तके बाद १७७६ में सिंगू गद्दीपर बैठा। वह एक शान्तिप्रिय राजा था। गद्दीपर बैठनेके बाद ही उसने अपनी सेना अयोडियऽ(स्याम) और चींगमाइसे वापस बुला ली ताकि वह अपने राज्यके विद्रोहोंको रोक सके। वह एक आमोदप्रिय शासक था और इसीलिए बहुधा आखेटके लिए जाया करता था। वह बार-बार अपनी राजधानीसे अनुपस्थित रहता था। इस प्रकार वह अपने राजकीय कार्योंमें असावधानी बरतता रहा। सम्पूर्ण राज्यमें इससे असन्तोष फैला हुआ था। १७८२ के आस-पास अनेक दरबारियोंने उससे घृणा करनी आरम्भ कर दी क्योंकि वह जब भी क्रोधमें होता था, अपनी रानियों और दरबारियोंके साथ कटु व्यवहार करता था।

नांडॅज़ीके बेटे मांग मांगने, जो उसका चचेरा भाई था, उसके विरोधमें षड्यन्त्र शुरू कर दिया और उसमें सफल भी रहा। सिंगूकी अनुपस्थितिमें मांग मांगने सफलतापूर्वक उसका वेष बना लिया और राजमहलमें प्रवेश कर गद्दीपर अधिकार कर लिया। जब सिंगू वापस आया तो उसे गद्दी देनेसे उसने इनकार भी कर दिया। उसको चुनौती दी और १७८२ में मरवा डाला। मांग मांग केवल ७ दिनोंके लिए गद्दीपर रहा क्योंकि उसके चाचा बोडोफयाने उसको मरवाकर गद्दीपर कब्जा कर लिया। उसके बाद तलांइ (मुँ) ने एक बार फिर विद्रोह किया लेकिन उनका दमन कर दिया गया।

बोडोफया (१७८२-१८१९)

सिंगूको धोखा देकर मांग मांग गद्दीनशीन हुआ था और मांग मांगको भी कत्ल कर बोडोफया राजसिंहासनपर बैठा। यह अलॉवफयाका बेटा था। बोडोफयाके अनेक प्रतिद्वन्द्वी थे इसलिए अपनी स्थिति सुदृढ़ करनेके लिए उसे गद्दीपर बैठनेके बाद ही अनेक ठोस एवं कठोरतापूर्ण कदम उठाने पड़े। उसने अपने सभी विरोधियोंको सपरिवार गिरफ्तार कर कत्ल करा दिया। कुछ महीनों बाद उसे पता चला कि उसका छोटा भाई कतिपय मन्त्रियोंकी सहायतासे उसे मरवा डालनेका षड्यन्त्र रच रहा है इसलिए उसने उन सबकी हत्या करा दी। इस षड्यन्त्रसे बोडोफयाके हृदयको भारी धक्का पहुँचा और तबसे वह सभीपर सन्देह करने लगा। उसे सर्वदा यह भय लगा रहता था कि न जानें कब वह अनजाने पकड़कर कत्ल कर दिया जाय। अतएव वह कभी भी एक ही कमरेमें दो बार नहीं सोता था।

१७८३ में दूसरी बार फिर उसकी हत्या करनेका प्रयत्न किया गया था। फूल बेचनेवाले शानियोंके एक झुण्डने उसकी हत्या करनेकी मंशासे राजमहलमें प्रवेश करना चाहा था लेकिन रक्षकोंने स्थिति सम्भाल ली। आक्रामक पकड़कर मार डाले गये। बोडोफयाने उस गाँवको ही जला डाला जहाँके निवासियोंने यह षड्यन्त्र किया था।

१७८२ में कतिपय ज्योतिषियोंने बोडोफयाको सलाह दी कि आवा राजधानी योग्य स्थल नहीं इसलिए उसने आवासे हटाकर अमरापुराको राजधानी बना लिया। इस कार्यसे प्रजामें भारी

असन्तोष पहुँचा क्योंकि अमरापुरामें राजमहल तैयार करानेमें बहुत ही अधिक लोगोंको मुफ्त काम करना पड़ा था।

बोडोफया शूरवीर और महत्त्वाकांक्षी राजा था। उसकी अभिलाषा सम्पूर्ण बर्माको एक शासनसत्ताके अन्तर्गत करने की थी। उसने अपना राज्य-विस्तार अराकान और मनीपुरके सीमास्थलीय प्रदेशोंकी ओर भी बढ़ानेकी चेष्टा की। उसके युद्धोंने उसे एक शक्तिशाली शासक बना दिया।

१७८२ से १७८५ के बीच अराकानमें गृहयुद्ध चल रहा था इसलिए कि वहाँके कतिपय जमींदारोंने बोडोफयाको क्रान्तिका दमन करनेके लिए आमन्त्रित किया। वे चाहते थे कि बोडोफया उनके राजाके स्थानको सुशोभित करे। परन्तु बोडोफयाको महामुनि मन्दिरकी दैवीशक्तिसे भय था। इसलिए उसने पहले अपनी एक बड़ी सेना महामुनि मन्दिरकी शक्तिका नाश करनेके लिए भेजी। उस सेनाने अराकानके म्योहौं नामक स्थानपर कब्जा कर लिया। उसके बाद उसने महामुनि मन्दिरको ध्वस्त कर डाला। वापस होते हुए वह अराकानके राजाको सपरिवार और २० हजार अराकानियोंको बन्दी बनाकर लेता आया। महामुनिकी मूर्त्तिके तीन टुकड़े करके उसे अमरापुर लाया गया और अराकान प्रदेश बर्मी राज्यका एक अंग बना लिया गया।

अराकान विजयने बोडोफयाका हौसला इतना बढ़ा दिया कि अब वह अयोडियऽ(स्याम) पर विजय पानेकी भी सोचने लगा। उसे यह आत्मविश्वास हो गया कि वह अयोडियऽपर भी आधिपत्य स्थापित कर लेगा। फलस्वरूप १७८५-८६ में उसने स्यामपर चढ़ाई कर दी और त्रै मन्दिर (तीन पगोडा) से होता हुआ उसने अयोडियऽमें प्रवेश किया। स्यामियोंने बर्मी सेनाका डटकर मुकाबला किया जिसके फलस्वरूप वह पीछे हट आयी। स्यामियोंने हाथ आया यह अवसर व्यर्थ नहीं जाने देना चाहा

और बर्मी क्षेत्रपर तत्काल आक्रमण कर दिया। इस अभियानमें उन्हें सफलता मिली और चींगमाइपर उनका कब्जा हो गया। बोडोफयाने तनासरिम क्षेत्रकी रक्षा करनी चाही और बार-बार अपनी फौज अयोडियऽ भेजी ताकि स्यामियोंका दमन किया जा सके लेकिन उसकी मंशा पूरी नहीं हुई। अडोडियऽकी प्रत्येक चढ़ाईमें बर्मी फौजको हानि ही उठानी पड़ी।

सन् १७८५ में अराकानपर बर्मी सत्ता स्थापित होनेके बादसे ही वहाँके लोग बेचैनीका अनुभव करने लगे थे। वे रह-रहकर विद्रोहपर तुल जाते। इससे क्रुद्ध होकर बर्मी उन्हें अपनी सैनिक चौकियोंपर ले आते और कत्ल कर देते। इन्हीं दिनों अराकानसे ३,००० व्यक्ति मइटीलऽ झीलपर काम करनेके लिए बुलाये गये थे जिनमेंसे थोड़े भी वापस नहीं गये।

चींगमाइके विरोधमें काम करनेके लिए ६,००० व्यक्ति ले जाये गये थे और वहाँ भी इनमेंसे बहुसंख्यक रोगोंके शिकार बन गये। जब १७९७ में मिंगुन देवालयपर काम करनेके लिए और २००० आदमियोंकी माँग हुई तो अराकानी सामूहिक रूपसे विद्रोहपर तुल गये। यह विद्रोह वर्षोंतक चलता रहा और अब अराकानी चटगाँवमें जाकर शरण लेने लगे। अराकान जो पूर्णतया कभी आबाद नहीं रहा वह अब और भी निर्जन बन गया। कुछ स्थल तो निरे वीरान, दलदल और महामारीके प्रकोपों जैसे बरबाद दीखने लगे।

इस प्रकार अराकानसे भागकर चटगाँवमें प्रवास करनेवालोंकी संख्या बढ़ते-बढ़ते ५० हजारके लगभग हो गयी और बर्मी इन्हें अंग्रेजोंसे वापस माँगने लगे। लेकिन सबको वापस किया नहीं जा सकता था क्योंकि इनमें अनेक वर्गोंके व्यक्ति थे। कुछने तो ब्रिटिश क्षेत्रमें विद्रोही मोरचा भर बना लिया था और उन्हें जब भी अवसर मिलता बर्मी क्षेत्रपर आक्रमण कर देते। इनके

कार्योंसे अंग्रेज भी क्षुब्ध थे और यथासम्भव गिरफ्तार कराकर वापस देते। परन्तु जो केवल शरण लेनेकी दृष्टिसे गये थे उन्हें जबरन वापस भेजना सम्भव नहीं रहा। यह बात बर्मी शासकोंको पसन्द नहीं थी। वे सबको वापस चाहते थे।

विद्रोही नेताका उदय—उन्हीं दिनों १७९७ में ङा चिंप्या नामक एक विद्रोही अराकानी नेताका अभ्युदय हुआ जिसने निरन्तर १७ वर्षोंतक बर्मी सत्ताके विरोधमें क्रान्ति चालू रखी। वह ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रोंमें भी चला जाता और वह एक-न-एक लड़ाकू दलका निर्माण करके बर्मियोंपर आक्रमण कर देता। उसकी गिरफ्तारीके लिए बर्मी शासकोंने ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रोंमें अपनी सैनिक टुकड़ियाँ भेजनेकी अनेक बार अनुमति माँगी और वह स्वीकार भी हो गयी। ब्रिटिश अधिकारियोंने यथोचित योगदान भी किया, तो भी ङा चिंप्या पकड़ा नहीं जा सका। अन्ततः १८१५ में वह स्वाभाविक रूपमें मौतका शिकार बना जिससे सबको राहत मिली।

अंग्रेजोंने सन् १७९५ से बर्मासे दौत्य सम्बन्ध स्थापित करना प्रारम्भ किया। इससे पूर्व अलॉवफयाके समयमें जो अंग्रेज प्रतिनिधि भेजे गये थे उनकी मुलाकातोंका अभीष्ट, व्यावसायिक कार्योंमें कुछ छूट एवं सुविधाएँ भर प्राप्त करना था। अब एक तो अराकानपर बर्मी सत्ता स्थापित होनेके कारण अँग्रेजोंसे दौत्य-सम्बन्ध अपेक्षित हो गया था और दूसरे विश्वस्थितिका भी कुछ ऐसा ही तकाजा था। ब्रिटिश और फ्रांसीसी शक्तियोंकी होड़में कुछ ऐसी उग्रता आ गयी थी कि ब्रिटेन संसारके किसी भी भागमें किसी भाँतिकी भी फ्रांसीसी प्रगतिको बिना चुनौतीके अग्रसर नहीं होने देना चाहता था। फ्रांसीसी, भारतमें भी फिरसे पाँव जमानेकी फिक्रमें थे और बर्मामें भी वे अपना जहाजी अड्डा स्थापित करना चाहते थे। इसलिए वे बर्माके बन्दरगाहोंमें जहाज

भेजते और राजाको अपनी बन्दूकें बेचते थे। अंग्रेज उनके इस कार्यको रोकना चाहते थे।

बर्मी तब अन्तरराष्ट्रीय मामलोंसे अवगत नहीं थे। इसी कारण उन्होंने फ्रांसीसी अधिकारियोंके साथ सम्पर्क स्थापित करनेकी चेष्टा नहीं की, परन्तु १८०७ से भारत-भ्रमणके लिए उनके शिष्टमण्डल आने लगे। ये शिष्टमण्डल मुख्यतः बर्मी राजाकी ओरसे भेजे जाते थे और इनमें दरबारी सरदार अथवा पुरोहित होते थे जो दिल्ली, लाहौर और पेशावर आदिका भ्रमण करके धर्मग्रन्थों और पवित्र धातु अवशेषोंको लाते थे। पहले तो अंग्रेजोंने इनपर किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं रखा परन्तु उन्हें जब यह अनुमान होने लग गया कि यात्री कुछ भारतीय राजाओंके साथ ब्रिटिश सत्ताके विरोधमें कपट-मन्त्रणाके लिए भी भारत आते थे, केवल तीर्थाटन करने ही नहीं, तो उनपर रोक लगा दी गयी।

अंग्रेजोंने कैप्टन साइम्सको १७९५ और पुनः १८०२ में भेजा तथा कैप्टन कॉक्सको १७९७ और कैप्टन कैनिंगको १८०३, १८०९ और १८११ में दौत्य-सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए भेजा। परन्तु वे जिन उद्देश्योंको लेकर आये उनकी पूर्तिमें विफल होकर वापस होते गये। राजा बऽजीडो एक तो उनसे बातचीत करनेके लिए बहुत कम अवसर देता था और दूसरे उनकी वापसीपर अपना दूत कलकत्ता नहीं भेजता था ताकि इस सम्बन्धमें स्थायित्व आ सके।

बताया जाता है कि बर्मी राजा, वाइसराय द्वारा भेजे गये दूतोंसे बातचीत करनेमें अपनी मानहानि समझते थे। वे स्वयं ब्रिटेनके सम्राट्से ही सम्बन्ध कायम करना चाहते थे और वाइसरायके सम्बन्धोंको रंगूनके गवर्नरके साथ। अंग्रेजोंकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माँग यह थी कि जो ब्रिटिश पोत बर्मी बन्दरगाहोंमें

व्यवसायके लिए ले जाये जाते थे उन्हें रोका न जाय। विचारोंके ऐसे वैषम्यने किसी भी समस्याका समाधान नहीं होने दिया, न दौत्य-सम्बन्ध स्थापित किया जा सका और न व्यावसायिक ही।

सन् १८११ में बर्मियों और ब्रिटिश सरकारके बीच कुछ ऐसा मतभेद पैदा हो गया कि ब्रिटिश दूत कैनिंग बन्दी बना दिया गया। लेकिन वह किसी प्रकार चुपकेसे भारत भाग गया और उसके बादसे वाइसरायने दौत्य-सम्बन्ध भङ्ग कर दिया। यह उथल-पुथल चल ही रही थी कि ङा चिंप्याका देहान्त हो गया और अराकानियोंने बर्मी सत्ता स्वीकार कर ली। सन् १८१२ से बोडोफयाने मनीपुरके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप शुरू कर दिया। वहाँके एक युवराज मजीतसिंहकी सहायताके लिए बर्मी सेनाने मनीपुरपर आक्रमण किया और उसपर सफलतापूर्वक कब्जा करके मजीतसिंहको गद्दीपर बैठा दिया। इस सहायताके लिए कृतज्ञताज्ञापनके रूपमें मजीतसिंहने बोडोफयाको कैलोघाटी भेंटमें दिया।

असमका अहऊँ वंशीय राज्य ब्रह्मपुत्र नदीके किनारे ग्वालपारासे सदियातक फैला हुआ था। यह एक शक्तिशाली राज्य था लेकिन अब पतनोन्मुख हो चला था। इसका तत्कालीन शासक चन्द्रकान्त सिंह था। इस राजाने अपने एक राज्यपालके साथ अन्याय किया। फलस्वरूप असमका राज्यपाल चन्द्रकान्तके विरोधमें सहायता प्राप्त करनेके लिए बोडोफयाके पास आया। बोडोफया सहायता करनेके लिए उद्यत हो गया। बर्मी सेनाने चन्द्रकान्तके विरुद्ध अभियान किया जिसके फलस्वरूप चन्द्रकान्त निर्वासित राज्यपालको फिरसे नियुक्त करनेके लिए विवश हुआ। आसामके राज्यपालने बर्मी राजाको ५० हाथियोंकी भेंट दी।

एक ओर तो ये घटनाएँ घट रही थीं और दूसरी ओर

बर्मियों और अंग्रेजों के बीचके सम्बन्धोंमें भी तनाव आता जा रहा था। १८१९ में बोडोफयाने चटगाँवसे ढाका और मुर्शिदाबाद-तकके क्षेत्रपर अपना अधिकार बताना शुरू कर दिया। लेकिन अंग्रेजोंकी ओरसे किसी प्रकारका भी असन्तोष प्रकट किये जानेसे पहले ही सन् १८१९ में बोडोफयाकी एकाएक मृत्यु हो गयी। इतिहासकारोंका कहना है कि बर्मी राजाकी यही माँग बर्मी-ब्रिटिश प्रथम युद्धका मुख्य कारण बनी।

बोडोफया द्वारा अयोडियऽपर की गयी चढ़ाई निष्फल हो गयी थी, तो भी उसे एक सफल शासक तो मानना ही होगा। इस वंशके अन्य राजाओंकी भाँति इसने भी अपने शासनका प्रारम्भिक काल अनावश्यक युद्धोंमें बिताया। बयिंनौंके अतिरिक्त अन्य सभी बर्मी राजाओंके मुकाबलेमें बोडोफया सर्वाधिक शक्तिशाली राजा माना गया है। १७८२ में उसने अपनी राजधानी आवासे अमरापुरा स्थानान्तरित की। उसने पास-पड़ोसके लोगोंसे जबरन काम कराया। अमरापुरा राजधानी हो जानेके बाद ही उसने सिंचाईकी योजनाएँ बनाना शुरू कर दिया। उसने मांडले जिलेके नवडे, आंगविये और मौंमाकां झीलोंके साथ ही मइटीलऽ झीलके किनारोंकी मरम्मत करायी।

१७८७ और १८०३ में बोडोफयाने भूमि-कर सम्बन्धी जाँच की। यह जाँच वैसी ही थी जैसी राजा थालुनने करायी थी। इन जाँचोंके चिह्न अभी भी मौजूद हैं और इन्हें संगृहीत कर रखा गया है।

शिष्टमण्डलोंका आदान-प्रदान—बोडोफयाके शासनकालमें बर्मा और चीनके बीच अनेक शिष्टमण्डलोंके आदान-प्रदान हुए। यह प्रथम अवसर था जब बर्माने किसी अन्य देशके साथ ऐसा सम्बन्ध कायम किया हो। इससे महान् हितसाधन भी हुए। सीमास्थलीय समस्याएँ सुलझती गयीं अन्यथा युद्ध भी हो

सकता था। साधारणतया चीनी शिष्टमण्डल यूनानसे आया करते थे लेकिन कभी-कभी पेकिंगसे भी आ जाते। एक शिष्टमण्डल तो ४०० घुड़सवारोंका अनेक अधिकारियोंका शाही स्तरपर आया। बर्मी तीन दूत पेकिंग भेजे गये थे जो स्थलमार्गसे पाँच महीनेमें वहाँ पहुँचे और जब वापस आये तो वे ही चीनी सम्राट्-से प्राप्त आतिथ्यकी रीतियोंका वर्णन करते नहीं अघाते थे। उनके लिए आमोददायक कैसे विविध नाटकों और नृत्योंके आयोजन किये गये थे तथा किस प्रकारके व्यञ्जनोंकी व्यवस्था की गयी थी, चीनी सम्राट् बर्मी बाजोंको सुनकर किस प्रकारकी मुग्धता व्यक्त करता रहता था आदि कहानियाँ तो ये नित्य-प्रति सुनाते रहते थे। सर्वाधिक महत्त्वशाली चीनी शिष्टमण्डल १७९० में बर्मा आया, जिसके साथ भगवान् बुद्धका एक दाँत था और बोडोफया-से विवाह करनेके लिए तीन यूनानी सुन्दरियाँ साथ थीं। जब दाँतकी भेंट मिली और उसे मिंगुन देवालयमें प्रतिष्ठापित कर दिया गया तो बोडोफया उल्लसित हो उठा। ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह अपनेको अनोयठासे महानतर समझने लगा हो क्योंकि अनोयठा चीनसे दाँत प्राप्त करनेमें असफल सिद्ध हुआ था। सुन्दरियोंके आगमनने दरबारियोंके मध्य प्रसन्नताकी एक लहर दौड़ा दी। वे कहने लगे—'चीनी शाहंशाहने इन्हें राजाके लिए भेंट भेजी है।'

धार्मिक-सामाजिक नीति—सन् १८०२ से अधिकांश सिंहलीय बर्मा आये। सिंहलीय नियमानुसार कृषक बौद्ध मन्दिरोंमें प्रवेश नहीं कर सकते थे। लेकिन बोडोफयाने सिंहलीय आगन्तुकोंको, जो कृषक थे, अपनी राजधानीमें रहनेकी अनुमति दे दी थी और इन्हें धर्मग्रन्थोंके अध्ययनकी भी सुविधा मिली थी। आगे चलकर ये बौद्ध धर्ममें दीक्षित भी कर लिये गये। कालान्तरमें बोडोफयाने धार्मिक शिष्टमण्डल सिंहल भेजा जहाँ इन भिक्षुओंने

बौद्ध धर्मका अमरापुरा नामक शिवालय स्थापित किया। उसने पंजाबतक शिष्टमण्डल भेजा जिसे निर्देश किया गया था कि वह धार्मिक और सांस्कृतिक जानकारी प्राप्त करे। बोडोफयाको अपने धर्मके प्रति अनुराग था। वह उस ओरसे तनिक भी उदासीन नहीं था। लेकिन मठाधीश भिक्षुओंके हाथमें अधिक सत्ता देख कर उसके मनमें द्वन्द्व उठने लगा था। उसने भिक्षुओंकी संख्या कम करनेके विचारसे आदेश निकाला कि किसी भी भिक्षुको मठाधीश बनानेसे पहले उसकी योग्यताकी कठोरताके साथ जाँच की जायगी। इसके अतिरिक्त उसने प्रत्येक भिक्षुकी भूमिकी बाबत भी जाँच किया। मठोंके प्रमुख भिक्षुओंको अपनी सम्पत्तिके सम्बन्धमें पूरी कैफियत देनी पड़ती थी। किसी भिक्षुके मठाधीश नियुक्त होनेसे पहले वह उसकी योग्यताओंके बारेमें सख्तीसे जाँच कराता था।

बोडोफयाने अनेक बौद्ध-मन्दिर बनवाये जिनमेंसे जगांइ जिलेमें अवस्थित मिंगुनका मन्दिर सर्वश्रेष्ठ था। वह इसका निर्माण एक विचित्र ढंगसे कराना चाहता था, विशेष कर इसकी मीनार ५०० फुट ऊँची बनवाना चाहता था। इस तरहकी अपने ढंगकी अकेली मौलिक कृतिपर गर्व था लेकिन मन्दिरका निर्माणकार्य पूरा होनेसे पहले ही यह अफवाह फैलने लगी कि इसका निर्माण समाप्त होते ही देश बर्बाद हो जायगा। पगोडाकी जो ऊँचाई निश्चित की गयी थी उसका एक तिहाई भाग ही बन पाया था कि बोडोफयाने इसका निर्माण रोक दिया। इस तरह यह मन्दिर अपूर्ण ही रह गया।

मद्यनिषेधके बारेमें यद्यपि राजा बयिंनौं भी काफी सख्त रुख रखता आया था, किन्तु बोडोफयाने तो इसके लिए मृत्युदण्डतकका आदेश जारी कर दिया था। इस निषेधनियमके लागू करनेमें वह बहुत अंशतक सफल हुआ परन्तु पूर्णरूपेण नहीं

क्योंकि उसके राजमहलमें रहनेवाले कतिपय अधिकारी भी लुक-छिपकर मद्यपान किया करते थे जिसका कुप्रभाव आम जनतापर भी पड़ना स्वाभाविक था। एक नियम जारी कर देनेका तबतक कोई अर्थ नहीं होता, जबतक इसका उल्लंघन करनेवालोंको दण्ड न दिया जाय। और जब शाही दरबारके भी कुछ व्यक्ति नियमोल्लंघन करनेवाले थे तो वे दूसरोंको वैसे ही दोषोंके लिए कठोर दण्ड क्योंकर देते। इस तरह बोडोफया मद्यनिषेध करानेमें प्रयत्नशील अवश्य रहा पर पूर्ण सफल नहीं हो सका।

बोडोफयाको देशका व्यापार बढ़ानेकी अभिलाषा थी और उसने सोचा कि यदि वह एकाधिकारका नियम चालू करेगा तो व्यापारियोंकी दिलचस्पी बढ़ेगी। उसने ऐसा ही किया भी, परन्तु परिणाम उलटा निकला। एकाधिकारी मनमाना लाभ उठाने लगे। जब भी वे चाहते, वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि ला देते। इससे आम जनताको कष्ट और असुविधाएँ होने लगीं। आगे चलकर राजा बऽजीडोने इस नियमको बन्द कर दिया।

विदेशी धर्मप्रचारक—१८१३ में डाक्टर जडसन और उनकी धर्मपत्नी बर्मा आये। उन्होंने अमेरिकन बेपटिस्ट मिशनकी स्थापना की। पहले पहल तो बोडोफयाने ईसाई मतके प्रचारका विरोध किया लेकिन बादमें उन्हें अनुमति दे दी। कैथोलिक मिशनकी स्थापना इससे बहुत पहले सन् १७२१ में हो चुकी थी परन्तु उसके दोसे अधिक पादरी शायद ही बर्मामें कभी रहे हों। एक रंगूनमें रहता था और दूसरा श्वेबोके पासके वयिंजी ग्राममें। बर्मी राजाओंके समयमें ऐसे धर्मप्रचारकोंकी संख्यामें वृद्धि असम्भवप्राय थी क्योंकि यद्यपि वे ईसाई-धर्मके प्रति कोई विशेष विरोध भाव नहीं रखते थे फिर भी विदेशियोंको तो सन्देह-भरी दृष्टिसे देखते थे। विदेशी प्रचारकोंका ग्रामीणोंके मध्य स्वच्छन्द विचरण उन्हें पसन्द नहीं था।

बोडोफयाने अपने देशके साहित्यिक कार्यको भी प्रगति दी। बर्मी-साहित्यको समृद्ध करनेमें उसकी दिलचस्पी थी। बर्मी भाषाका शब्दकोश सर्वप्रथम उसने ही बनवाया। उसने ही बाइबिलका बर्मीमें रूपान्तर कराया। बोडोफयाके दरबारमें दो साहित्यकार रत्न थे। एक राजाका बाल्यकालीन शिक्षक त्वेंटेंतैपुन था। उसने सभी बौद्ध-मन्दिरोंसे आवश्यक साहित्यिक तथ्य एवं आँकड़े एकत्र किये थे जिन्हें बोडोफयाने देवालयोंमें रखवाया। बादमें उन तथ्योंको पुस्तकाकार रूप दे दिया गया। इसका नाम याज़ाविंते अओबातऽ रखा गया। १० जातक कथाओंको गद्य-रूपमें लिखा गया। इन कथाओंको उसने मिन्बूके अपने बौद्ध-मन्दिरमें लिखा। दूसरा साहित्यकार लेवेतऊन्ड्र था जो उसके शासनके अन्ततक जीवित रहा। वह राजाके दरबारका एक न्यायपति भी था।

राजाकी मृत्युके पश्चात् राज्यके उत्तराधिकारके लिए विवाद खड़ा हो सकता था, इसलिए उसने अपने जीवनकालमें ही व्यवस्था कर दी थी। १८०८ में उसके पुत्रकी मृत्यु हो जानेके कारण उसने अपने पौत्र बऽजीडोको उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

बोडोफया अपनी १२२ सन्तान तथा २०८ पौत्र-पौत्रियाँ पीछे छोड़ता हुआ ३८ वर्षोंके शासनकालके पश्चात् ७५ वर्षकी वयमें सन् १८१९ में दिवंगत हुआ।

१८१९ में बोडोफयाका देहान्त होनेके पश्चात् बऽजीडो निरापद रूपसे राजसिंहासनका उत्तराधिकारी बन गया।

बऽजीडो (१८१९-१८३७)

राजा बोडोफयाने अपने जीवनकालमें ही बऽजीडोको राजगद्दीका उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था इसलिए उसकी मृत्युके पश्चात् बऽजीडोको किसी प्रकारकी बाधाका सामना नहीं करना पड़ा। वह सरलतासे सिंहासनारूढ़ हो गया। बऽजीडो राजा बोडोफयाका प्रपौत्र था। इसके पिताका १८०८ में ही देहान्त हो गया था। राजसिंहासनपर बैठनेके समय बऽजीडोकी अवस्था ३५ सालकी थी। उसने अपना राज्याभिषेक उत्सव बड़े ही समारोहसे सम्पन्न कराया। इसकी खुशीमें उसने अनेक अधिकारियोंको पुरस्कृत किया और प्रजाको ३ वर्षोंके करसे मुक्त कर दिया।

बऽजीडोने प्रकाशकीय कार्योंके लिए अपने पितामह बोडोफयाकी नीतियोंपर आचरण करना शुरू किया। ज्योतिषियों की सलाहपर सन् १६२३ में उसने अपनी राजधानी अमरापुरासे हटाकर आवा स्थानान्तरित किया। वह समाजसुधारके सम्बन्धमें नयी नीतियोंको अपनानेकी सोच ही रहा था कि उसे अनेक युद्धोंमें उलझ जाना पड़ा।

१८१९ में गद्दीपर बैठनेके बाद ही बऽजीडोको मनीपुरपर चढ़ाई करनी पड़ी क्योंकि वहाँका राजा मजीतसिंह, जिसे बोडोफयाने राजसिंहासनपर बैठाया था, बऽजीडोके राज्याभिषेक समारोहमें सम्मिलित नहीं हुआ। इस आक्रमणके फलस्वरूप मनीपुरी अपने घर छोड़कर जंगलोंमें भाग गये और वहाँका राजा फरार होकर कछारके प्रमुखकी शरणमें चला गया। इस भाँति मनीपुर बर्मी राज्यका एक अङ्ग बन गया।

उसी वर्ष बर्मी राजाको आसामपर भी चढ़ाई करनी पड़ी थी। आसामके राजा चन्द्रकान्तसे प्रजा असन्तुष्ट रहा करती थी, जिसके फलस्वरूप इतना मतभेद बढ़ गया कि राजाको गद्दी छोड़कर भागना पड़ा। ऐसी विषम स्थिति आ जानेके कारण बऽजीडोने हस्तक्षेप किया। उसने अपनी सेना भेजकर चन्द्रकान्तको फिर राजगद्दी दिलायी और उसके दरबारमें अपना एक आवासी प्रतिनिधि रखना शुरू कर दिया। बर्मी प्रतिनिधिका सर्वदा हस्तक्षेप करते रहना आसामके राजाको पसन्द नहीं था इसलिए वह भागकर ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रमें चला गया। उसके चले जानेके बाद आसामी जनता बऽजीडोकी फौजकी कृपापर रहने लगी। बहुसंख्यक आसामी राजधानीमें काम करनेके लिए ले जाये गये और आसाम भी बर्मी शासनकी छायामें ले लिया गया।

राजा चन्द्रकान्तके अंग्रेजोंकी शरणमें चले जानेपर बऽजीडोने उनसे चन्द्रकान्तको वापस करनेकी माँग की लेकिन अंग्रेजोंने इनकार कर दिया। इससे कुपित होकर बर्मी राजाने ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रोंपर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। बर्मी सेनाका यह कदम प्रथम बर्मी ब्रिटिश युद्धका एक परोक्ष कारण बताया जाता है।

प्रथम बर्मी-ब्रिटिश युद्ध—प्रथम बर्मी-ब्रिटिश युद्ध १८२४ से १८२६ तक चलता रहा। इसके कुछ तो परोक्ष और कुछ प्रत्यक्ष कारण थे। परोक्ष कारणोंका बीजारोपण सम्राट् बोडोफयाके समयसे ही शुरू हो गया था। बोडोफयाने अराकानको अपने राज्यका एक अंग बना लिया था लेकिन अराकानी जनता आये दिन विद्रोहोंपर तुली ही रहती थी। इन विद्रोहोंका एक कारण तो यह भी था कि बर्मी राज्यपालोंका अराकानी जनताके साथ प्रशासकीय व्यवहार उचित रूपसे नहीं होता था। इसी

बीच अराकानियोंमें ङा चिन प्यां नामक एक नेताका भी अभ्युदय हो गया जिसके नेतृत्वमें अराकानी, बर्मी सैनिक अड्डोंपर बार-बार आक्रमण करते रहे। बर्मी सेना इससे विचलित नहीं हुई और ङा चिन प्यां कुछ साथियों समेत अराकानसे फरार होकर ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रमें चला गया। बर्मी राजाने उसकी तलाश करने देनेकी अंग्रेजोंसे अनुमति माँगी और वह मिल भी गयी। इस पारस्परिक सद्भावका प्रथम परिणाम तो उत्तम निकला किन्तु आगे चलकर वही विष-वृक्ष बन गया।

इस सद्भावका ही परिणाम था कि ब्रिटिश और बर्मी सरकारोंके बीच दौत्य-सम्बन्ध स्थापित हुआ। १७९५ में ब्रिटिश सरकारने अपना प्रथम दूत व्यापारिक-सम्बन्ध स्थापित करने और अराकानसे बंगाल भागे हुए शरणार्थियोंके कारण पैदा हुए मतभेदको दूर करनेके लिए भेजा। इसके बाद इसी दौत्यकार्यके सिलसिलेमें १८०९ में कैप्टन कैनिंग बर्माके लिए ब्रिटिश राजदूत होकर आये। ये सदाचारी और नीतिकुशल प्रतिनिधि साबित नहीं हुए। उन्होंने उभय सरकारोंके बीच अमैत्रीपूर्ण वातावरण पैदा कर दिया। १८११ में कैनिंगको बर्मा सरकारने बन्दीखानेमें डाल दिया था, लेकिन वे वहाँसे चुपकेसे भाग निकले और कलकत्ता चले आये। कैनिंगका बर्मी राजा द्वारा बन्दी बनाया जाना तत्कालीन भारत स्थित ब्रिटिश सरकारको पसन्द नहीं आया। यह कार्य दोनोंके बीच उग्रतम भेद पैदा करनेका प्रथम प्रत्यक्ष कारण बना।

सन् १८१८ के आस-पास बोडोफयाने ब्रिटिश सरकारसे माँग की थी कि बंग प्रदेशके ढाका नगरसे लेकर मुर्शिदाबादतककी भूमिपर बर्मी आधिपत्य होना चाहिये। वस्तुतः यह भूमि कुछ कालतक अराकानियोंके कब्जेमें रह आयी थी और अब अराकानपर बर्मी सत्ता कायम हो जानेके कारण बोडोफया उसे अपने

साम्राज्यका एक अङ्ग मानने लग गया था। परन्तु इस माँगपर होनेवाली ब्रिटिश प्रतिक्रियाकी जानकारीसे पहले ही सन् १८१९ में राजा बोडोफया सहसा चल बसा। हाँ, उसकी इस माँगने भावी बर्मी राजा और ब्रिटिश सरकारके लिए शत्रुताका बीजारोपण तो कर ही दिया था। बोडोफयाके इस कदमको बर्मी-ब्रिटिश प्रथम युद्धका दूसरा प्रत्यक्ष कारण समझना चाहिये। बोडोफयाके शासनकालकी घटनाओंके बाद ही जब बऽजीडोने राज्यसत्ता सँभाली तो स्थिति क्रमशः बिगड़ती ही गयी। बऽजीडोकी सेनाने मनीपुरपर आक्रामण किया और वहाँका राजा भागकर कछार चला गया। वहाँ उसने उपद्रव शुरू कर दिया। इसपर कछारके प्रमुखने मदद माँगी। यहाँसे कुमुक पहुँचनेमें बिलम्ब हुआ इसलिए कछार नरेशने ब्रिटिश सरकारसे मदद माँगी और वह सहायतार्थ तुरन्त तैयार हो गयी। कछार राज्यके ब्रिटिश संरक्षणमें होनेकी घोषणा कर दी गयी। इसपर बऽजीडो क्रुद्ध हो उठा और बदला लेनेकी ताकमें लग गया।

थोड़े ही समयमें मनीपुरके राजासे सम्बन्धित दुर्घटनासे कहीं अधिक भयंकर घटना आसाममें हो गयी। आसाममें गृहयुद्ध शुरू हो गया था और वहाँका राजा चन्द्रकान्त गद्दीसे खदेड़ दिया गया था। इसपर चन्द्रकान्तने बर्मी राजासे सहायता प्राप्त कर फिर राजगद्दीपर अधिकार कर लिया। चन्द्रकान्तको पुनः राज्याधिकारी तो बर्मी राजाने बना दिया लेकिन साथ ही साथ अपना एक आवासी प्रतिनिधि भी वहाँ रख दिया। उक्त प्रतिनिधि चन्द्रकान्तके राजकीय कार्योंमें इतना अधिक हस्तक्षेप करने लग गया कि चन्द्रकान्त ऊबकर अपना राज्य छोड़कर भागा और ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रमें जाकर शरण ली। चन्द्रकान्तके पलायनके बाद बर्मी शासकने आसामको तो अपने राज्यमें मिला ही लिया, साथ ही चन्द्रकान्तको वापस

करनेकी भी अंग्रेजोंसे माँग करने लगा। अंग्रेजोंने इस बर्मी माँगपर कोई ध्यान नहीं दिया और उनमें दिनोदिन मतभेद बढ़ता ही गया।

१८२३ में बर्मी सेनाने चटगाँवके नीचे नाफ नदीके पास स्थित शिंमाब्युज्युन (शाहपुरी) टापूपर आक्रमण कर दिया। शिंमाब्युज्युन ब्रिटिश अधिकृत स्थल था। चटगाँवका जिलाधीश यहाँकी प्रशासकीय व्यवस्था १७६० से देखता आ रहा था। इसकी राजनीतिक स्थितियोंसे सम्बद्ध कागज-पत्र जब वाइसरायके सामने रखे गये तो उसने राजा बऽजीडोको पत्र लिखकर पूछा कि ऐसी काररवाइयोंके परिणामके सम्बन्धमें उसने क्या विचार किया है। परन्तु राजाने पत्रका उत्तर ही नहीं दिया।

वास्तवमें बऽजीडो विगत १३ वर्षोंसे वाइसरायके किसी पत्रका उत्तर नहीं देता आ रहा था। कदाचित् उसका मत था कि वाइसरायको ग्रेटब्रिटेनके सम्राट् और उसके (बऽजीडो) बीचमें नहीं आना चाहिये था। यदि सम्राट् और बर्मी राजाके बीच सीधे वार्त्ता चालू होती तो सभी मामलोंका निपटारा शान्तिपूर्ण ढंगसे हो गया होता। अनेक अंग्रेज इतिहासकारोंका कथन है कि कतिपय बर्मी अधिकारी अंग्रेजोंसे यह भी कहते थे कि यदि बंगालका जागीरदार (वाइसराय) बर्मी राजाके समक्ष आकर घुटने टेक दे और बंगालके लिए स्वामित्व स्वीकार कर ले तो सारी परेशानियाँ दूर हो जायँ। इधर बर्मी पक्ष ऐसी धारणाएँ बनाये हुए था और उधर वाइसरायके कानोंमें यह खबर पहुँचायी जा रही थी कि बर्मी फौजने बंगालपर अधिकार करनेका अभियान शुरू कर दिया है। ऐसी परिस्थितियों और धारणाओंके फलस्वरूप १८२४ के जनवरी मासमें बर्मी सेनाने कछारके विक्रमपुर स्थानपर एकाएक आक्रमण कर दिया। जब दूसरे पक्षने ऐसे आक्रमणके कारणकी बाबत इनसे पूछा तो इन्होंने कहा कि

उनके राजाका हुक्म ही ऐसा हुआ था कि हम लोग वसुन्धराके अन्तिम छोरतक आगे बढ़ते ही जायँ। उधर वाइसराय भी उस पत्रके उत्तरकी प्रतीक्षामें था जो उसने शिंमाब्युज्युनपर किये गये बर्मी आक्रमणके सम्बन्धमें लिखा था। उधर बर्मी आक्रमणोंसे त्रस्त अंग्रेजी फौजी टुकड़ियोंका कछार क्षेत्रसे पलायन भी चालू रहा और अन्ततः ५ मार्च, १८२४ को वाइसरायने युद्धस्थितिकी घोषणा कर दी।

युद्धकी घोषणा—सेनानायक महाबंडूल उस समय अराकानमें था। वह रामूके पास यत्र-तत्र बिखरी हुई एक अंग्रेजी सैनिक टुकड़ीपर १७ मईको इस भाँति हावी हुआ कि भयंकर आतंक फैल गया और बर्मी नाम मात्र सुनकर कलकत्तातकके निवासी भागने लगे। महाबंडूलकी अपनी योजना कलकत्तातक जानेकी थी किन्तु वह ऐसा नहीं कर सका क्योंकि ११मईको ही ११,५०० सैनिक अंग्रेजोंकी ओरसे रंगून उतार दिये गये। यहाँ श्वेडगोन पगोडाके चबूतरोंपर बर्मी सैनिक अड्डा बनाये सुरक्षाके लिए बद्धपरिकर थे और उन्होंने यथाशक्ति मुकाबला भी किया परन्तु ब्रिटिश सैनिक संगीनोंकी लड़ाईमें इतने निपुण थे कि बर्मी मुकाबला करनेमें असमर्थ सिद्ध हुए।

यह समाचार सुनते ही महाबंडूल अपनी फौजें लेकर दौड़ा हुआ जब रंगून पहुँचा तो उसने देखा कि अंग्रेज घेरेमें थे। उन्होंने यह उम्मीद लेकर फौजें उतारी थीं कि इनके उतरनेके समय ही तलांइ (मुँ) अवसरसे लाभ उठना चाहेंगे और बर्मियोंके विरोधमें विद्रोह कर देंगे। इधर बर्मियोंको भी तलांइ (मुँ) से सहायताकी आशा थी और इन्होंने बातकी बातमें पास-पड़ोसके सभी गाँवोंको जनहीन बना दिया ताकि ब्रिटिश सेनाको किसी प्रकारकी खाद्य सामग्री न मिल सके। मई मास बर्माके लिए वर्षाऋतुके प्रारम्भका है और इस तरह अंग्रेज हर प्रकारकी विपदासे

आक्रान्त हो गये। एक तो वे निरन्तर वर्षासे परेशान थे, दूसरे दिनके समय ही मुश्किलसे मील-दो-मील इधर-उधर जा सकते और तीसरे रात्रिको भी वे बर्मी सेनाकी गोलाबारीके कारण सो नहीं सकते थे।

इस स्थितिने महाबंडूलको महीनोंका अवसर युद्धकी तैयारी और नव अभियान करनेके लिए दिया परन्तु वह असफल ही रहा। उसकी ३०० में से २४० तोपें हाथसे जाती रहीं और वह पीछे हटकर डनुब्यू चला आया और यहीं १८२५ के मार्च मासमें अंग्रेजी तोपके एक गोलेका निशाना बनकर वीरगतिको प्राप्त हो गया। फिर तो अंग्रेजोंको मुँहमाँगी मुराद मिली और उन्होंने १८२५ के अप्रैल मासमें प्रोमपर तथा १८२६ के फरवरी महीनेमें पगांपर सत्ता स्थापित कर ली।

अंग्रेजोंसे सन्धि—अब राजा बऽजीडो अंग्रेजोंसे सन्धि करनेके लिए विवश हो गया। २४ फरवरी सन् १८२६ को यांडऽवोमें सन्धिपर हस्ताक्षर हुए। इस सन्धिके अनुसार—

(१) राजा बऽजीडोको अराकान और तनासरिम क्षेत्र अंग्रेजोंको दे देने पड़े।

(२) बऽजीडोने १० करोड़ रुपयेका हरजाना भी अंग्रेजोंको देना स्वीकार किया।

(३) अंग्रेजोंको व्यापार करनेकी छूट मिली।

सेनापति महाबंडूल—वीरशिरोमणि महाबंडूलका जन्म मॉनीवा जिलेके डापायीं स्थानमें १७८० के आस-पास हुआ था। वह सौम्य आकृति और तात्कालिक सूझ-बूझका व्यक्ति था। आसामपर किये गये अभियानोंके समय उसने ख्याति अर्जित की। वह सक्रिय रहकर ज्ञान एवं अनुभवोंका अर्जन करनेमें विश्वास रखता था और यही कारण रहा कि उसने ज्योतिषियोंके मतानुसार युद्ध-अभियान प्रारम्भ करनेकी प्रथापर अमल करना

बन्द कर दिया। उसने अपने सैनिकोंको यह आदेश दे दिया था कि युद्धक्षेत्रमें घायल होकर गिरनेवालोंको रौंदा न जाय, यद्यपि तत्कालीन चालू कुप्रथाके अनुसार विजयी पक्ष ऐसा करनेमें अपनी शान समझा करते थे। महाबंडूलके सैनिक गुणोंकी तुलना राजा अलॉंवफयासे की गयी है। उसके सेनापतित्वके अन्तर्गत ६०,००० बर्मी सैनिक थे जिनमेंसे प्रायः आधे बन्दूकोंसे लैस रहते थे। अकाल मृत्युका ग्रास बननेसे थोड़े दिन पहले ही उसे अपनेपर कुग्रहोंकी छाया होनेका तभी निश्चय हो गया था, जब ७ दिसम्बर १८२४ को उसके हाथका वह आयुध, जिसपर वह सर्वदा अभिमान करता आया था, उसके हाथमें अपने आप खण्ड-खण्ड हो बिखर गया।

अपने शासनके शेष वर्षोंमें बऽजीडोने फिर युद्ध नहीं किया। उसने शेष समय साहित्यसर्जनके कार्योंमें लगाया। उसने साहित्यमर्मज्ञोंकी समितिकी भी नियुक्ति की थी, जिसके सदस्य उसके राजमहलमें बैठकर साहित्यसर्जनका कार्य किया करते थे। इस समितिने म्हांनां याज़विंका सम्पादन किया जिसके द्वारा देशका सन् १७५२ तकका इतिहास जाना जा सकता है।

१८३७ के लगभग राजा बऽजीडो पागल हो गया और उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका भाई तायावडी मिं राजगद्दीका उत्तराधिकारी बना।

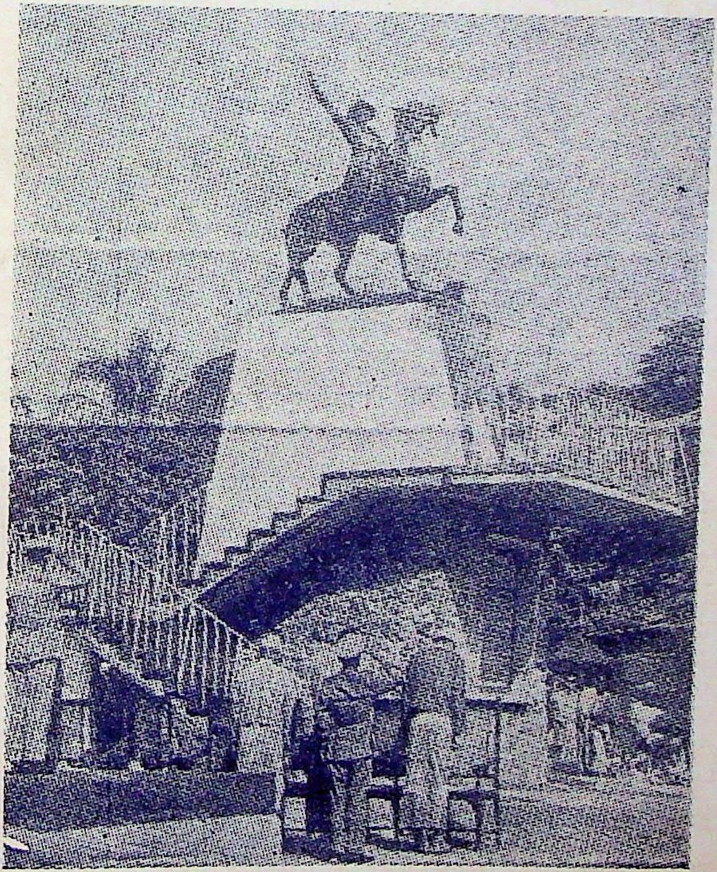

वीरशिरोमणि महाबण्डूलका डनुब्यू-स्थित स्मारक

(पृ० १६६)

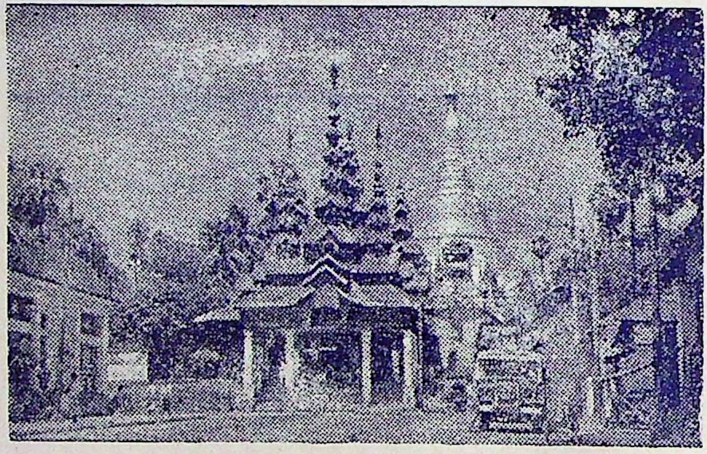

श्वे डगोन पगोडाका मुखद्वार

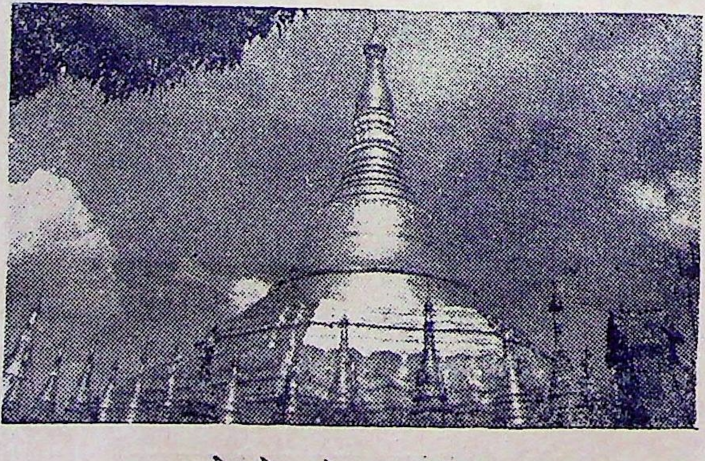

श्वे डगोन पगोडाका ऊपरी भाग

(पृ० १७३)

तायावडी मिं (१८३७-१८४६)

राजा बऽजीडोके देहान्तके बाद उसका भाई तायावडी मिं गद्दीपर बैठा। अपने भाईके राज्यकालमें वह एक सैनिक अधिकारी था और प्रथम बर्मी ब्रिटिश युद्धमें लड़ा था। राजगद्दीपर बैठनेसे पहले तो अंग्रेजोंके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखता था। लेकिन जब गद्दीपर बैठ गया तो उनसे घृणा करने लगा। वह यांडऽबोकी सन्धिकी शर्तोंको माननेसे इनकार करने लगा। राजमहलमें जो ब्रिटिश आवासी प्रतिनिधि (रेज़िडेण्ट) था उसके प्रति वह घृणा रखने लगा। उसने उसे मान्यता देनेसे भी इनकार कर दिया। १८३९ में कर्नल बेन्सन ब्रिटिश आवासी प्रतिनिधिके स्थानपर भेजे गये और उनके साथ ऐसा कटु व्यवहार बर्मी राजाकी ओरसे हुआ कि वह तुरन्त ही वापस चले गये। दूसरे बर्मी-ब्रिटिश युद्धका यह एक अप्रत्यक्ष कारण हुआ। इन्हीं दिनों तायावडी मिंने अपनी राजधानी आवासे हटाकर अमरापुरा स्थानान्तरित किया। राजधानीके इस स्थानपरिवर्तनके कारण अत्यधिक अनावश्यक श्रम एवं व्यय हुआ।

सन् १८४६ के आस-पास बऽजीडोकी भाँति इसमें भी पागलपनकी निशानी दिखाई देने लगी थी और उसका बेटा पगां मिं गद्दीपर बैठा।

पगां मिं (१८४६-१८५३)

तायावडी मिंके पागल हो जानेके कारण उसका बेटा पगां मिं सन् १८४६ में राजगद्दीपर बैठा। यह एक असफल शासक सिद्ध हुआ। इसके कुशासनके कारण प्रजामें अत्यन्त असन्तोष और यातना फैल गयी थी। उसके दो मुसलमान दरबारी आत्मीय मित्र थे। उन्होंने पगां मिंको कुछ ऐसा प्रभावित किया कि वह लोगोंको कत्ल करानेपर तुल गया। लगभग ६ हजार आदमी मार डाले गये। इससे पगां मिं जनकोपका भाजन बन गया और प्रजाका सहयोग खो बैठा। विविध जिलोंकी शासन-व्यवस्था देखनेके लिए जो राज्यपाल नियुक्त थे, वे प्रशासकीय कार्योंमें धाँधली करने लगे। साम्राज्यमें ऐसा कुशासन फैल जानेके कारण रंगूनके राज्यपालने उससे अनुचित लाभ उठाना चाहा। उसने निजी लाभके लिए अंग्रेजोंका दमन करना शुरू कर दिया। यह कार्य १८५२ में होनेवाले बर्मी-ब्रिटिश युद्धका विशेष एवं प्रथम कारण बना, यद्यपि इस युद्धके कारणोंपर प्रकाश डालते हुए इतिहासकारोंने निम्नलिखित घटनाओंका उल्लेख किया है—

(१) राजा तायावडी मिंने यांडऽबोकी सन्धिको तोड़ दिया था। उसने ब्रिटिश दूत कर्नल बेन्सनके प्रति दुर्व्यवहार किया था और सन् १८४१ से ही ब्रिटिश आवासी प्रतिनिधिके अधिकारोंकी उपेक्षा की जाने लगी थी। इस प्रकार बर्मी राजाके इन व्यवहारोंके कारण अंग्रेज क्षुब्ध हो गये थे।

(२) तायावडी मिंके पश्चात् जब पगां मिंने शासन-सत्ता हाथमें ली तो सम्पूर्ण प्रशासकीय-व्यवस्था ही दूषित हो गयी। इस कुशासनसे लाभ उठाकर उसके राज्यपाल प्रायः

स्वच्छन्द बन गये और अनुचित लाभ उठाने लगे। रंगूनके राज्यपालने तो अत्यधिक अनुचित लाभ उठाना प्रारम्भ कर दिया। वह यहाँके अंग्रेज व्यपारियोंके साथ ऐसा दुर्व्यवहार करने लगा कि वे भारतस्थित ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजीके पास शिकायतें भेजनेको विवश हुए। जब लार्ड डलहौजीको स्थितिका पता चला तब उन्होंने राजा पगां मिंको स्थितिमें सुधार करनेको लिखा। पगां मिंपर इसका कोई असर नहीं पड़ा। उसके बाद ब्रिटिश गवर्नर जनरलकी ओरसे अन्तिम चेतावनी भी भेजी गयी लेकिन तो भी बर्मी राजाने कोई कान नहीं दिया बल्कि रंगूनके राज्यपालने एक ब्रिटिश माल जहाजपर गोलीवर्षा भी कर दी। इस गोलीकाण्डने १८५२ के युद्धकी सुलगती आगको भड़कानेमें घृतका कार्य किया और संग्राम छिड़ ही गया।

ब्रिटिश सेना मउट्टमऽके पास उतरी और उसने शीघ्र ही उसपर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इसके बाद उसने रंगूनपर आक्रमण किया। रंगूनका राज्यपाल मुकाबलेके लिए तैयार नहीं था इसलिए कुछ दिनोंमें ही उसने भी ब्रिटिश सेनाके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। वर्षके अन्ततक प्रोम और पेगूपर भी अंग्रेजोंने अपना अधिकार कर लिया। अब पगां मिं सन्धि-सुझाव भेजनेके लिए विवश हुआ। लेकिन किसी प्रकारकी शांति-सन्धि सम्पन्न नहीं हुई। अंग्रेजोंने एक मसविदा भर भेजा था और इन स्थानोंपर कब्जा कर लिया। इस युद्धके पश्चात् ही पगां मिं भी पागल हो गया, और उसका भाई मिंडोन मिं गद्दीपर बैठा। उसने पगां मिंको उसकी मृत्युपर्यन्त अपने राजमहलमें पूर्ण सम्मानपूर्वक एकान्त वासमें रखा।

मिंडऊ मिं (१८५३-१८७८)

राजा पगां मिंके १८५३ में पागल हो जानेके बाद मिंडऊँ मिं उसी वर्ष गद्दीपर बैठा। यह पगां मिंका भाई था और उसकी मृत्युपर्यन्त उसे आदरपूर्वक शाही महलमें ही रखा। मिंडऊँ मिं बहुत ही ऊँचे चरित्रका व्यक्ति था। उसे प्राचीन परम्पराओंके प्रति अनुराग था। विदेशी राजदूतोंके दरबारमें आगमनके उपलक्ष्यमें होनेवाले उत्सवोंमें सुधार लानेका एक बार उसे सुझाव दिया गया था, लेकिन उसे यह कहकर कि "परम्परा बदली नहीं जाती" ठुकरा दिया। वह एक शान्तिप्रिय शासक था। गद्दीनशीन होनेके बाद ही मिंडऊँ मिंको द्वितीय बर्मी-ब्रिटिश युद्धकालकी सन्धिपर ध्यान देना पड़ा। वह पेगू प्रान्तको हाथसे नहीं जाने देना चाहता था। इसलिए उसने एक दूत कलकत्ता भेजकर ब्रिटिश सरकारके समक्ष पेगू वापस करनेकी माँग रखी। लेकिन गवर्नर जनरलने इसे अस्वीकार कर दिया। फलतः मिंडऊँ मिंको पेगू छोड़ देनेके लिए विवश होना पड़ा। वर्माके निचले भागपर विदेशी सत्ता उसे बर्दाश्त नहीं थी और इससे वह व्यथित रहा करता था। उसने निश्चित किया था कि वह किसी-न-किसी दिन उस भागको वापस लेकर रहेगा। इस निश्चयके कारण ही उसने एक सुनियन्त्रित सरकारका संचालन प्रारम्भ किया। वह अपने शासनकालमें साम्राज्यकी उन्नतिके लिए एक-न-एक नया नियम लागू ही करता रहा।

मिंडऊँ मिंका शासनकाल उसके विविध सुधारोंके लिए स्मरण किया जाता है। वह प्रजाके हितके कार्योंमें ही अपना अधिकाधिक समय बिताता रहा। उसने सुशासन बनाये रखनेके

साथ ही शासनका सूत्र भी अपने ही हाथोंमें रखा। १८५७ में राजा मिंडऊँकी इच्छा राजधानी अमरापुरासे हटाकर मांडलेमें स्थापित करनेकी हुई। इस कार्यको पूरा करनेमें लगभग तीन वर्ष लग गये।

सिक्कोंका प्रचलन : आर्थिक सुधार—१८६१ में इसने सिक्केका प्रयोग किया। यह पहला अवसर था जब बर्मामें सिक्कोंका प्रचलन हुआ। इससे पूर्व वस्तुविनिमयके आधारपर व्यापार चला करता था। वस्तुएँ कम करनेके लिए ताँबा अथवा चाँदी वजन करके दे दी जाती थे। मिंडऊँ मिंके शासनकालमें इन धातुओंसे सिक्के बनाकर दिये जाने लगे। इस तरह सिक्कोंके प्रयोगका श्रीगणेश हुआ।

राजा मिंडऊँ मिं अपना बहुत अधिक समय कर निश्चित करनेमें लगाता रहा। प्राचीन नियमसे किसीको पता नहीं चलता था कि उसे क्या कर देना पड़ेगा। राज्यपालोंकी इच्छापर यह बात निर्भर रहती थी। कभी-कभी वे निश्चित करको बेहद बढ़ा दिया करते थे। इसलिए उसने तट्टमेडऽ नामक एक कर जारी किया जो प्रत्येक १० घरोंपर एक सौ रुपयेकी दरसे लगाया जाता था। जिलोंके अधिकारियोंको कर लगानेका अधिकार नहीं था। इस नये विधानके अनुसार सभी कर शाही महलके खजानेमें देने पड़ते थे। वहाँ एक कोषाध्यक्ष बैठता था जो कर-वसूलीका ही काम देखता था। उसे राजाकी ओरसे वेतन दिया जाता था।

बोडोफयाके समयमें जो एकाधिकारका तरीका चालू था उसे मिंडऊँ मिंने फिरसे लागू किया। उसने इस नियमको बहुत महत्त्व दे रखा था, तो भी अंग्रेज अपने लिए कुछ रियायत लेकर रहे। इस रियायतके लिए बर्मी राजाको ब्रिटिश-साम्राज्यके देशोंसे कुछ हथियार खरीदनेकी छूट मिली थी और सन् १८७२ में किंवुन मिंजिनके नेतृत्वमें एक शिष्टमंडल यूरोपीय देशोंके भ्रमणके लिए

इसी कामके सिलसिलेमें गया। उन लोगोंने फ्रांसीसी सरकारके साथ एक समझौता भी किया लेकिन मिंडऊँ मिंको यह पसन्द नहीं आया। फलस्वरूत समझौता रद कर दिया गया।

१८६९में स्वेज नहर खुल जानेसे निचले बर्माकी व्यावसायिक स्थितिमें आशातीत सुधार हुआ और ऊपरी बर्माके निवासी इस भागमें आकर बसने लगे। यह बात मिंडऊँको पसन्द नहीं आयी और उसने लोगोंके ऐसे प्रव्रजनपर रोक लगा दी।

सांस्कृतिक तथा धार्मिक नीति--देशकी शिक्षामें सुधारके लिए भी मिंडऊँ मिं दूसरे देशोंकी शिक्षा-पद्धतियोंको जाननेके लिए जिज्ञासु रहा करता था। इसीलिए उसने अनेक शिष्टमंडल विदेशोंको भेजे। सन् १८७२ में जो शिष्टमण्डल किंबुन मिंजिनके नेतृत्वमें यूरोप गया था वह ब्रिटेन, फ्रांस और इटलीके अतिरिक्त अन्यान्य अनेक यूरोपीय देशोंका भी भ्रमण करके वापस आया। जब वह शिष्टमण्डल वापस आ गया तो उसके सभी सदस्योंकी इच्छा बर्मी युवकोंको विभिन्न विषयोंके प्रशिक्षणके लिए यूरोपीय देशोंमें भेजनेकी हुई।

मिंडऊँके शासनकालमें साहित्यिक कार्योंमें भी काफी प्रगति हुई। उसके समयमें बहुत-से साहित्यकार थे। उनमें सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त अपऊँ ञाऽ था। वह गद्य और पद्य दोनों लिखता था। मिंडऊँ मिंने उसे 'साहित्यमनीषी'की उपाधि देनेके साथ ही मिंजान जिलेमें कुछ जमीन भी पुरष्काररूपमें दी थी। उसकी सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त कृतियाँ 'वडऊँमा विज़या', 'यटना नाडी' और 'योडयानाइं' हैं। उसकी अन्य सुविख्यात कृति 'म्होकुँ' है जिसमें १८५४ में स्यामी फौजके केंगतुंगपर किये गये आक्रमणको बर्मी फौज द्वारा विफल करनेका उल्लासपूर्ण वर्णन किया गया है।

माण्डलेमें जो ईसाई धर्मप्रचारक रहते थे उनके प्रति मिंडऊँ

मिं उदार और सहिष्णु प्रवृतिसे काम लेता था। वह माण्डले स्थित गिरजाघरोंके सहायतार्थ रुपये और भूमि देता था। यहाँतक कि अपने पुत्रोंको भी एक अंग्रेजी स्कूलमें पढ़नेके लिए भेजता था।

अपने पूर्वपुरुषोंकी भाँति मिंडऊँ मिं धर्मपरायण और साधुवृत्तिका शासक था। १८७१ में उसने २ हजार ४०० भिक्षुओंका एक सम्मेलन राजधानीमें बुलाया। वे साम्राज्यके सभी भागोंसे आये। बौद्ध भिक्षु यहाँ कई दिनोंतक रहे और बौद्ध आदर्शों, सिद्धान्तों तथा धर्मग्रन्थों सम्बन्धी विचारविनिमय करते रहे। अन्ततः उन भिक्षुओंने ७२९ शिलाखण्डोंपर सम्मेलनकी काररवाइयोंको खुदवाया। इन शिलाखण्डोंको कुदोडो फयामें रखा गया। इस प्रकार मिंडऊँ मिंका पाँचवें महासंघायनाके संयोजनकी भी उपाधि मिली। संघायनाका कार्य समाप्त हो जानेके पश्चात् मिंडऊँ मिंने श्वेडगोन पगोडाके लिए एक मीनार भेजी। इसका ४७ फुट ऊँचा लोहेका ढाँचा ठोस सोनेके पत्रोंसे मढ़ा हुआ रत्नजटित था। इसका मूल्य ६ लाख रुपये था। वहाँकी पुरानी मीनार हटा दी गयी और उसके स्थानमें इसकी उल्लासपूर्वक स्थापना की गयी।

जीवनके ६४ वें वर्षमें मिंडऊँ मिं पेचिशसे पीड़ित होकर बीमार पड़ा। उसने अपना उत्तराधिकारी घोषित करनेके लिए जो आदेश भेजा था वह दबा रखा गया जिसके परिणामस्वरूप उसका एक छोटा बेटा तीबॉ मिं गद्दी पर बैठा जिसका वास्तविक हक नहीं था।

तीबॉ मिं (१८७८-१८८५)

राजा मिंडऊँ मिंने मृत्युसे पहले अपने उत्तराधिकारविषयक जो आदेश जारी किया था वह प्रकाशमें नहीं आ पाया, इसलिए उसका बड़ा लड़का गद्दीका मालिक न बनकर छोटे बेटोंमेंसे एक तीबॉ मिं राजगद्दीपर बैठा।

राजसिंहासनपर बैठते ही तीबॉको अनेक प्रतिद्वन्द्वियोंके षड्यन्त्रोंका सामना करना पड़ा। इसलिए उसने शीघ्र ही एक आदेश जारी कर उन सभी व्यक्तियोंके कत्लका हुक्म दे दिया जो सिंहासनके अधिकारकी माँग कर रहे थे। इस प्रकार एक बृहद् और भयावह हत्याकाण्डके बाद तीबॉ निरापद राज्य करने लगा। परन्तु इस नरसंहारने उसे बहुत ही अप्रिय बना दिया। प्रजा उसकी सत्ता तो निर्विरोध स्वीकार करने लगी परन्तु त्रस्त होकर—श्रद्धा एवं स्नेहवश नहीं।

सिंहासनपर अधिकार बतानेवाले राजकुमारोंकी जब हत्या की जा रही थी तो उनमेंसे दो जान बचाकर भाग निकले थे। एक तैयटम्योंमें और दूसरा शां राज्यमें जाकर छिपा था। इन्होंने उन क्षेत्रोंमें राजद्रोह शुरू कर दिया था लेकिन उनका दमन कर दिया गया और दूसरी बार फिर भयंकर नरसंहार शुरू हुआ। यह १८८३ की बात थी और तबसे तीबॉ मिंका प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह गया।

तीबॉ नामके लिए ही राजा था। सम्पूर्ण राज्यकार्य उसकी सास और रानियोंके हुक्मपर चलता था। इसके परिणामस्वरूप देशमें अराजकता और उच्छृंखलताकी स्थिति पैदा हो गयी। सम्पूर्ण साम्राज्य कुशासित हो गया। अधिकांश परिवार सुरक्षा और

शरणके लिए ऊपरी बर्मासे निचले बर्मामें आ गये। राजाकी सैनिक टुकड़ियोंपर भी आक्रमण होते रहते थे। इस विषम स्थितिके फलस्वरूप राज्यकी आयमें भी बहुत कमी हो गयी। इसकी पूर्तिके लिए उसने एकाधिकारकी प्रथा चालू की। लेकिन देशकी बिगड़ी हुई स्थितिके कारण यह प्रथा लाभकर सिद्ध नहीं हुई। वस्तुओंके मूल्यमें बेहद वृद्धि हो गयी और व्यापार नष्ट-सा हो गया। १८८५ में तीबॉने फ्रांसीसियोंके साथ एक सन्धि की। इस सन्धिके अनुसार फ्रांसीसियोंको माण्डलेमें एक बैंक स्थापित करनेका अधिकार मिला, जिस बैंकसे बर्मी राजा १२ प्रतिशत सूद-की दरसे रुपये ऋणमें ले सकता था और फ्रांसीसी, माणिक्की खानों और चायके उत्पादनोंपर अधिकार रख सकते थे। इसके अतिरिक्त वे टाकिंगसे माण्डलेतक रेलवे लाइन भी तैयार कर सकते थे।

सम्पूर्ण राज्यमें असन्तोष फैला था। कछिन् और शां प्रदेशोंमें विद्रोह चालू थे। राजवंशीय सभी लोगोंको कत्ल करा देनेके कारण राजा तीबॉको प्रजा घृणाकी दृष्टिसे देखती थी। ऊपरी बर्मासे भाग-भागकर बर्मी परिवारोंका पेगू आकर बसना राज्यकी आमदनीको बहुत धक्का पहुँचा चुका था। इस प्रकार प्रजा तो राजा तीबॉके साथ असहयोगता कर ही रही थी, फ्रांसीसियोंके साथ किये गये समझौतेने अंग्रेजोंको भी क्षुब्ध बना दिया। जो युद्ध १८८५-८६ में हुआ, शायद टलता ही जाता, लेकिन एकाएक बॉम्बे-बर्मा ट्रेड कार्पोरेशनके साथ मतभेद पैदा हो जानेके कारण यह नहीं टल सका। सन् १८८५ में राजा तीबॉने बाम्बे बर्मा ट्रेड कार्पोरेशनके संचालकोंपर यह दोषारोपण करके जुर्माना किया कि उन्होंने सागौनकी लकड़ियाँ बेचनेमें अनियमिततासे काम लिया था। संचालकोंने जुर्माना देनेसे इनकार किया और इसपर तीबॉने उन्हें बन्दी बना लेनेका

आदेश जारी कर दिया। इन अंग्रेज संचालकोंके बन्दी बनाये जानेका समाचार जब भारतस्थित ब्रिटिश वाइसरायको मिला तो उसने २२ अक्तूबर १८८५ को राजा तीबॉको शान्तिपूर्ण निपटारेके लिए लिखा। परन्तु वाइसरायका सुझाव तीबॉके कतिपय विवेकहीन दरबारियोंने नहीं मानने दिया! किंवुन मिंजिन जैसे व्यक्तिने भी, जो विदेशोंका भ्रमण कर चुका था, उसे समझाया, परन्तु उसकी एक न चली। फलस्वरूप तृतीय बर्मी-ब्रिटिश युद्ध छिड़ गया।

तृतीय बर्मी ब्रिटिश युद्धका परिणाम—युद्ध प्रारम्भ होनेके १४ दिनों के बाद ब्रिटिश सेना माण्डलेके शाही महलमें प्रवेश कर गयी और १ जनवरी १८८६ को ऊपरी बर्मा भी ब्रिटिश शासनमें मिला लिया गया। राजा तीबॉ बम्बईके पासके रत्नगिरि नामक स्थानमें निर्वासित कर दिया गया जहाँ वह मृत्युपर्यन्त १९१६ ई० तक रहा।

ऊपरी बर्माके भी ब्रिटिश सत्ताके अन्तर्गत आ जानेकी औपचारिक घोषणा तो १२ जनवरी, १८८६ से कर दी गयी और प्रशासकीय कार्य सुव्यवस्थित रीतिसे चलानेके उद्देश्यसे अंग्रेजोंने राजा तीबॉ मिंके दरबारके कतिपय उच्चस्तरीय अधिकारियोंको भी नियुक्त कर लिया किन्तु अनेक वर्षोंतक स्थितिपर पूर्ण रूपसे काबू नहीं किया जा सका। एक-न-एक क्षेत्रमें १८९५ ई० तक विद्रोह चलते ही रहे। जिन राजदरबारी अधिकारियोंको अंग्रेजोंने प्रशासकीय कार्योंके लिए नियुक्त किया था उनमें किंबुन मिंजिन और ऊ पे सीके नाम विशेष रूपसे ऊल्लेख्य हैं। ऊ पे सी माण्डले शहरके राज्यपाल नियुक्त किये गये थे।

सन् १९१६ में महाराजा तीबॉ मिंके दिवंगत हो जानेके पश्चात् भी उनके वंशज रत्नगिरिमें ही रहते आ रहे हैं। उन्हें समय-समयपर अब भी कुछ सरकारी सहायता मिलती रहती है।

सन् १९६१ के अगस्त मासमें बर्मा सरकारसे प्राप्त ५,००० रुपयेका एक चेक दिल्ली स्थित बर्मी राजदूत डॉ० खिन चीने बम्बईके राज्यपाल महामहिम श्री श्रीप्रकाशको भेजा था जिसे राज्यपाल महोदयने रत्नगिरिके जिलाधीशके पास तीबॉके वंशजोंको सुपुर्द करनेके लिए भेजा था।

सन् १९५८ में महामहिम श्री श्रीप्रकाशके रत्नगिरिके दौरेके समय तीबॉकी पौत्री श्रीमती बयासु शंकर पवार और प्रपौत्री श्रीमती नलिनी विश्वनाथ भोसलेने उनसे सहायताकी माँग की थी। परिणामस्वरूप श्री श्रीप्रकाशने उनके निमित्त ३००० रुपयेकी सहायता सन् १९५९ में भारत सरकारसे प्राप्त की तथा १९६० के नवम्बर मासमें बर्माके प्रधान मन्त्री ऊ नुने जब दिल्ली यात्रा की थी तो उनका ध्यान भी इस ओर आकृष्ट किया जिसके फलस्वरूप उन्हें ५,००० रुपयेकी सहायता बर्मा सरकारकी ओरसे भेजी गयी।

भारत-बर्मा उत्प्रवासन समझौतेकी पृष्ठभूमि

ग्रेट ब्रिटेनकी सरकारकी ओरसे भेजे गये 'साइमन कमीशन'-का सन् १९२८ का भारत-बर्माका दौरा विश्वप्रसिद्ध है। यह 'कमीशन' दोनों देशोंकी तत्कालीन राजनीतिक स्थितियोंकी जानकारी करनेके लिए भेजा गया था।

उस समयतक भारतमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको जन-जागरण एवं ब्रिटिश सत्ताके विरुद्ध कार्य करते हुए ४० वर्षोंसे अधिक हो चुके थे। प्रथम विश्वयुद्धमें, जो १९१४ से १९१९ तक चालू रहा, ब्रिटिश सरकार द्वारा किये गये वादोंको पूरा करने, १३ अप्रैलके जालियानवाला काण्ड और महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलनके परिणामस्वरूप भारतमें ब्रिटिश सत्ता विरोधी एक ऐसी आँधी चल चुकी थी कि 'कमीशन'का देशव्यापी विरोध हुआ।

बर्मामें भी नवजागरणकी लहर उत्पन्न हो चुकी थी और स्वातन्त्र्य-संग्राम छिड़ चुका था। उसे अग्रसर रखनेका अमर सन्देश देते हुए १६६ दिनोंके उपवासके बाद सन्त ऊ विज़ारा अपनी इहलीला ही समाप्त कर चुके थे। और साइमन कमीशनका यहाँ भी विरोध हुआ किन्तु उस उग्र स्तरपर नहीं जैसा भारतमें हुआ था। दौरेसे वापस होकर कमीशनने जो रिपोर्ट ब्रिटिश सरकारको दी थी उसमें यह भी एक प्रस्ताव था कि "बर्माको भारतसे अलग कर दिया जाय, क्योंकि इसीमें ब्रिटेनकी सरकारका हित है", ऐसा इतिहासकारोंका मत है। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार बर्माको भारतसे अलग रखनेके सोच-विचारमें तो तभीसे

लग गयी थी किन्तु ऐसा करनेकी यथार्थता सिद्ध करनेके निमित्त उसे यथेष्ट पृष्ठभूमि नहीं मिल रही थी।

दोनों देशोंकी सरकारोंकी ओरसे प्रकाशित संयुक्त विज्ञप्ति इस प्रकार है—सन् १९३८ के दंगेकी जाँचके लिए आदरणीय विचारपति ब्राण्डकी अध्यक्षतामें संघटित समितिने ३८के अन्त और ३९ के प्रारम्भमें जो दो प्रतिवेदन सरकारके समक्ष प्रस्तुत किये थे उनका सारांश यह था कि बर्मामें भारतीयोंके अबाधित प्रवेशसे बर्माके आदिवासियोंके मनपर इस प्रकारका गम्भीर प्रभाव पड़ने लगा है कि इस देशमें बेकारी तथा कम नौकरी मिलनेका कारण भारतीयोंका अबाधित आगमन ही है। उनके मस्तिष्कपर पड़ी ऐसी धारणाके रहस्यको पूर्ण रूपसे समझनेके लिए "ब्राण्ड समिति"ने आम जनताकी भावनाओंकी जाँचकी सिफारिश की थी।

इसी आधारपर तत्कालीन बर्मी सरकारने १५ जुलाई, १९३९ के दिन स्वीकृत प्रस्तावके अनुसार हिन्द सरकारके साथ विचारविनिमय करके आदरणीय श्री जेम्स बेक्स्टरको भारतीय उत्प्रवासनके प्रश्नपर विचार करनेके लिए नियुक्त किया था। वे इस गुरुतर भारका सम्पादन सफलतापूर्वक कर सकें, इस निमित्त ऊ रिन ठुट, आई. सी. एस. तथा श्री रतिलाल देसाई एम. ए. उनके सलाहकार नियुक्त किये गये थे। श्री बेक्स्टरने अक्तूबर १९४० में अपना प्रतिवेदन बर्मा सरकारको दिया। उस प्रतिवेदनमें जो सिफारिशें थीं उनपर दोनों सरकारोंने काफी छान-बीनकर विचार किया और उसमें अंकित शर्तोंको समझौता करनेके लिए अनुकूल माना था। तदनुसार बर्मा सरकारने भारत सरकारको आमन्त्रित किया था कि वह अपना एक प्रतिनिधिमण्डल भेजे। यह आमन्त्रण भारत सरकारको मान्य होना स्वाभाविक था और उसने अपना प्रतिनिधिमण्डल भेजनेकी स्वीकृति दे दी।

परिणामस्वरूप उन देशोंके प्रतिनिधि अधिकारियोंने वार्ता प्रारम्भ की और वे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि एक-न-एक ऐसा समाधान ढूँढ़ निकालना परमावश्यक है जिससे एक ओर तो इस देशके आदिवासियोंके मस्तिष्कमें बैठी हुई उपर्युक्त दुर्भावनाका दमन हो सके और दूसरी ओर यहाँ निवास करनेवाले भारतीयोंके हितोंकी रक्षाकी व्यवस्था की जा सके।

इस निष्कर्षपर पहुँचनेके बाद जो समझौता सम्पन्न हुआ उसकी शर्तें निम्नलिखित हैं—

(१) बर्मा सरकार द्वारा स्वीकृत सन् १९३५ के अधिनियमके अनुसार उसे यह अधिकार प्राप्त हो चुका था कि इस देशमें जनसंख्या कितनी रहे, इसका निश्चय वह स्वयं कर सके।

(२) उन भारतीयोंको भी जिन्होंने बर्माको अपना स्थायी आवास-स्थान बना लिया है, वे सभी अधिकार प्राप्त हों जो यहाँके आदिवासियोंको सुलभ हैं।

बर्मा और भारतकी निकटतम भौगोलिक स्थिति, इनकी प्राचीनतम सांस्कृतिक एवं धार्मिक एकता और राजनीतिक सम्बन्धोंको ध्यानमें रखते हुए इमिग्रेशन (उत्प्रवास) कानूनकी धाराओंको व्यावहारिक रूप देना कठिन कार्य है। अतएव दोनों देशोंकी सरकारोंके प्रतिनिधियोंने इमिग्रेशन समझौतेकी शर्तोंको निश्चित करते हुए उपर्युक्त समस्याकी गम्भीरताको ध्यानमें रखा ताकि इन शर्तोंको लागू किये जानेके समय भी दोनों देशोंके बीच मैत्रीपूर्ण वातावरण बना रहे।

'इण्डो बर्मा इमिग्रेशन एग्रीमेण्ट'
(भारत-बर्मा उत्प्रवासन समझौता)

यह समझौता व्यवहृत होनेके समयमें किसी प्रकारका विवाद न उपस्थित हो एतदर्थ इसमें निम्नलिखित शर्तें निहित की गयीं—

(१) इस समझौतेके अनुसार जो यहाँ रहनेका अधिकारी होगा उसके आश्रित निम्नलिखित व्यक्ति ही माने जायँगे—

(क) बसनेवाले पुरुषकी औरत।

(ख) उसके अपने और उसकी औरतके माता-पिता।

(ग) उसकी लड़की अथवा लड़कीकी लड़की (नतिनी) चाहे वह कुमारी हो अथवा विधवा या तलाक लिये हुए।

(घ) उसका या उसकी औरतका पुत्र अथवा (पौत्र) पोता जो १८ सालसे कम उम्रका हो या १८ सालसे ज्यादा उम्रका हो लेकिन किसी शारीरिक या अन्य असमर्थताके कारण परावलम्बी बनकर रहता हो। भारतमें बसनेवाली सभी प्रजा, वह चाहे ब्रिटिश शासनके अन्तर्गत हो अथवा स्वायत्तसत्ताप्राप्त देशी राजाओं द्वारा प्रशासित की जा रही हो, भारतीय मानी जायगी।

(ङ) काम—सादा काम—कारीगरी (कुशलता) का काम। अनिपुणताके काम, कुली, मजदूरों, मालगाड़ियाँ खींचनेवाले, बस्ता उठानेवाले, लंचा खींचनेवाले या ऐसा काम करनेवाला जिसे मजदूर कहा जाएगा, जिसकी व्याख्या इण्डियन इमिग्रेशन एक्ट १९२२ की धारा २ के अनुसार मान्य है।

(२) बर्मा सरकारने १९३७ के इमिग्रेशन कानूनके अनुसार भारत सरकारको जो यह नोटिस दिया था कि सन् १९४२ की की १ अप्रैलसे इमिग्रेशन आदेश बन्द कर दिया जायेगा, उसे वापस ले लिया और अब उसकी अवधि १ अक्तूबर १९४५ तककी कर दी।

(३) बर्मामें भारतीयोंके प्रवेशपर निम्नलिखित नियमोंके अनुसार १ अक्तूबर, '४१ से रोक शुरू कर दी जायगी।

(४) बर्मामें प्रवेश पानेके लिए पासपोर्टका होना अनिवार्य माना जायगा, बिना पासपोर्टके कोई प्रवेश नहीं पा सकेगा।

(५) पासपोर्टपर बर्मा सरकारकी प्रवेश अनुमतिकी मुहर लगे बिना कोई भारतीय बर्मामें दाखिल नहीं हो सकेगा।

(६) १. बर्मा सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों एवं नियमोंके अनुसार भारत सरकारकी ओरसे नियुक्त अधिकारीगण, यात्री अथवा बर्माकी शिक्षण-संस्थाओंमें शिक्षाके लिए आनेवालोंके पासपोर्टपर विसा दिया जा सकता है।

२. एक भारतीय यात्रीके पासपोर्टपर केवल ३ मासका विसा दिया जायगा और यदि यात्री और रहना चाहेगा तथा बर्मा सरकारसे अनुमति प्राप्त होगी तो भी वह १२ महीनोंसे अधिकके लिए अनुमति नहीं पा सकेगा।

३. यात्रियोंके विसा (द्रष्टांक) के लिए २०) रुपये फीस ली जायगी। लेकिन यदि ३ माससे अधिक समयतक भी रहना चाहेगा तो उसे अलग फीस देनी पड़ेगी और बर्मा सरकारसे अनुमति भी प्राप्त करनी होगी।

४. एक विद्यार्थीका विसा ५ वर्षोंतकका वैधानिक माना जायगा।

५. विद्यार्थियोंको विसा निःशुल्क दिया जायगा।

प्रवेशकी अनुमति—(७) १. इस समझौतेकी धाराओंमें अंकित शर्तोंको पूरा करनेवाले ही भारतीय बर्मामें प्रवेश पा सकेंगे और इनके अतिरिक्त वही आ पायेंगे जो निम्नलिखित शर्तोंको पूरा करनेवाले होंगे—

(क) जिनको "ए" श्रेणीकी अनुमति प्राप्त हुई हो वे बर्मामें अनिश्चित समयतक रह सकेंगे तथा नौकरी भी कर सकेंगे। साथ ही वे बर्माको अपना स्थायी आवास-स्थान भी बना सकेंगे।

(ख) यात्राके लिए आनेवालोंको निश्चित समयतक ही "बी" परमिटके अनुसार रहनेकी आज्ञा होगी और उतनी ही अवधितक वे नौकरी भी कर सकेंगे। ऐसी स्थितिमें उनके आवास-

अधिकार आदिका प्रश्न ही नहीं उठता। "बी" परमिटके अनुसार प्रवेश करनेवालोंके रहनेकी अवधि केवल ३ वर्षोंतकके लिए रहेगी। इस अवधिको बढ़ानेका अधिकार बर्मा सरकारको ही होगा। इस वृद्धिकी भी सीमा होगी। अधिकसे अधिक ९ वर्षों-तक, पहलेके ३ वर्षोंको मिलाकर ही अवधि बढ़ सकेगी, अर्थात् ऐसे व्यक्तिको ९ वर्षोंसे अधिक समयतक रहनेकी अनुमति बर्मा सरकार नहीं देगी। इस "बी" परमिटके अनुसार आनेवाला यदि "ए" परमिट प्राप्त करना चाहे तो उसे उसके लिए निश्चित रीतिसे आवेदन करना पड़ेगा।

२. इस समझौतेके नियमों, उपनियमोंको ध्यानमें रखकर ही बर्मा प्रवेश की अनुमति दी जायगी और यदि भारत सरकारसे परामर्श करके बर्मा सरकार कुछ नये नियम और उपनियम लायेगी तो उनपर भी अमल किया जायगा। परन्तु समझौतेके मूलभूत सिद्धान्तोंको तो हर हालतमें दृष्टिकोणमें रखा जायगा।

(८) १. "ए" परिमिट देनेका अधिकार बर्मा सरकारको ही होगा और वह उसीको यह परिमिट देगी, जिसकी आर्थिक स्थिति अच्छी होगी, ताकि वह बैठकर भी अपना निजी व्यय सँभाल सके तथा चारित्रिक दृष्टिसे भी बर्मामें रहने देने योग्य हो।

२. निश्चित समयके अन्तर्गत इमिग्रेशन बोर्डसे परामर्श लेनेपर यदि बर्मा सरकारको अनुकूल प्रतीत होगा, वह "बी" परमिट दे सकेगी।

३. बर्मा भ्रमणके लिए आनेवाले विदेशी पर्यटक तथा छात्र कितनी संख्यामें आ सकते हैं इसका निश्चय करनेका अधिकार बर्मा सरकारको ही होगा।

४. आश्रितोंको दी जानेवाली अनुमतिकी अवधि मूल परमिट प्राप्त व्यक्तिको मिली अवधिके बराबर होगी।

(९) १. "ए" या "बी" परमिटके अनुसार अनुमति प्राप्त कर बर्मा-प्रवेश करनेवालोंको आनेके समय ही लिखित रूपसे यह देना पड़ेगा कि उनके आश्रितजनोंकी क्या संख्या होगी या है।

२. इस नियमके अनुसार आवेदन करनेवालेके आश्रितोंको भी वही परमिट मिलेगी जो आवेदकको समझौतैकी प्रथम धाराकी उपधारा "ए" के अनुसार मिली है।

३. प्रवेश अनुमति प्राप्त करके आनेवाला व्यक्ति पहले आवेदनमें उल्लिखित आश्रितोंके अतिरिक्त अन्य आश्रितोंको भी लाना चाहेगा तो इसकी स्वीकृति देनेका अधिकार बर्मा सरकारको ही होगा।

परतन्त्रता और स्वातन्त्र्य-संघर्ष

अंग्रेजोंने अन्तिम राजा तीबॉको सन् १८८५ में माण्डलेके शाही महलमें बन्दी बनाकर सम्पूर्ण बर्मापर कब्जा कर लेनेकी घोषणा कर दी और तीबॉको भारत लाकर रत्नगिरिमें रखा, जहाँ वे मृत्युपर्यन्त सन् १९१६ तक रहे। इसके बाद लगभग १२ वर्षोंकी अवधिमें कोई राजनीतिक अथवा सामाजिक हलचल या किसी संस्थाके निर्माणका उल्लेख नहीं पाया जाता। सन् १८९७ में "शासनादारा सोसाइटी"का संघटन मौलमीनके ऊ श्वे ज्विन नामक एक प्रतिभाशाली बर्मीने किया। इस सोसाइटीका उद्देश्य बर्मी जनताका शैक्षियक और सामाजिक जागरण करना था। उसके बाद सन् १९०४ में—कॉलेजके छात्रोंने "रंगून कॉलेज बुद्धिस्ट एसोसियेशन"की स्थापना की और उसके बाद "दी यंग मेन्स बुद्धिस्ट एसोसियेशन" नामक उस महत्त्वपूर्ण संस्थाका जन्म हुआ जिसके नेता, ऊ मांगजी थे, जो आगे चलकर सर मांगजी हुए और ब्रिटेनके लिए राजदूत भी होकर गये तथा सर बापे जो विगत विश्वयुद्धसे पहले गृहमन्त्री रह चुके थे। यह संस्था कुछ समयतक इसी नामसे काम करती रही और कालान्तरमें सहयोगी संस्थाओंका भी विलयन करके इसने एक नयी संस्थाको जन्म दिया जिसका नाम "जनरल कौंसिल आफ बुद्धिस्ट असोसियेशन" (जी० सी० बी० ए०) पड़ा। यह संस्था राष्ट्रीय जागरण और शैक्षियक प्रचारका भी काम करने लगी।

सन् १९१७ के अगस्त महीनेमें जब ब्रिटेनके हाउस आफ कामन्समें श्री मांटेगूने भारतके लिए 'उत्तरदायी सरकार'के निर्माणका प्रस्ताव रखा तो बर्माकी राजनीतिक स्थितिके बारेमें बर्मी नेताओंको भी चिन्ता होने लगी। उस समय बर्मा अखण्ड भारतका एक प्रान्त था। भारतीय स्वातन्त्र्य संग्रामका कुछ ऐसा अवसर पड़ा कि इसके दो-तीन वर्षों बाद सन् १९१९-२० तक सम्पूर्ण बर्मामें राजनीतिक चेतनाकी लहर-सी दौड़ पड़ी। सन् १९२० में रंगून कॉलेजके छात्रोंने हड़ताल की, जिसका प्रभाव सारे देशपर पड़ा। इसी बीच भिक्षु उत्तमाने जापान और अन्य दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशोंका भ्रमण कर लौटनेके बाद ही बर्माके राजनीतिक और सांस्कृतिक नेतृत्वकी बागडोर अपने हाथमें ले ली। भिक्षु उत्तमाके बाद ही भिक्षु ऊ विंजारा आन्दोलनमें कूद पड़े और उन्होंने १६६ दिनोंके उपवासके बाद अपनी इहलीला ही समाप्त कर दी। आपने जाते-जाते स्वतन्त्रता-संग्राम चालू रखनेका अमर सन्देश बर्मियोंको दिया।

उधर सन् १९२१ में जनरल कौंसिल आफ बुद्धिस्ट एसोसियेशनके कार्यकर्ताओंमें मतभेद हो गया और उनमेंसे २१ नेताओंके एक दलने अलग होकर दूसरी 'जी० सी० बी० ए०'का निर्माण किया। इसके नेता ऊ छिन ल्हाइंग, बार-ऐट-लॉ हुए। आपका प्रभाव इतना बढ़ गया था कि आप बर्माके बिना ताजके बादशाह कहे जाते थे।

२६ मई, सन् १९३० को जब बर्मी-भारतीय दंगा शुरू हुआ तो बर्मियोंकी जानमालकी रक्षाके लिए युवकोंने एक दल बनाया। इस दलका नेता तखिन बा तांग नामक एक तरुण था। बा तांगने सुझाव दिया कि 'मांग' 'को' और 'ऊ' आदि बर्मी उपाधियाँ गुलामीकी सूचक हैं और इसलिए इनकी जगह 'तखिन' शब्दका प्रयोग होना चाहिये। 'तखिन'का अर्थ है 'मालिक'।

इस भाँति इस तखिन दलने भी जनजागरणका काम शुरू कर दिया। इनमेंसे तखिन टिन नामक एक युवकने वर्मी 'राष्ट्रगान'-की भी रचना की जिस गानका अर्थ है "वर्मा हमारा देश है—वर्मी हमारी भाषा है—अपने देशको प्यार करो—अपनी भाषाकी उन्नति करो—हमारे भाषणोंको आदर दो।"

इन संस्थाओंके कार्य-कलापोंके 'अतिरिक्त 'सया सांकी क्रान्ति'का विशेष महत्त्व है। यह क्रान्ति सन् १९३० के २२ दिसम्बरको प्रारम्भ हुई थी। सर जे० ए० मांगर्जी नामक वर्मी राज्यपाल (गवर्नर) तायावडी जिलेके दौरेपर गये थे। उस वर्ष अकाल पड़नेके कारण किसानोंने लगान कम करनेकी प्रार्थना की, जिसकी ओर गवर्नरने कुछ ध्यान नहीं दिया। परिणामस्वरूप सरकारके विरोधमें किसानोंने बगावत शुरू कर दी। सया सां एक चिकित्सक थे और तन्त्र-मन्त्रमें विश्वास रखते थे। वे भाग्यफल देखते और ज्योतिषकी गणना भी करते थे। यह दंगा तायावडी, त्याटमऊ, हेन्ज़डा, इन्सिन और प्यापोन जिलोमें फैल गया था। अन्ततः सरकारने इसपर काबू पा लिया। अधिकांश क्रान्तिकारी गोलीके निशाने बना दिये गये और सया सां कुछ साथियोंके साथ गिरफ्तार कर लिये गये। उनपर मुकदमा चला और उन्हें फाँसीकी सजा सुनायी गयी।

सन् १९३६की रंगून विश्वविद्यालयकी छात्र-हड़तालको तो अभी कलकी ही ऐतिहासिक घटना मानना चाहिये क्योंकि इसके नेता भूतपूर्व प्रधान मन्त्री ऊ नु और स्वर्गीय जेनरल आंग सां थे। ऊ नु तत्कालीन विश्वविद्यालय छात्रसंघके अध्यक्ष और ऊ आंग सां महामन्त्री थे। इस हड़तालने सम्पूर्ण देशमें हलचल मचा दी थी, परन्तु इससे भी ब्रिटिश सरकार विचलित प्रतीत नहीं हुई। सन् १९०४ से १९४० तककी अनेक छोटी-बड़ी राजनीतिक हलचलोंका अंग्रेजोंपर ऐसा प्रभाव पड़ता नहीं

दीखता था कि बर्मी राजनीतिज्ञ यह विश्वास कर सकते कि वे इसी रीतिसे अंग्रेजोंको सत्ता छोड़नेके लिए विवश कर सकेंगे।

ऊ नु

उन्हें यह निश्चय-सा हो गया था कि बिना सशस्त्र संघर्षके अंग्रेज बर्मा नहीं छोड़ेंगे। साथ ही उनकी यह भी धारणा बन गयी थी कि केवल अपने देशवासियोंके बलपर ही यह काम नहीं किया जा सकता; इसमें किसी-न-किसी विदेशी सरकारकी सहायता लेनी ही होगी। इधर इनकी यह धारणा और उधर जापानका मित्रराष्ट्रों (आंग्ल-अमेरिका और रूस) के साथ उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ मतभेद मेल खा गया। राष्ट्रीय स्वतन्त्रताकी आकांक्षा रखनेवाले बर्मियोंने इसके लिए जापानके साथ गठबन्धनका निश्चय कर लिया। जापानी सैनिक शक्तिका उपयोग बर्मी करना चाहते थे, परन्तु यह किस प्रकार हो, यह बात भी कुछ कम विचारणीय नहीं थी। बर्मी तो सैनिक थे नहीं। उस वक्ततक

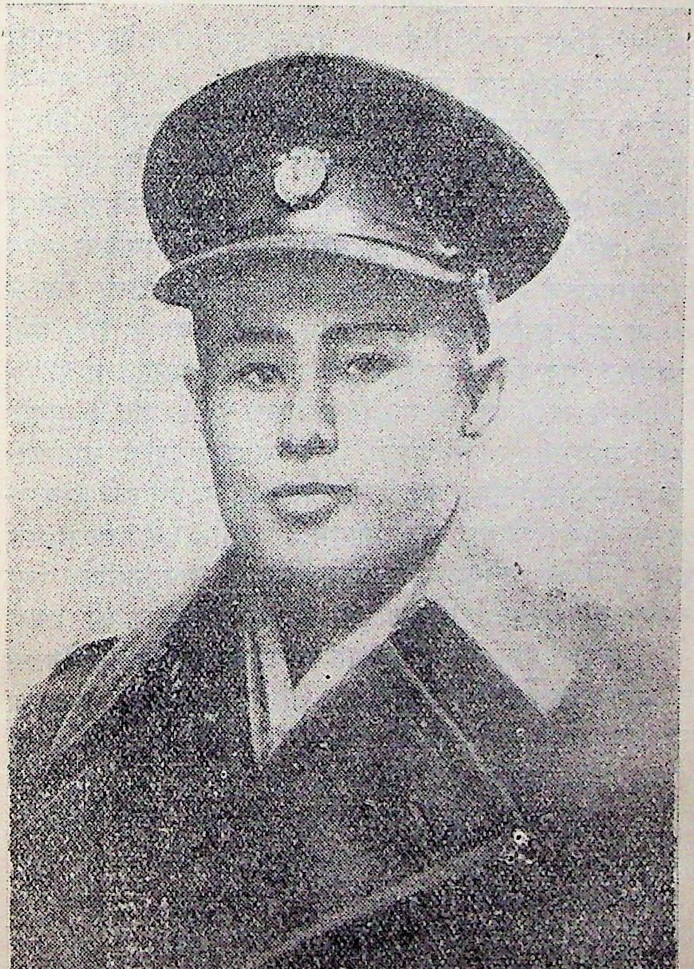

ऊ आंग सां

बर्माकी कबायली जातियोंमेंसे 'कयिन', 'छिन्', 'मुँ' और 'कछिन्' सैनिक टुकड़ियाँ तो थीं, परन्तु बर्मी रेजीमेंट नामकी कोई सैन्य टुकड़ी नहीं रही, जिससे ये किसी प्रकारका सम्पर्क स्थापित कर अभीष्टकी सिद्धिके लिए कुछ प्रयत्न करते। 'छिन्', 'मुँ', 'कयिन' और 'कछिन्' पर बर्मी देशभक्तोंको विश्वास नहीं था और ऐसा करना हितावह भी नहीं होता, क्योंकि इनपर शाही (अंग्रेजी) धर्म और विचारधाराका प्रभाव अत्यधिक था। विश्वासघातके सभी तत्त्व मौजूद थे। परिणाम उल्टा निकल सकता था। इसलिए स्वर्गीय ऊ आंग सांके नेतृत्वमें ३१ बर्मी युवकोंका एक दल युद्धकलाकी शिक्षा लेनेके लिए सन् १९४० में जापान गया। महीनोंतक सैनिक-शिक्षण पानेके बाद ये युवक बर्मी-स्यामी सीमास्थलमें आकर रहने लगे और वहाँके ग्रामीणोंकी कुछ टोलियाँ एकत्र कर उन्हें फौजी ट्रेनिंग देने लगे। स्याम-पर कब्जा करनेके बाद जब जापानियोंने बर्मामें प्रवेश किया तो इन्हीं सैनिकोंने उनका पथप्रदर्शन किया। जापानियोंके पास सम्पूर्ण बर्माके छोटेसे छोटे स्थानों और मार्गोंके दर्शक जो नक्शे थे, वे इन्हींसे प्राप्त हुए थे। जापानियोंका पथप्रदर्शन करनेवाली ऊ आंग सांके नेतृत्वमें संघटित इस सैनिक टुकड़ीका नामकरण बी० आई० ए० (बर्मा इण्डिपेण्डेंस आर्मी—बर्मी-स्वातन्त्र्य सेना) किया गया था।

युद्धकालिक बा मॉ सरकार

'बी० आई० ए०'के नेताओं और जापानियोंमें यह करार हो चुका था कि जापानी ज्यों-ज्यों अंग्रेजी फौजको भगाते जायँगे त्यों-त्यों अधिकृत क्षेत्रोंकी शासन-व्यवस्थाका भार उन्हें सौंपते जायँगे। बी० आई० ए० के अधिकांश सैनिक और नेता भी अपरिपक्व मस्तिष्कके अनुभवहीन युवक थे। बर्माके उनके सहयोगी भी वैसे ही थे। सुव्यवस्था स्थापित करनेमें वे अयोग्य और अदूरदर्शी सिद्ध हुए। यह कहना भी उचित होगा ही कि उन्होंने फौजी शिक्षण भर लिया था और शासन-व्यवस्था करनेकी रूप-रेखातक उनके दिमागमें नहीं थी और न अल्पसंख्यकों अथवा विभिन्न अभिरुचि और विचारधाराके व्यक्तियोंके हितोंकी रक्षा एवं भावनाओंके सम्मानके प्रति जिम्मेदारी निभानेकी उनमें क्षमता थी। यही कारण था कि 'बी० आई० ए०' की शासन-व्यवस्थाकी प्रशंसा किसीके मुँहसे अबतक सुननेमें नहीं आयी।

एक प्रकारसे तो सन् १९४१ की २३ दिसम्बरको रंगूनपर प्रथम बम-वर्षा होनेके बादसे ही सम्पूर्ण देशमें अराजकता छा गयी थी, क्योंकि अंग्रेज सारी व्यवस्थाको समेटते हुए जहाँ-तहाँ रुक-रुककर भागनेमें ही लगे थे, परन्तु सन् १९४२ के फरवरी मासतक सम्पूर्ण देश विप्लवग्रस्त हो गया था। डाकेजनी हद दर्जेकी बढ़ गयी थी। जापानियोंके आ जानेके बाद भी डाकुओंका भय तबतक लगा ही रहता था जबतक शान्ति-व्यवस्थापिका समिति और उसके बाद बा मॉ सरकारका निर्माण नहीं हो गया।

सन् १९४२ के मार्च महीनेमें जब जापानी फौजोंने रंगूनपर

कब्जा कर लिया था तभी तखिन ठुन ओककी अध्यक्षतामें एक शान्ति-व्यवस्थापिका समितिका संघटन किया गया था। तखिन ठुन ओक उन ३१ तखिन बर्मियोंमेंसे एक थे जो जनरल आंग सांके साथ सैनिक-शिक्षणके लिए जापान गये थे, लेकिन वे अधिक समयतक इस पदपर नहीं रहे। थोड़े ही दिनों बाद बा मॉ सरकारका संघटन हुआ और इसकी प्रशासकीय व्यवस्था चालू होते ही ठुन ओक गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिये गये।

यहाँ युद्धकालिक बा मॉ सरकारके सम्बन्धमें लिखनेसे पूर्व यह अपेक्षित प्रतीत हो रहा है कि डाक्टर बा मॉके राजनीतिक जीवनकी भी एक साधारण झाँकी प्रस्तुत कर दी जाय।

जिस समय जापानने मित्र-राष्ट्रोंके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की, बर्माके 'म्योचिट्' दलके नेता ऊ सॉ प्रधान मन्त्री थे। डाक्टर बा मॉ "सिने था उन्थानु" के नेता थे। युवकों (तखिन) का एक दल तो सैनिक शिक्षणके लिए गुप्त रूपसे जापान पहुँच चुका था और उनमेंसे जो बर्मामें थे वे जन-जागरणके काममें लगे हुए थे। डाक्टर बा मॉ और तखिन दलके विचारोंमें अपेक्षित साम्य न होते हुए भी एक ही मंजिलके राही होनेके कारण उस समय दोनों एक-दूसरेके सन्निकट हो गये थे। युद्धके प्रारम्भिक कालमें बा मॉने माण्डलेमें एक सभाका आयोजन किया और वहाँ ब्रिटिश शासनव्यवस्था तथा तत्कालीन बर्मी मन्त्रिमण्डलकी कटु आलोचना करते हुए कहा कि जबतक युद्धके बाद स्वतन्त्रता देनेका वचन ब्रिटेन न दे दे, युद्धोद्योगमें ब्रिटेनको कोई सहायता नहीं दी जानी चाहिये। इस सभाके बाद ही वे ब्रिटिश सरकार द्वारा गिरफ्तार करके 'मोगोक-जेल'में रख दिये गये। जब जापानी फौज तेजीसे आगे बढ़ने लगी और सम्पूर्ण देशकी शासन-व्यवस्था ढीली हो गयी तो बा मॉने उससे लाभ उठाया और वे मोगोक

जेलसे भाग निकले और अपनी पत्नीके साथ जैसे-तैसे मेम्योके पास आकर एक गाँवमें छिपकर दिन काटने लगे।

जापानी बा मॉकी ब्रिटिश विरोधी विचारधारासे परिचित थे। रंगून हाई स्कूलमें अध्यापक रहनेके समय बा मॉसे एक यूरोपियन प्रधानाध्यापकसे घड़ीके समयको लेकर किस प्रकार विवाद चला इसे भी वे जानते थे। डाक्टर बा मॉ जब प्रधान मन्त्री थे, उस समय भी ब्रिटिश विरोधी विचारोंको व्यक्त करनेमें वे कभी नहीं हिचकते थे। सन् १९३७ की ४ दिसम्बरको एक भोजमें भाषण करते हुए बा मॉने जो विचार व्यक्त किया था वह अब भी उनके जीवनका ऐतिहासिक भाषण माना जाता है। भोजमें अनेक अंग्रेज उपस्थित थे और बा मॉने भाषण प्रारम्भ करते हुए कहा कि "आज जब मैं अपने विचार प्रकट करने खड़ा हुआ हूँ तो ऐसी घटनाएँ याद आ रही हैं जिनसे मस्तिष्क उद्भ्रान्त हो उठता है। मुझे एक विद्यालयमें अपने अध्यापनकालकी एक बात याद आ रही है। एक यूरोपियन प्रधानाध्यापकसे मेरी अनबन इसलिए हो गयी थी कि वे अंग्रेजी घड़ीके अनुसार आचरण करनेको कहते थे जो मुझे पसन्द नहीं था। इस अनबनके परिणामस्वरूप ही मेरे जीवनने तभीसे एक नयी दिशा ली और तबसे मैं सम्पूर्ण शक्ति मानसिक तथा राजनीतिक संघर्षोंमें लगाता रहा हूँ। अभी अंग्रेज कहते हैं कि जब ब्रिटेनको उसी विधिसे प्रगति हुई तो बर्माको इससे सफलता क्यों नहीं मिलेगी। वे कहते हैं कि स्वतन्त्रता और लोकतन्त्रका विकास धीरे-धीरे होता है। ब्रिटेनको इस स्तरपर पहुँचनेमें शताब्दियों लग गये। इसका तात्पर्य यह है कि वे बर्मी प्रगतिको अपनी घड़ीके अनुकूल देखना चाहते हैं, परन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ।" इसी भाषणने डाक्टर बा मॉके प्रतिद्वन्द्वी दलको बदला चुकानेका अवसर दिया। मन्त्रिमण्डलकी बैठकमें अविश्वासका प्रस्ताव आ गया जिसका समर्थन

यूरोपीय गुटने जोरदार तरीकेसे किया। बा मॉके हाथसे सत्ता जाती रही।

उनके स्थानपर ऊ यूने मन्त्रिमण्डलका गठन किया, जिसमें म्योचिट-दलके नेता ऊ सॉ जंगल-विभागीय मन्त्रीकी हैसियतसे आये। ऊ सॉकी महत्त्वाकांक्षाको इतनेसे ही तृप्ति नहीं हुई। वे नये प्रधानमन्त्री ऊ यूके विपक्षमें एक मजबूत दल तैयार करने लगे और शीघ्र ही अविश्वासका प्रस्ताव लानेमें सफल हुए। यह प्रस्ताव पास भी हो गया। ऊ सॉको मन्त्रिमण्डलका संघटन करनेका अवसर मिला और इस तरह राजनीतिक महत्त्वाकांक्षी ऊ सॉने वह स्थान प्राप्त किया, जिसके लिए वे चिरकालसे अभिलाषाएँ सँजोये चले आ रहे थे।

डाक्टर बा मॉके राजनीतिक जीवनके उल्लिखित उतार-चढ़ाव और विचारधाराओंसे अवगत होनेके कारण जापानियोंने जब बर्मामें आधिपत्य स्थापित करनेके बाद अपनी छायामें बर्मी सरकार संघटित करनेका निश्चय किया तो उसके प्रमुख-पदके लिए वे बा मॉसे अधिक उपयुक्त किसी व्यक्तिको नहीं समझ सकते थे। सन् १९४२ की ५ मई को जब जापानियोंने मांडलेपर कब्जा कर लिया तो उन्होंने बा मॉकी तलाश शुरू की। उन्हें ढूँढ़ निकालनेके बाद ससम्मान रंगून लाया गया और उनके नेतृत्वमें बर्माकी 'आरजी सरकार'का संघटन हुआ। शान्ति-व्यवस्थापिका समितिका अन्त कर दिया गया। इस नयी शासन-व्यवस्थामें जनरल आंग सां 'बर्मी इण्डिपेण्डेंस आर्मी'के प्रमुख सेनापतिकी हैसियतसे और उनके अन्य साथी अन्य पदोंपर रहकर डाक्टर बा मॉकी जिम्मेदारियाँ बँटाने लगे।

महीनों बीत चले और 'बा मॉ सरकार' जापानियोंके इशारोंपर ही चलती रही। इधर जनमतकी माँग थी कि जापानी अपने वायदेको क्यों नहीं पूरा करते। जनताकी यह भावना डाक्टर

बा मॉकी मार्फत जापानियोंतक पहुँचायी गयी और सन् १९४३ की १ अगस्तको 'स्वतन्त्र-बर्मा'की घोषणा कर दी गयी। इस राजनितिक परिवर्तनके साथ पहला परिवर्तन यह हुआ कि 'बी० आई० ए०' का नाम बदलकर 'बी० डी० ए०' कर दिया गया। बी० आई० ए० से तात्पर्य था 'बर्मा इण्डिपेण्डेंस आर्मी' और यह नाम सार्थक भी था, क्योंकि बर्माको स्वतन्त्रता (इण्डिपेण्डेंस) दिलानेके लिए जो युवक सैनिक-शिक्षण प्राप्त करने गुप्तरूपसे जापान गये थे, पहले पहल, यह सैनिक टुकड़ी उनसे बनी थी। अब बर्माके स्वतन्त्र घोषित किये जानेके बाद इसपर रक्षा (डिफेन्स)का भार आ गया था अतएव इसका नाम "बर्मा डिफेन्स आर्मी" रखना भी युक्तियुक्त था। स्वर्गीय जनरल आंग सां स्वतन्त्र बर्मी सरकारके रक्षा-मन्त्री नियुक्त किये गये और 'बी० डी० ए०' उन्हींके अधीन रही।

डाक्टर बा मॉ अडिपडी, जिसे लोग संस्कृत शब्द 'अधिपति'का अपभ्रंश बताते हैं, की उपाधिसे विभूषित किये गये। आपकी सहायताके लिए ३० सदस्योंकी एक प्रिवी कौंसिलका संघटन किया गया। इन सदस्योंका नामांकन अधिपतिने ही जापानियोंसे परामर्श करके किया। इसके बाद ही डाक्टर बा मॉने एक नये राजनीतिक दलका भी निर्माण किया। आपने इस दलका नाम 'महा बा मॉ' दल रखा, जिसका अर्थ है 'महान् बर्मा' का दल। इसमें अधिकांश सदस्य बा मॉके युद्ध-पूर्वके सिन्येथा-दलके थे और इने-गिने 'तखिन' भी।

इनसे पहले भी युद्धकालिक बर्माका एकमात्र राजनीतिक दल 'डोबामा सिन्येथा असियौं' था, जिसके अन्तर्गत डाक्टर बा मॉका 'सिन्येथा दल', 'तखिन दल' और 'म्योचिट दल' भी सम्मिलित रहा। म्योचिट दलके नेता हेंज़डाके ऊ म्या थे। भूतपूर्वप्रधान मन्त्री तखिन नु उस समय डो बामसिन्येथा असियौं'

के मुख्य कार्य-कर्ता थे।

शासन-व्यवस्थाका संचालन रंगूनसे होता था। सेक्रेटेरियट भवनसे बा मॉ-सरकारका काम चलता था और वर्तमान राष्ट्रपति भवनमें 'जापानी सैनिक प्रधान कार्यालय' था। केन्द्रमें जो परिवर्तन होता था उसका देशव्यापी प्रभाव पड़ता था। शान्ति-व्यवस्थापिकाके स्थानपर जब बा मॉकी 'आरजी-सरकार'ने शासन-सूत्र सँभाला तो व्यवस्थाके इस परिवर्तनका असर सम्पूर्ण देशपर पड़ा। यहाँ यह उल्लेख आवश्यक है कि बा मॉ सरकारकी स्थापनाके बाद तखिन ठुन ओक और तखिन बा सेंईको गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिया गया। जैसा ऊपर उल्लेख है ठुन ओक उन ३१ युवकोंमेंसे, एक थे जो सैनिक-शिक्षणके लिए जापान गये थे, और जापानी फौजों द्वारा रंगूनपर कब्जा होनेके बाद जिनकी अध्यक्षतामें शान्ति-व्यवस्थापिका समितिका निर्माण हुआ था।

बर्मामें भारतीय स्वातन्त्र्य-सेना और नेताजी

बर्माकी युद्धकालिक स्थितियोंका चित्रांकन प्रस्तुत करते हुए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उस भारतीय स्वातन्त्र्य-सेनाके इतिहास और कार्योंपर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला जाय जिसे स्वर्गीय श्री रासबिहारी वसुने संघटित कर नेताजी सुभाषचन्द्र वसुके नेतृत्वमें काम करनेके लिए सौंपा था।

सन् १९४२ की १५ फरवरीको सिंगापुरका पतन हुआ। ब्रिटिश सरकारका यह पूर्वीय अभेद्य दुर्ग था। १६ फरवरीको अंग्रेज सैनिक अधिकारी लेफ्टिनेण्ट कर्नल हण्टने सिंगापुरके मध्यमें अवस्थित फरेर पार्कमें सभी सैनिकोंको जापानियोंके हाथ समर्पित करनेके लिए एकत्र किया। इनकी संख्या ९० हजार थी, जिनमें भारतीय सैनिक ५० हजार थे। भारतीय स्वातन्त्र्य-सेना (आई० एन० ए०) के इतिहासके पृष्ठोंको स्वर्णिम बनानेवाले सेनानी कप्तान मोहन सिंह, भोंसले, कियानी, चटर्जी, शाहनवाज, सहगल और ढिल्लन आदि इन्हींमें थे। वास्तवमें आई० एन० ए० की नींवका पहला पत्थर तो उसी दिन कप्तान मोहन सिंहने ब्रिटिश विरोधी भाषण करके रखा।

इन भारतीय सेनानियोंमें श्री निरंजन सिंह गिल सर्वोच्च पदपर थे। इन्होंने कप्तान मोहनसिंहसे विचार-विमर्श करना शुरू किया। फरवरी महीनेके अन्तमें आप साइगोन गये और वहाँ जापानी प्रधान सेनापति फील्डमार्शल तेरावचीसे बातचीत की। मार्च महीनेमें टोकियोमें एक सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें

मलाया, स्याम और चीनके प्रतिनिधियोंने भाग लिया। श्री निरंजन सिंह गिल और कप्तान मोहन सिंह भारतीय सैनिकोंके प्रतिनिधिके रूपमें सिंगापुरसे गये और इन लोगोंने श्री रासबिहारी वसु और श्री आनन्दमोहन सहायको साथ लेकर तत्कालीन जापान सरकारके प्रधानमन्त्री जनरल तोजो तथा अन्य अधिकारियोंसे भी बातचीत की। यहीं, जापान सरकार, रासबिहारी वसु और निरंजन सिंह गिल तथा कप्तान मोहन सिंहके परामर्शसे निश्चय हुआ कि सम्पूर्ण दक्षिणीपूर्वीय एशियामें इण्डियन नेशनल आर्मी तथा इण्डियन इण्डिपेण्डेन्स लीगकी स्थापना की जाय। पूर्ण रूपसे परस्पर परामर्शके बाद जुलाई महीनेमें बंकाकमें एक बृहद् सम्मेलनका आयोजन किया गया जिसमें पूर्वी एशियाके सभी देशोंके प्रतिनिधियोंने भाग लिया। सम्मेलनका सभापतित्व श्री रासबिहारी वसुने किया था।

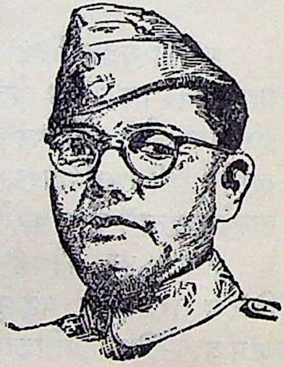

श्री सुभाषचन्द्र वसु

सम्मेलनने एक कार्य-समितिका संघटन किया, जिसके अध्यक्ष श्री रासबिहारी वसु निर्वाचित किये गये और मोहन सिंह, मेनन, राघवन् और कियानी सदस्य। मोहन सिंह 'आई० एन० ए०' के जी० ओ० सी० (जनरल आफिसर कमांडिंग) नियुक्त हुए। आत्म-समर्पणके समय अंग्रेज और भारतीय सैनिक एक साथ ही रखे गये थे, किन्तु थोड़े ही दिनों पीछे उन्हें अलग-अलग शिविरोंमें रख दिया गया और आई० एन० ए० के संघटनका निश्चय होनेके बाद जब भारतीय सैनिकोंसे पूछा गया तो इनमेंसे ४० हजारने मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके लिए अपनेको उत्सर्ग

कर देनेका वचन दिया। बंकाक सम्मेलनके केवल दो महीनों बाद

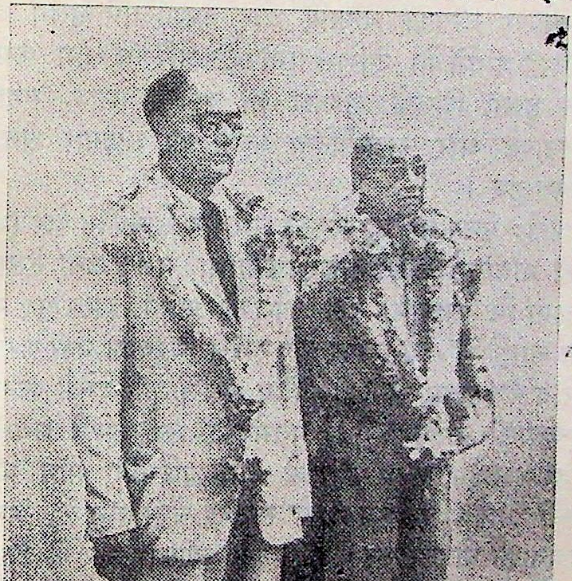

नेताजी श्री रासबिहारी बसुके साथ

२ सितम्बरतक ये सारी कारवाइयाँ सम्पन्न हो गयीं। सम्पूर्ण

दक्षिणी-पूर्वी एशियामें एक नयी लहर उत्पन्न हो गयी। इंडियन इण्डिपेण्डेन्स लीगकी शाखाएँ और उपशाखाएँ खुलने लगीं। इन्हीं दिनों बर्मामें भी अखिल बर्मा टेरिटोरियल लीग कमेटीका संघटन हुआ, जिसके अध्यक्ष श्री बालेश्वरप्रसाद, महामन्त्री श्री देशपाण्डे और राजनीतिक मन्त्री श्री सुकुमार सेन गुप्त निर्वाचित हुए।

'आई० एन० ए०'का संघटन भारतीय सैनिकोंने देश (भारत) सेवाकी भावनासे प्रेरित होकर किया था, परन्तु उन्हें ऐसा भान होने लगा कि जापानी इस फौजको अपने इशारोंपर नाचते देखना चाहते थे। वे इनपर पूर्ण रूपसे विश्वास नहीं करते थे। वे करीब १५ हजार सैनिकोंके लिए युद्धसामग्री देनेके सम्बन्धमें हीला-हवाली करने लगे। मतभेदकी खाई बढ़ने लगी और अन्ततः 'आई० एन० ए०' के अधिकारियोंने माँग की कि जापानी 'आई० एन० ए०' को स्वतन्त्र सेना मान लें, भारतीय स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दें और यह स्वीकार कर लें कि पूर्वी एशियाके भारतीय और उनकी सम्पत्ति इंडियन इंडिपेंडेन्स लीगकी है। जापानी इसपर सहमत नहीं हुए। इन माँगोंको उन्होंने टोकियोतक नहीं पहुँचाया। इस गतिविधिसे जनरल मोहन सिंह ऐसे रुष्ट हुए कि उन्होंने 'आई० एन० ए०' के विघटनका आदेश जारी कर दिया। इस घटनासे जापानी तो आगबबूला हुए ही, रासबिहारी वसु भी क्षुब्ध हो गये और उन्होंने मोहन सिंहको सेनापति पदसे अलग कर दिया। साथ ही जापानियोंने अत्यन्त कठोर रुख अख्तियार कर लिया और उन्होंने कर्नल गिल तथा मोहन सिंहको नजरबन्द कर किसी अनिश्चित स्थानको भेज दिया। आई० एन० ए० की आवश्यकताको रासबिहारी वसु तथा जापानी और बचे हुए भारतीय सैनिक अधिकारी हृदयसे अनुभव कर रहे थे। किन्तु दृष्टिकोणोंमें भेदके कारण इसका

पुनर्गठन सम्भव नहीं हो रहा था। मतैक्यके माध्यमका सर्वथा अभाव था।

भारतीय सैनिक अधिकारियोंमें अनेक उन्नतर शिक्षा प्राप्त थे। वे जीवन-यापनके निमित्त अंग्रेजी छत्रच्छायामें भले ही काम करते आ रहे थे, परन्तु उन्हें अपने और अपने देशके सम्मान और गौरवका ज्ञान था। वे विश्व-राजनीतिके सन्तुलन और भारतीय राजनीतिका सम्यक् ज्ञान रखते थे। उनकी दृष्टि वर्लिन (जर्मनी) की ओर गयी, जहाँ सन् १९४१ की २८ मार्चसे सुभाषचन्द्र वसु, भारतसे अन्तर्द्धान हो विराजमान थे। उन्हें यह सूझा कि यदि सुभाष बाबूका पूर्वी एशियामें आगमन हो जाये तो आई० एन० ए० का पुनर्गठन किया जा सकेगा। इन अधिकारियोंने जापान सरकारके सामने अपनी उक्त धारणा व्यक्त करते हुए सुझाव दिया कि वह जर्मन सरकारसे अनुरोध करे कि वह भी सुभाषचन्द्र वसुको पूर्वी एशियामें आने दे। जर्मनी और जापानके स्वार्थ अन्ततः सम्बद्ध हो चुके थे। यह सुझाव जर्मन सरकारको उचित प्रतीत हुआ और उसने सुभाष बाबूके पूर्वी एशियामें आनेका प्रस्ताव मान लिया। जापानियोंसे सब प्रकार आश्वासन और विश्वास पानेके बाद सन् १९४३ की फरवरीसे आई० एन० ए० का पुनर्गठन शुरू कर दिया गया। मेजर जेनरल जे० के० भोंसलेको सैनिक ब्यूरो का संचालक और जेनरल कियानीको सेनापति नियुक्त किया गया।

पुनर्गठन होनेके बाद भी आई० एन० ए० की स्थिति अनिश्चित ही रही। भारतीय कार्यकर्ताओंका ध्यान सुभाष बाबूके आगमनपर ही केन्द्रित रहा। युद्धकी भीषणता चरम बिन्दुपर पहुँची हुई थी। जर्मनीसे पूर्वी एशियाके लिए सुभाष बाबूकी यात्रा खतरेसे खाली नहीं थी, किन्तु वे आये। एक पनडुब्बीसे यात्रा करके पहले वे पेनांग पहुँचे और वहाँसे विमान द्वारा

टोकियो। सन् १९४३ के जून मासमें उनका पहला भाषण टोकियो रेडियोसे सुना गया। जर्मनीसे टोकियोतककी इस यात्रामें आबिद हुसेन नामक एक विश्वासपात्र मुसलिम सज्जन भी आपके साथ थे। सन् १९४३ की २ जुलाईको आप सिंगापुर आये। इसी दिन आपने श्री रासबिहारी वसुसे पूर्वी एशियाई इण्डियन इण्डिपेण्डेन्स लीगका भार ले लिया। कदाचित् इसी दिनसे रासबिहारी वसु द्वारा सम्बोधित होनेके कारण आपको 'नेताजी' कहा जाने लगा। उस दिन आपने एक घण्टेके अपने भाषणमें यह बताया कि आजादीकी लड़ाई लड़नेके लिए जरूरी है कि पहले लड़नेवाले लोग अपनेको आजाद समझने लगें। आपने यह भी संकेत किया कि सम्भव है आजाद हिन्दकी आरजी सरकारका शीघ्र ही निर्माण किया जाय।

आई० एन० ए० के इतिहासमें सन् १९४३ की ८ जुलाईको सर्वाधिक महत्त्व दिया जाना चाहिये। इसी तिथिको नेताजी सुभाषचन्द्र वसुने इसका नामकरण 'आजाद हिन्द फौज' किया। आपने कहा कि "हमारा अभीष्ट दिल्ली पहुँचना है और लालकिलेपर तिरंगा फहराना है, तथा हमारा नारा 'दिल्ली चलो' है।" सन् १९४३ के २१ अक्तूबरको नेताजीने 'भारतीय आरजी सरकार'के संघटन और उसके दूसरे दिन २२ अक्तूबरको ब्रिटेन और अमेरिकाके विरुद्ध युद्धकी घोषणाएँ कीं।

आई० एन० ए० का पुनर्गठन और भारतीय आरजी सरकारकी घोषणा होनेके बाद भी कुछ भारतीय सेनाधिकारी जापानियोंपर तबतक विश्वास नहीं कर सके जबतक नेताजीने उन्हें यह नहीं समझा दिया कि सन्देह करना बेकार है। जापानी और आई० एन० ए० के स्वार्थ अन्योन्याश्रित हैं। हमें अपने देशकी स्वतन्त्रताके लिए लड़नेमें यदि जापानियोंकी सहायताकी आवश्यकता है तो युद्धक्षेत्रमें लड़ते हुए उसी दुश्मन ब्रिटेनको हरानेके

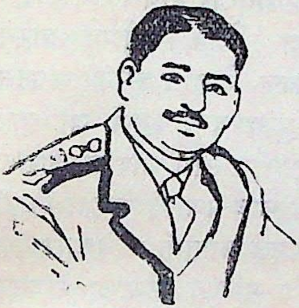

मेजर जनरल शाहनवाज खाँ
(आजाद हिन्द फौज)

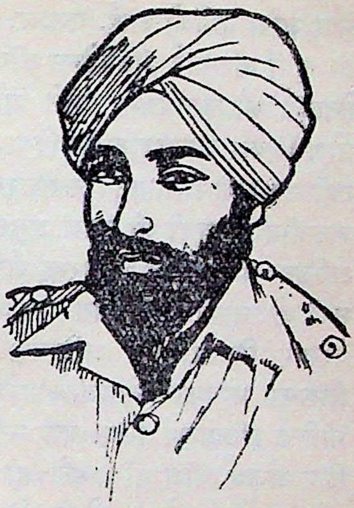

कैप्टेन ढिल्लन
(आजाद हिन्द फौज)

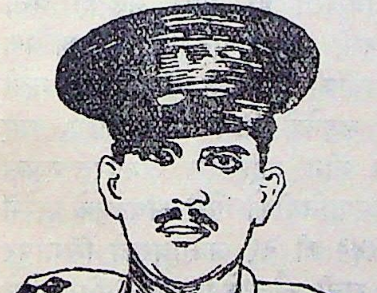

कैप्टेन सहगल
(आजाद हिन्द फौज)

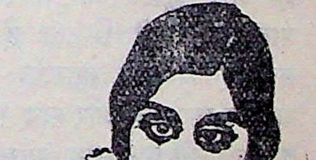

कैप्टेन लक्ष्मी
(झाँसी रानी फौज)

लिए जापानियोंको आई. एन. ए. के सहयोग की।

पूर्वी एशियाई इंडिपेंडेन्स लीगकी बागडोर हाथमें लेनेके बाद नेताजी श्री सुभाषचन्द्र वसुने महिला फौजके निर्माणके बारेमें सोच-विचार करना शुरू कर दिया, किन्तु, वे शीघ्र इसका संघटन नहीं कर सके। जापानी सरकारकी सुभाषचन्द्र वसुसे जो कुछ बातचीत हो चुकी थी उसके अनुसार 'फौज लीग और सरकार'के अस्तित्व तो स्वतन्त्र थे, परन्तु सैनिक कार्य-प्रणाली अथवा किसी नयी योजनाको कार्यान्वित करनेसे पहले जापानी अधिकारियोंसे परस्पर विचारविमर्श अनिवार्य था। महिला सेनाका संघटन जिसका नामकरण नेताजीने "झाँसी रानी फौज" किया था, राजनीतिक इतिहासके लिए एक नयी बात थी और जापानियोंके लिए अजब चीज थी। भले ही कुछ भारतीय देवियोंके कार्य इतिहासके पन्नेपर मोती बिखेरते हों, और भले ही बर्मा जैसे देशकी स्त्रियाँ किसी-किसी अर्थमें पुरुषोंसे भी अधिक निपुण हों, किन्तु केवल स्त्रियोंकी ही फौज तैयार की गयी हो और युद्धके मोरचोंपर लड़नेके लिए भेजी जाय, यह बात कहीं नहीं मिलती है। तीन महीनेतक अनवरत रूपसे लगे रहनेके बाद नेताजी, जापानियोंको ऐसे संघटनके बारेमें सहमत कर पाये और सन् १९४३ की २१ अक्तूबरको सिंगापुर तथा रंगूनमें एक साथ 'झाँसी रानी फौज'के शिक्षण-शिविर खोले गये। इसी दिन आजाद हिन्दकी आरजी सरकारकी भी स्थापना की गयी थी और यह वही तिथि थी जिस दिन झाँसीकी रानी लक्ष्मी बाईका जन्म हुआ था। फौजी शिक्षणके लिए भरती होनेवाली बालिकाएँ विभिन्न शिक्षास्तर और अवस्थाओंकी थीं। इसलिए उन्हें भिन्न श्रेणियों और प्लेटूनोंमें रखना अनिवार्य था। ऐसा ही किया गया। इन शिक्षणकेन्द्रोंमें भरती होनेवाली बालाएँ हर श्रेणी, व्यवसाय तथा जातिधर्मके परिवारोंकी थीं।

घरोंमें इनकी विचारधाराएँ भिन्न-भिन्न थीं; किन्तु शिक्षणशिविरोंमें आनेके बाद उनकी जाति और धर्मभेदकी संकीर्णताएँ जाती रहीं। कुछ तो ऐसी देवियाँ भी आगे आयीं जो बिलकुल अशिक्षिता और घरकी चहारदीवारियोंमें बन्द रहनेवाली थीं। सच तो यह है कि यदि आई. एन. ए. और आजाद हिन्दकी आरजी सरकारने पूर्वीय एशियाके पुरुषवर्गको स्वदेशकी स्वतन्त्रताके लिए सर्वस्व समर्पण करनेका पाठ पढ़ाया तो 'झाँसी रानी फौज'के आन्दोलनने नारियोंको उद्बुद्ध किया कि इस पवित्र यज्ञमें उन्हें पुरुषोंसे पीछे नहीं रहना चाहिये।

'झाँसी रानी फौज'की सम्पूर्ण कार्य-प्रणाली वैसी ही थी जैसे पुरुषोंके सैनिक केन्द्रोंकी होती है। सैनिक नियन्त्रण और नियमों तथा रीतियोंका परिपूर्ण रूपसे पालन किया जाता था। भारतके राष्ट्रीय तिरंगे झण्डेकी सलामीके साथ प्रातः ६ बजेसे शिक्षण-शिविरोंके काम शुरू हो जाता था। ६। से ७ बजे बजेतक शारीरिक व्यायाम होता था। ७। से ८ बजेतक जलपान करके सभी देवियाँ सैनिकशिक्षणके मैदानमें चली जाती थीं। दो घंटे कठिन कवायदके बाद उन्हें आरामका मौका मिलता था। भोजनोपरान्त आध घण्टे आराम करनेके बाद फिर वे पठन-पाठनके काममें लगा दी जाती थीं। फौजी सभी आदेश (काशन) हिन्दीमें दिये जाते थे। अहिन्दी भाषी प्रान्तोंकी छात्राओंको उच्चारणमें कठिनाई होती थी इसलिए उन्हें लिखाकर याद कराया जाता था तथा अन्यान्य फौजी आदेशोंको भी लिखकर पढ़ाया जाता था। यह लेखनकार्य किस लिपिमें किया जाय इस प्रश्नको लेकर विवाद खड़ा हो गया था। कुछ लोग उर्दूके पक्षमें थे और कुछ लोग देवनागरी लिपिके। इसपर नेताजीने रोमन लिपिका प्रयोग करनेको कहा और लेखनकार्यमें वही चालू हुई। दो घण्टेके पठन-पाठनके पश्चात फिर दो घण्टे सैनिक शिक्षणके होते थे। दिनान्त राष्ट्रीय

गान और ध्वज उतारनेके साथ होता था। सायं ७ बजे भोजनके पश्चात् एक घण्टा परस्पर वार्ता और सामयिक विषयोंपर वाद-विवादके लिए दिया जाता था। प्रारम्भमें प्रवेशार्थियोंकी संख्या बहुत थोड़ी थी, परन्तु बादमें एक हजार ऐसी देवियाँ तैयार हो गयी थीं जो पुरुषोंके साथ बन्दूकें लेकर चल सकती थीं।

आजाद हिन्द फौजको जन्मकालसे ही परीक्षाकी घड़ियोंसे गुजरना पड़ा। प्रारम्भमें जापानियोंके साथ मतभेदके कारण, इसके आदि जनक कर्नल निरंजनसिंह गिल और कप्तान मोहनसिंह अज्ञात स्थानके लिए निर्वासित कर दिये गये। बीच-बीचमें भी विषमता पैदा होती रही।

सन् १९४५ की २६ मार्चको जब बी० डी० एफ० (बर्मा डीफेन्स फोर्स) ने जापानियोंके विरोधमें क्रान्तिकी घोषणा कर दी, उसके बादसे एक अद्भुत स्थिति उत्पन्न हो गयी। आई० एन० ए० से वर्मी अपने प्रति सहयोग और समर्थनकी अपेक्षा करने लगे और जापानी तो कर ही रहे थे। इससे पूर्व आई० एन० ए० के सैनिकोंको सीमास्थलीय मोरचोंपर हृदयविदारक यातनाओं और विपदाओंका सामना करना पड़ा था, परन्तु आई० एन० ए० के वीर सैनिक हर परिस्थितिमें तपे हुए सोनेकी तरह दमकते हुए मिले और नेताजीकी नीतिपटुता हर उलझनको सुलझानेमें सफल रही। जब जापानी फौजें मोरचेसे पीछे हटने लगीं तो आजाद हिन्द फौजका भी उसी रफ्तारसे पीछे हटना स्वाभाविक था। बर्मा स्थित जापानी सेनाधिकारियोंने नेताजीसे सिंगापुर जानेका आग्रह किया। विशेष विमानकी व्यवस्था करनेकी भी बात कही लेकिन नेताजी इसके लिए तैयार नहीं हुए। वे झाँसी रानी फौजकी बालिकाओं और देवियोंको, जिनके वे एकमात्र अभिभावक थे, छोड़कर नहीं जाना चाहते थे। निदान, अप्रैल महीनेके अन्तमें जापानियोंने इतने परिवहनकी व्यवस्था

कर दी कि वे इन्हें भी साथ लेकर रंगूनसे रवाना हो सकें। नेताजीका दल पेगू होकर मोलमीनकी तरफ आ रहा था कि इतनेमें मित्रराष्ट्रीय फौजकी गोलाबारी सुनाई देने लगी। फलस्वरूप इन लोगोंने सवारियाँ छोड़कर पैदल चलना प्रारम्भ कर दिया। मोलमीनतक पैदल आनेके बाद वहाँसे बंकाकतककी यात्राके लिए रेलगाड़ी मिली। इस भाँति जैसे-तैसे सन् १९४५ के जून महीनेके मध्यमें नेताजी सिंगापुर पहुँचे और वहीं स्वास्थ्य-लाभ करने लगे। लगभग दो महीनेके बाद १५ अगस्तको जब जापानियोंने आत्मसमर्पणकी घोषणा कर दी तो १६ अगस्तको नेताजीने विमानसे टोकियोके लिए प्रस्थान किया। कर्नल हबीबुर्रहमान आपके साथ गये। कुछ महीनोंके बाद सुननेमें आया कि सिंगापुरसे टोकियो जाते हुए विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और नेताजी इस संसारसे चल बसे।

'फसपल'का जन्म और जापानी आत्म-समर्पण

राष्ट्रीय स्वतन्त्रताका इच्छुक जो बर्मी दल सैनिक-शिक्षणके लिए जापान गया था उसे जापानियोंने विश्वास दिलाया था कि अंग्रेजोंको भगानेके बाद देशकी शासन-सत्ता बर्मियोंको सौंप दी जायगी, परन्तु जो कुछ हुआ या हो रहा था वह इसके बिलकुल विपरीत था। शासन सूत्र तो जापानियोंने अपने हाथों रखा ही, उन्होंने बर्मियोंके साथ कठोर ही नहीं अपितु अमानवीय व्यवहार भी शुरू कर दिये। यह बर्मियोंके लिए असह्य होना स्वाभाविक था। कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी थे। बर्मियोंके चरित्रमें यह एक विशेषता है कि वे अधिकार जतानेवाला रुख नहीं सहन कर सकते। उनके साथ यदि नरमीसे व्यवहार किया जाय तो उनसे बड़ा सेवक नहीं मिलेगा, परन्तु यदि सख्ती बरती गयी तो बर्मियोंसे बदतर दुश्मन भी शायद ही मिलें। जापानियोंका हृदय चाहे जैसा भी रहा हो, परन्तु वे व्यवहारकुशल तो थे ही नहीं। उनका रुख बहुत ही अवांछनीय रहता था। बर्मी यह बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। इस तरह बर्मियोंमें असन्तोष बढ़ता ही गया।

बर्मियोंमें सहिष्णुता और अनुभवके अभाव तो थे ही। इसी बीच जापानियोंकी ओरसे अत्यन्त कठोर कारखाई यह हुई कि उन्होंने तखिनदलके कार्यकर्ताओंको गिरफ्तार करना आरम्भ कर दिया। हर नगरमें तहलका मच गया। इसे बर्मी क्यों बर्दाश्त कर सकते थे? उन्होंने जापानी सत्तासे मुक्ति प्राप्त करने-

की ठान ली। तखिन तेंईफे उसी समय सन् १९४२ में ही गुप्त रूपसे भारत चले गये। वे तत्कालीन बर्माकी शिमला-स्थित निर्वासित सरकारसे बातचीत करने लगे। उनके वापस आते ही बर्मामें जापान विरोधी क्रान्तिके सर्जनकी तैयारी शुरू हो गयी। बर्माकी प्राकृतिक स्थितिने इसमें काफी सहायता पहुँचायी। यहाँके पहाड़ी क्षेत्रोंमें बसनेवाली कौमोंमेंसे बहुसंख्यक ईसाई हैं और उन्होंने जापान विरोधी संघर्षमें पूरे उत्साहसे भाग लिया। कयिन (करेन) समुदायका योगदान तो बेजोड़ रहा। यह काम लगभग डेढ़ बरसतक अत्यन्त गुप्त रूपसे चालू रखा गया था और इतने दिनोंमें जापानी फौजोंके समानान्तर सर्वसाधनसम्पन्न छापेमार फौज अलग तैयार कर ली गयी।

जापानियोंके विरोधमें क्रान्तिकी जो तैयारी की गयी थी वह इतनी परिपूर्ण थी कि मोरचेपर लड़ती हुई फौजोंसे भी अधिक घातक सिद्ध हुई। जिन पहाड़ियोंपर छापेमारोंका केन्द्र था वहाँसे 'बेतार'का सम्बन्ध भी दक्षिण-पूर्व एशियाके सैनिक हाई कमानके सदर मुकामसे था। सप्ताहमें कई बार छापेमारोंके लिए विमानसे खाद्य-पदार्थ और शस्त्रास्त्र गिराये जाते थे। राजमार्गों और जापानी सैनिक-केन्द्रोंसे गुप्त सम्बन्ध इतनी सुन्दर रीतिसे बना हुआ था कि एक-एक पत्तेकी खड़कनका समाचार छापेमार केन्द्रमें पहुँचता रहता था। इस क्रान्तिके संचालनके लिए एक संस्थाका संघटन किया गया था, जिसका नाम तब ए० एफ० पी० एफ० एल०—एण्टी फासिस्ट पीपुल्स फ्रीडम लीग अर्थात् फासिस्ट विरोधी जन स्वातन्त्र्य संघ था। स्वतन्त्रताके बाद सरकारकी स्थापना होनेपर सत्तारूढ़ दलका भी यही नाम कायम रहा। जापानी सैनिकोंकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। भोजन-वस्त्रके लिए वे तरसते फिरते थे। सभी ग्रामीण बर्मी उनके कट्टर दुश्मन हो गये थे। उन भूखे-प्यासे और अर्धनग्न जापानियोंको

१४

ग्रामीण खाने अथवा पीनेके लिए कुछ दे देते और जब वे खाने लगते तो पीछेसे किसी घातक शस्त्रास्त्रसे वार करते अथवा हथगोला उनके बीचमें फेंक देते। इस तरह बर्मी ग्रामीण उनका प्राणान्त करते थे। यह प्रतिक्रिया थी। जापानियोंके कृत्य भी कुछ कम अमानुषिक और बर्बर नहीं थे।

उस छापेमार जीवनमें एक बात मुझे देखनेमें आदर्शपूर्ण लगी थी। उनमें नशाखोरीका नाम भी नहीं था। नशेकी झोंकमें रहस्योद्घाटन हो जानेका भय रहता है इसीलिए नशाखोरी त्याग रखी गयी थी।

२७ मार्च, सन् १९४५ को तखिन तान ठुन और स्वर्गीय ऊ आंग सांने उपर्युक्त क्रान्तिमें सक्रिय भाग लेनेके लिए गुप्त रूपसे रंगून छोड़ा। उसके २६ दिनोंके बाद २३ अप्रैलको डाक्टर बा मॉ और कतिपय अन्य मन्त्रियोंके परिवारोंको जिनमें ऊ नु और उनका परिवार भी था, घर छोड़कर जापानियोंके साथ हो लेना पड़ा।

भयंकर बमवर्षाके बीचसे प्राण बचाते हुए ये लोग रंगूनसे पेगू होकर मोलमीनके रास्ते मिडऊँ पहुँचे। वहाँ इन्होंने २ मास अनेक यातनाएँ सहते हुए काटे। १४ अगस्तको जब जापानियोंने डाक्टर बा मॉको बताया कि वे दूसरे दिन आत्मसमर्पण करने जा रहे हैं, तो उसी दिन बा मॉने अपने सहयोगियोंको उसकी सूचना दे दी। जापानी सत्ताकालमें डाक्टर बा मॉ यद्यपि 'अधिपति'के स्थानको अलंकृत कर रहे थे, किन्तु उनका जीवनमार्ग कंटकाकीर्ण ही रहा। कभी जापानियोंकी विमूढ़ता उन्हें परेशानीमें डाल देती तो कभी अन्य दुर्घटना।

जापानियोंका मूढ़ताविषयक केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। डाक्टर बा मॉकी सबसे बड़ी पुत्री मा तिन्सा मोका पाणिग्रहणसंस्कार बो यां नाइंगसे सम्पन्न करनेका निश्चय हो

गया था। आवश्यक तैयारियाँ प्रारम्भ थीं। उस शादीके अवसरपर बैठनेवालोंके स्थान निश्चित किये जा रहे थे। रंगून स्थित जापानी राजदूत और प्रधान सेनाध्यक्ष, डाक्टर बा मॉकी दाहिनी बगलमें बैठना चाहते थे। परन्तु अधिपति (डाक्टर बा मॉ)ने तय कर रखा था कि उक्त स्थानपर नेताजी श्री सुभाषचन्द्र वसु आसीन होंगे। इसका ज्ञान होनेपर भी जापानी अधिकारियोंने व्यवस्था करनेवालोंको सीधे निर्देश देकर वहाँ अपने बैठनेका स्थान निश्चित करा लिया। अधिपतिके कानोंतक जब यह बात गयी तो आप निहायत पशोपेशमें पड़ गये और दुःखी हुए। ऊ नु उस समय परराष्ट्रविभागीय मन्त्री थे और अधिपतिने उनसे जापानी राजदूतको समझानेके लिए कहा। ऊ नु और उनके साथ विधिमन्त्री ऊ ठुन आंग भी जापानी राजदूतके पास गये लेकिन उन्हें समझाना अत्यन्त कठिन कार्य प्रतीत हुआ। उस समय ऊ नुने अत्यन्त निर्भीकताका परिचय दिया और जापानी राजदूतसे कहा कि "आप जापानके एक राजदूतमात्र हैं और नेताजी वसु स्वतन्त्र भारतकी 'आरजी सरकार'के प्रमुख! इसलिए जो स्थान नेताजीके लिए निश्चित कर रखा गया है वहाँ उन्हींको आसीन होने देना चाहिये।"

जापानी राजदूतको यह बात बुरी लगी और इसका न जाने क्या परिणाम हुआ होता, किन्तु ऊ ठुन आंगने वातावरणको तत्काल सँभाल लिया। आपने कहा कि विवाहके समय कुछ मनीपुरी अतिथि भी उपस्थित होंगे और उनपर यह प्रभाव डालना कि उनके नेता वसुको यथोचित सम्मान नहीं दिया जा रहा है, अहितकर होगा। मनीपुरियोंसे प्रमाणपत्र लिये जा सकेंगे, जो इम्फलकी लड़ाईके समय प्रचारके लिए सहायक होंगे। लेकिन यह बात जापानियोंको तुष्ट करनेके लिए ही कही गयी थी; तथ्य यह था कि पाणिग्रहणसंस्कार करानेके लिए माण्डलेसे दो-

तीन ब्राह्मण (मनीपुरी) बुलाये गये थे और कोई मनीपुरी आमन्त्रित नहीं किया गया था।

कभी-कभी जापानी अधिकारी बा मॉपर अंग्रेजोंका खुफिया होनेका भी शक करते थे, जिसका कोई आधार नहीं था। एक बार तो एक अधिकारीने ईर्ष्यावश उनकी हत्याका भी षड्यन्त्र बना लिया था, किन्तु वह विफल रहा।

जर्मनी (हिटलर)ने १ सितम्बर सन् १९३९ को पोलैण्डपर आक्रमण किया और उसके दो ही दिन बाद ३ सितम्बरको ब्रिटेन और फ्रांसने जर्मनीके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की थी। जर्मन शक्तिका मुकाबला पोलैंड एक मास भी नहीं कर सका। २८ सितम्बरको उसपर जर्मनीका पूर्ण अधिकार हो गया। सन् १९४० की ९ अप्रैलको नार्वे और डेनमार्कपर प्रहार करनेके एक ही मास बाद १० मईको जर्मनीने बेल्जियम और हालैंडके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। हिटलरकी उस सेनाका मुकाबला, जिसकी तैयारी उसने सम्पूर्ण विश्वपर शासन करनेकी महत्त्वाकांक्षासे की थी, ये राष्ट्र अधिक समयतक नहीं कर सके और सन् १९४० की १७ जूनको फ्रांसपर हिटलरका कब्जा हो गया। इसके बाद एक वर्षतक जर्मनी और ब्रिटिश शक्तियोंका संघर्ष चालू रहा और लोग ब्रिटेनके पतनकी ही आशंका कर रहे थे। किन्तु जर्मनीने ऐतिहासिक भूल की। उसने २२ जून सन् १९४१ को रूसपर आक्रमण कर दिया। अब जर्मन शक्ति इतनी दिशाओंमें बँट गयी कि वह मित्रराष्ट्रीय ताकतका मुकाबला करनेमें असमर्थ रही। हिटलरकी मनचाही नहीं हुई। सन् १९४४, ६ जूनको मित्रराष्ट्रीय फौजोंने फ्रांसकी राजधानी पेरिसपर कब्जा किया और सन् १९४५ की ८ मईको बर्लिन (जर्मनी)में पहले रूसी और फिर आंग्ल-अमेरिकी फौजें घुसीं। जापान अब भी युद्धरत था। लेकिन जर्मनी और जापानी हार-जीत तो अन्योन्याश्रित थी। युद्ध-

कालीन ब्रिटिश प्रधानमन्त्री श्री विन्स्टन चर्चिलने अपने तात्कालिक संस्मरणोंमें बताया है कि टोकियोसे भेजे गये सन्देश बर्लिन (जर्मनी)में हर हिटलरके पास पहुँचनेके साथ ही उन्हें भी मिल जाया करते थे। श्री चर्चिलने लिखा है कि जब जापानने मित्रराष्ट्रीय शक्तियोंके विरोधमें युद्धघोषणा की, उससे पहले उसने अपने इस मन्तव्यका सन्देश हर हिटलरको भेजा था, जो उन्हें (चर्चिलको) भी उसी समय मिल गया था। वस्तुतः ऐसे रहस्योद्घाटन जापान-जर्मनीके लिए कुछ कम घातक नहीं रहे।

बर्मामें बर्मी डिफेन्स आर्मीने सन् १९४५, २६ मार्चको जापानियोंके विरोधमें क्रान्तिकी दुन्दुभी बजा दी थी और उसी समय तत्कालीन रक्षामन्त्री जेनरल आंग सां तथा जंगल विभागीय मत्री तखिन तान ठुन रंगूनसे फरार हो गये। आंग सां येनाङ्गाऊँके इलाकेमें चले गये और तान ठुन मध्य बर्माके पेगू, टाँगू, और पिन्मनाके क्षेत्रोंमें रहकर जापान विरोधी क्रान्तिका संचालन करने लगे। सन् १९४५ की ५ मईको रंगून शहरमें आंग्ल-अमेरिकी फौजोंके पीछे ही पीछे ये लोग भी वापस आये। बर्मा-भारत और बर्मा-चीनकी सीमासे लेकर रंगूनतकके राजमार्गों और रेलवे लाइनोंपर आंग्ल-अमेरिकी फौजोंने अधिकार कर लिया था।

जापानकी हार तो निश्चित हो चुकी थी, परन्तु वह अड़ा ही रहा। साधारण शस्त्रास्त्रोंके सामने उसे न झुकते देखकर अमेरिकाने असाधारण तरीका अख्तियार किया। वह महाविनाशक शक्तिके प्रयोगपर तुल गया। उसने प्रथम अणुबम सन् १९४५ की ९ अगस्तको हिरोशिमापर गिराया और फिर दूसरा १४ अगस्तको नागासाकीपर। सम्पूर्ण जापानमें हाहाकार मच गया। निदान १५ अगस्त सन् १९४५ को जापानने आत्मसमर्पणकी घोषणा कर दी, परन्तु बर्मामें छिटफुट विध्वंस इसके बाद भी चलता रहा।

सम्पूर्ण बर्माके जापानी सैनिक पर्वतीय क्षेत्रोंमें चले गये थे।

उनके राष्ट्रने आत्मसमर्पणकी घोषणा कर दी थी, यह बात पहले तो उनके कानोंतक पहुँचनेमें देर लगी और जब उन्होंने सुना भी तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ। मौका पाते ही वे या तो आंग्ल-अमेरिकी सैनिक टुकड़ियोंपर आक्रमण कर देते थे या आमने-सामने होनेपर लड़ जाते और जबतक उनके पास कारतूसें रहतीं, हथियार नहीं डालते थे। यह स्थिति महीनोंतक चालू रही। मित्रराष्ट्रीय बमवर्षकतक उन्हें काबूमें लानेके लिए प्रयोगमें लाये गये। ऐसी बम-वर्षासे जहाँ-तहाँ तो बर्माके गाँवके गाँव ध्वस्त हो जाते थे। लेकिन यह तो बुझते दीपककी अन्तिम लौ थी। जापानका शौर्यसूर्य तो अस्त हो चुका था। उसने मित्रराष्ट्रोंके समक्ष आत्मसमर्पणकी घोषणा कर दी थी।

राज्यपाल परिषद्की वापसी

सन् १९४२ की २६ फरवरीको रंगून खाली कर देनेकी सूचना विज्ञापित करानेके साथ ही बर्माके तत्कालीन गवर्नर सर रेजीनाल्ड डार्मन स्मिथने अपनी परिषद्का कार्य भी समेटकर उसे शिमला हटा दिया था। शिमला पहुँचनेपर लगभग ३ मासतककी अस्त-व्यस्तताके बाद जून महीनेमें गवर्नरने परिषद्के प्रमुख सचिव श्री डबल्यू० एच० पैटनको वहाँ एक छोटेसे सचिवालयकी व्यवस्था करनेका आदेश दिया। बर्मी परिषद्का कार्य समेटनेके साथ ही उसका झण्डा भी समेट रखा गया था और उसे शिमलामें फहराकर निर्वासित बर्मा सरकारने काम करना प्रारम्भ कर दिया।

बर्मासे विस्थापित लगभग ८ हजार सरकारी अधिकारी और ४ लाख नागरिक भारत गये थे। अधिकारियोंमें कमिश्नरसे लेकर चपरासीतक और नागरिकोंमें गगनचुम्बी महलोंमें निवास करनेवालोंसे लेकर झोपड़ियोंमें बसनेवाले दीन-मलीनतक थे। ये सभी अपने-अपने संरक्षणके लिए सरकारका मुँह देख रहे थे। श्री पैटन और उनके सहायक ऊ टिन ठुटके सामने पहले तो यह कठिनाई थी कि शरणार्थियोंके आवेदनोंपर विचार करनेका मापदण्ड क्या हो सकता था, परन्तु पीछे उन्होंने बर्माकी फाइलोंको उलटना प्रारम्भ किया और उससे बहुत-कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकी। युद्धोपरान्त सन् १९४५ में सरकारके पुनर्निर्माण विभागीय परामर्शदाता होकर जब ऊ टिन ठुट सबसे पहले बर्मा आये तो उन्होंने एक भाषणमें बताया था कि "बहुत कुछ सावधानीसे काम लेते हुए भी विस्थापितों द्वारा की गयी

हरजानेकी माँगोंपर विचार करनेमें सरकार ठगी गयी थी। कुछ लोगोंने नाजायज माँगें की थीं, जो अनजाने स्वीकार कर ली गयीं और उनका भुगतान भी करना पड़ा।” आपने कहा था कि “शिमलाकी बर्मा-सरकारको उस समय भारत सरकारसे अनेक प्रकारकी सहायता और मार्गदर्शन मिले, जिसके परिणाम-स्वरूप शरणार्थी नागरिकोंके लिए शिविरोंकी व्यवस्था की जा सकी तथा सरकारी अधिकारियोंको कामोंमें लगाया जा सका।” सन् '४२ के जून मासके आस-पास सर रेजिनाल्ड डार्मन स्मिथ-को लन्दन बुलाया गया था और वे आवश्यक निदश प्राप्त कर उसी वर्षके सितम्बर महीनेमें शिमला वापस आ गये।

जैसा युद्धकालिक ब्रिटिश प्रधानमन्त्री सर विन्स्टन चर्चिल बहुधा अपने वक्तव्यमें कहा करते थे कि ‘हम छोटी लड़ाइयोंको महायुद्ध जीतनेके अभिप्रायसे हारते जा रहे हैं’, लन्दनकी सरकार-को पूर्ण आत्मविश्वास था कि अन्ततः वह युद्धमें विजयी होगी और बर्माका पुनर्निर्माण करना होगा। इसलिए गवर्नरने शिमला वापस होनेके बाद ही एक पृथक् पुनर्निर्माण विभागका संघटन किया, जिसके प्रभारी सचिव श्री एफ० बी० आर्नाल्ड नियुक्त हुए। बर्माके कतिपय चोटीके नेता भी, जो शिमला पहुँचे थे, इस विभागकी सहायता करते थे। इनमें ऊ चौ मिं, ऊ पू और ऊ बा टिनके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

सन् १९४४ के मध्यतक पुनर्निर्माणकी योजना पूरी तरह तैयार हो जानेके बाद गवर्नरने अपनी सलाहकार-समितिका संघटन किया, क्योंकि तबतक यह निश्चित-सा हो गया था कि जापानी कुछ ही महीनोंमें बर्मा खाली कर देनेवाले थे और निर्वासित सरकारको शिमलासे रंगून वापस आकर शासनकी पुनस्स्थापना करनी थी। इस समितिके दो बर्मी विशिष्ट सदस्य सर पा ठुन और सर ठुन आंग भी नियुक्त हुए। सन् १९४४ के

अन्तमें पुनर्निर्माण विभागका विघटन कर दिया गया और इसके ऊँचे अधिकारी विविध योजनाओंको कार्यान्वित करनेके निमित्त सेक्रेटरी आव् स्टेटसे निर्देश प्राप्त करने लगे।

एक तरफ पुनर्निर्माणकी योजनाओंपर विचार चल रहा था तो दूसरी ओर सर हर्बर्ट डंकलेकी अध्यक्षतामें विधिविभागीय कार्य भी चल रहा था। चालू 'बर्मा-कोड' (कानून पुस्तिका) की छान-बीन करके नया बर्मा-कोड तैयार किया गया था और उसे मुद्रित भी करा लिया गया था।

अन्ततः वह दिन भी आ ही गया जिसकी प्रतीक्षामें सर-रेजिनाल्ड डार्मन स्मिथ थे। जापानियोंने आत्मसमर्पण कर दिया और सम्पूर्ण बर्मापर मित्रराष्ट्रीय फौजोंका कब्जा हो गया। इसी दिनकी प्रतीक्षामें वह बर्मी तरुण-दल भी था, जिसने अंग्रेजोंको भगानेमें जापानियोंका पथप्रदर्शन किया था और जापानियोंके विरोधमें क्रान्ति करके उन्हें भी भगाया था। इस दलके नेता थे वीर पुंगव स्वर्गीय जनरल आंग सां। इन्हें यह भान हो गया था कि ब्रिटिश सरकार लौटनेके बाद बर्माको अपना उपनिवेश बनाकर रखना चाहेगी और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके अन्तर्गत रखते हुए औपनिवेशिक स्वराज्यसे अधिक नहीं देना चाहेगी। जब मित्र-राष्ट्रीय फौजोंने बर्मापर पूर्ण अधिकार कर लिया तो कतिपय अंग्रेज अधिकारियोंने यह कहकर कि 'मित्रराष्ट्रीय जीत निश्चत समझनेके बाद बर्मियोंने उन्हें सहायता देनी शुरू की', इनकी उक्त धारणाको और बल दे दिया। बर्मी तरुणोंने फासिस्ट विरोधी जन-स्वातन्त्र्य संघ (ए० एफ० पी० एफ० एल०)को और शक्तिशाली बनानेके साथ ही स्थितिको स्पष्ट करना चाहा। पहले संघकी सुप्रीम कौंसिल (उच्चतम परिषद्)के केवल ९ सदस्य थे, किन्तु उसका क्षेत्र और व्यापक बनाकर सदस्योंकी संख्या १६ कर दी गयी। तत्पश्चात् कालान्तरमें सदस्योंकी संख्या और बढ़ाकर

३६ कर दी गयी।

बर्माकी राजनीतिक स्थिति तो अनिश्चित थी ही, उस बर्मी फौजकी स्थिति भी, जिसने जापानियोंको भगानेमें अंग्रेजोंकी सहायता की थी, अनिश्चित रही और इस अनिश्चितताको दूर करनेके लिए जनरल आंग सांके नेतृत्वमें एक शिष्टमण्डल मित्र-राष्ट्रीय फौजोंके दक्षिण-पूर्वी एशियाई सुप्रीम कमाण्डर लार्ड लुई माउण्टबेटेनसे बातचीत करनेके लिए सन् १९४५ की ४ सितम्बर-को कैण्डी (सिंहल) गया। माउण्टबेटेनसे इनकी वार्ता सफल रही और ये सन्तोषप्रद समझौतेपर पहुँच सके। वहीं इनकी मुलाकात गवर्नर सर रेजिनाल्ड डार्मन स्मिथसे भी हुई और उनसे राजनीतिक पहलुओंपर भी विचारोंके आदान-प्रदान हो सके।

कैंडीसे वापस आनेके बाद लीगकी सुप्रीम कौंसिल (उच्चतम परिषद्)की बैठक हुई और निश्चय किया गया कि गवर्नर महोदय-को एक पत्र भेजकर उन्हें अपने अभिप्रायसे अवगत करा दिया जाय। इससे पूर्व लीगने एक बैठक कर प्रस्तावके रूपमें स्वीकार कर लिया था कि "लीगने फासिज्मका अन्त करनेतक युद्ध जारी रखनेका निश्चय किया है तथा इसका अभीष्ट पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना है और यह बालिग मताधिकारके आधारपर निर्मित विधानमण्डल द्वारा अपने संविधानका निर्माण चाहती है।"

गवर्नर सर रेनिनाल्ड डार्मेथ स्मिथ १६ अक्तूबर सन् १९४५ को रंगून आये। आपके आगमनका समाचार सम्पूर्ण देशमें फैल चुका था। 'गवर्नरके स्वागतके लिए कौन जाय', इस प्रश्नपर भी कुछ कम चख-चख नहीं चली। लीगके उच्चतम नेता स्वागतार्थ जानेके लिए राजी नहीं थे। सर रेजीनाल्ड डार्मन स्मिथके सम्मान-में एक नागरिक स्वागत-समारोहका आयोजन रंगूनके सिटी हालमें किया गया। समारोहके सामने गवर्नरने पहले सम्राट्का सन्देश पढ़ा और उसके बाद एक संक्षिप्त भाषणमें अपने विचार

प्रकट किये।

सम्राट्ने बर्मी जनताके नाम सन्देशमें कहा था; "मैं बर्माकी अपनी प्रजाके प्रति स्नेहसिक्त अभिवादन और सहानुभूतिका सन्देश भेज रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि युद्धकी विभीषिकासे आप लोगोंको कैसी यातनाएँ पहुँची हैं और कैसे साहसके साथ आपने उन्हें झेला है। मैं यह भी जानता हूँ कि आपने जापानियोंके बर्बर अत्याचारोंको किस प्रकार सहन किया है और आजादी देनेके उनके झूठे वायदोंके किंचित् बहकावेमें भी आप किस तरह आ गये थे। मेरे साम्राज्यके सभी भागोंमें और मेरे मित्रराष्ट्रोंकी फौजोंने विजयपूर्ण संघर्ष करके आपके देशको जो मुक्ति दिलायी है तथा ब्रह्मभूमिके सपूतोंने भी एक साहसपूर्ण प्रहार करके इसमें जो हाथ बँटाया है उससे मैं विशेष आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ। चिर-स्मरणीय बहादुरी और सैनिक शासनके बाद अब वह समय आया है जब असैनिक शासनव्यवस्था स्थापित की जायगी और युद्धमें जो बर्बादियाँ हुई हैं उनका यथासम्भव शीघ्र पुनर्निर्माण किया जायगा। ब्रिटेन स्थित मेरी सरकारने आपके गवर्नरसे आवश्यक विचार-विमर्श किया है और वे लोग इस बातका ध्यान रखेंगे कि बर्मा ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलका एक सदस्य रहते हुए यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण रूपसे निजी सरकारकी स्थापना कर सके। जनताके प्रतिनिधियों द्वारा संविधानके निर्माणके लिए पहला कदम यह होगा कि अनुकूल स्थिति आते ही उत्तरदायी मन्त्रियोंकी नियुक्ति इस कार्यके लिए कर दी जाय। इस बीच काम चलानेके लिए गवर्नरकी सहायताके निमित्त एक परिषद्का संघटन किया जायगा। उक्त परिषद्के सदस्य गवर्नर द्वारा नियुक्त किये जायँगे। गवर्नरका पहला काम एक लेजिस्लेटिव कौंसिलका निर्माण करना होगा।" पर्वतीय जातियोंके निमित्त सम्राटने विशेष सन्देश भेजा था, जिसमें कहा गया था

कि उनके हितोंकी रक्षाके निमित्त विशेष व्यवस्था की जायगी ताकि उनकी जनजातीय संस्थाओंका भी विकास हो सके।

गवर्नर सर रेजिनाल्ड डार्मन स्मिथके निमित्त एक अभिनन्दन-पत्र पढ़ा गया था, जिसके उत्तरमें आपने कहा कि "जिस बर्माको हमने सन् १९४२ में छोड़ा था वहाँ फिर वापस आनेपर अपार हर्ष हो रहा है। मैं पुराने विचारोंको लेकर नहीं आया हूँ बल्कि पुरानी समस्याओंके समाधानके लिए नये सूत्रोंसे काम लेना चाहता हूँ। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी मैं बर्माको आजादीका उपभोग करते देखना चाहता हूँ, जैसी आजादी स्वयं ग्रेट ब्रिटेनको प्राप्त है। मैं एक अनिश्चित नहीं बल्कि निश्चित योजना लेकर आया हूँ और वह दिन दूर नहीं है जब बर्मा विश्वके परिपूर्ण प्रभुसत्तासम्पन्न राष्ट्रोंके समकक्ष बैठ सकेगा।" बर्मी देश-भक्त सेनाके प्रति विचार प्रकट करते हुए आपने कहा कि "यह वही सेना है जिसने एक समय हमारे विरुद्ध भी युद्ध किया था, किन्तु अभी जिस प्रकार उसने मित्रराष्ट्रीय फौजोंको सहायता पहुँचायी है, उसके प्रति सैनिक अधिकारी अनेक बार कृतज्ञता प्रकट कर चुके हैं। बर्मी स्वतन्त्रताके लिए संघर्षके दिन समाप्त हो चुके हैं।" जिस परिषद्का संघटन वे करने जा रहे थे, उसकी बाबत आपने कहा कि यह एक 'आरजी परिषद्' है और कुछ ही सप्ताहों बाद ऐसी परिषद्का संघटन होगा जिसके सदस्य गैरसरकारी और जनताके सम्मानित प्रतिनिधि होंगे। मेरा इरादा है कि जापानी आक्रमणसे पहले जो कुछ अधिकार कौंसिलके मन्त्रियोंका था उन सब मामलोंको जनता द्वारा निर्वाचित गैरसरकारी प्रतिनिधि पूर्ण रूपसे देखेंगे।"

इन रस्मोंकी अदायगीके साथ बर्माकी निर्वासित सरकारका प्रथमदिवसीय कार्यक्रम समाप्त हुआ।

गवर्नर रेजिनाल्ड डार्मन स्मिथ अपनी परिषद्के संघटनके

समय ए० एफ० पी० एफ० लीगके नेताओंको उसमें सम्मिलित करनेमें विफल रहे। इसके अनेक कारण थे। लीगके नेता तखिन तेंइ पे, जो सन् १९४२ में गुप्त रूपसे बर्मासे शिमला गये थे, का गवर्नरसे मतभेद हो चुका था। बर्मासे जानेके समय गवर्नरने आम जनतापर आनेवाली आपदाओंके परिहारकी ओर ध्यान नहीं दिया था, यह दोषारोप तेंइ पेने गवर्नरपर शिमलामें ही किया था और दोनोंके बीच कुछ कटुता पैदा हो गयी थी। इधर लीगके अन्य नेता तखिन तेंइ पेकी उपेक्षा करके परिषद्में सम्मिलित भी नहीं हो सकते थे। पुराने बर्मी नेता सर पा ठुन और उनके साथियोंको गवर्नर छोड़ नहीं सकते थे और नये नेता उनकी छायामें काम करना पसन्द नहीं करते थे। लीगके नेताओंकी धारणा थी कि अखिल बर्माकी सर्वाधिक शक्तिशाली संस्था 'ए० एफ० पी० एफ० लीग' है और इसके प्रतिनिधित्वकी मान्यता गवर्नर द्वारा होनी चाहिये, किन्तु सर रेजीनाल्ड डार्मेन स्मिथ इस तथ्यको समझनेमें विफल रहे। आपने अपनी कार्यकारिणी-परिषद्का संघटन किया। उसके प्रमुख सर पा ठुन और अन्य सदस्य सर ठुन आंग जॉ, ऊ एइ, बार ऐट-ला, ऊ बा आंग और म्योचिट दलके ऊ लुन नियुक्त किये गये।

इस प्रकार लगभग वही सरकार जो युद्धकालमें निर्वासित थी, फिर शासनका काम देखने लगी। ऊ आंग सांके नेतृत्वमें 'ए० एफ० पी० एफ० एल०' ने भी प्रतिनिधि संस्थाकी स्थितिमें संघटनका काम चालू रखा।

आंग सांने स्वतन्त्रताका मार्ग प्रशस्त करनेके उद्देश्यसे दूसरी कार्य-प्रणाली ही अपनायी। कालान्तरमें ऊ सॉका देशमें पुनरागमन हुआ। आप युद्धपूर्वकालके अन्तिम प्रधान मन्त्री और म्योचिट दलके नेता रह चुके थे। परिवर्तित परिस्थितिसे आप अनभिज्ञ थे। आते ही शक्तिकी लिप्सामें राजनीतिमें कूद पड़े।

आपने युद्धपूर्वकी सत्ताकी फिर माँग की, किन्तु विफल रहे। आपका इस तरह फिर राजनीतिमें प्रवेश अधिकतर लोगोंको असह्य था। एक सन्ध्याको गवर्नरसे बातचीत करके ऊ सॉ मोटरसे लौटे आ रहे थे कि किसीने आपको गोलियोंका निशाना बना दिया। एक गोली आपकी आँखके पाससे छीलती हुई निकल गयी और आप कलकत्ता इलाज करानेके लिए चले गये, किन्तु सुलगती आगको हवाका एक झोंका देकर गये।

बर्माकी राजनीतिक स्थिति इस प्रकार अनिश्चित होनेके कारण जनरल आंग सांको उत्सुकता हुई और उन्हीं दिनों वे भारतके वर्तमान प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरूसे आवश्यक परामर्शके लिए दिल्ली भी गये।

वीरपुंगव आंग सांकी हत्या

२७ जनवरी, १९४७ को जिस समझौतेपर जनरल आंग सां और ब्रिटिश प्रधान मन्त्री क्लीमेन्ट एटलीने लन्दनमें हस्ताक्षर किये उसके अनुसार उसी वर्ष अप्रैल मासमें आम चुनाव हुआ जिसमें 'फसपल' की देदीप्यमान विजय हुई और व्यवस्थापिका सभाका गठन किया गया। इस व्यवस्थापिकाका सर्वप्रथम अधिवेशन १९४७ की १० जूनको हुआ जिसके समक्ष बर्मी संविधानकी भी रूपरेखा रखी गयी। यह व्यवस्थापिका सभा कुछ महीनोंकी भी नहीं हो पायी थी कि इसपर वज्रपात हो गया।

बर्मी राष्ट्रपर आनेवाली इस आपदाके लिए कौन-सी मिसाल दी जाय और किस प्रकार मर्मवेदना प्रकट की जाय ? झंझावातके झोंकोंके बीच पड़े पोतके सभी माँझियोंके छिन जाने जैसी यह घटना थी। जनरल आंग सांके साथ जो अन्य राष्ट्ररत्न लुट गये थे उनमेंसे एकका भी निधन राष्ट्रकी अपूरणीय क्षति थी और और सबका उठ जाना तो राष्ट्रपर वज्रपात ही था। इस बर्बर कृत्यका शिकार होनेवाली राष्ट्रीय विभूतियोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

जनरल आंग सांका जन्म १९१६ में येनांजाँऊ जिलेके नामॉ नामक ग्राममें हुआ था। सन् १९३८ में रंगून विश्वविद्यालयके छात्रोंने जब हड़ताल की थी तो उस समय आप छात्र-संघके जनरल सेक्रेटरी थे। बर्माके युद्धपूर्वके प्रमुख राजनीतिक दल 'डो बामा' पार्टीके सन् १९३९–४० में आप महामन्त्री थे। सन् १९४० में ३१ बर्मी युवकोंका जो दल सैनिक शिक्षणके लिए गुप्त रूपसे जापान गया था उसका आपने ही नेतृत्व किया था।

जापानी सत्ताकालकी 'बा मॉ सरकार'के आप रक्षा मन्त्री थे। सन् १९४४ के अगस्त मासमें जापानियोंके विरोधमें 'फासिस्ट विरोधी जनस्वातन्त्र्य लीग' (ए० एफ० पी० एफ० एल०)की स्थापना आपके ही नेतृत्वमें की गयी थी। सन् १९४५ से '४७ तक आप उसके अध्यक्ष थे। सन् १९४५ के फरवरी महीनेसे आपने जापानियोंके विरोधमें मित्रराष्ट्रीय फौजोंको सहायता देना प्रारम्भ कर दिया था। और २७ मार्चको गुप्त रूपसे रंगूनमें जाकर, येनांजाऊँके इलाकेमें क्रान्तिका संचालन करने लगे थे।

युद्धके बाद प्रथम गवर्नर सर रेजिनाल्ड डार्मन स्मिथके असफल वापस होनेपर गवर्नर ह्यूबर्ट रेन्सने जिस परिषदका संघटन सन् १९४६ में किया उसके आप उपाध्यक्ष थे। सन् १९४७ के जनवरी महीनेमें बर्मी स्वतन्त्रताके लिए बातचीत करने आप लन्दन गये थे और वापस होनेपर अप्रैलमें आम चुनाव द्वारा जिस अन्तरिम सरकारका संघटन 'गवर्नर'के संरक्षणमें किया गया उसके भी आप उपाध्यक्ष थे। सन् १९४७ की १९वीं जुलाईको आपकी हत्या कर दी गयी। ऊ आंग सां दृढ़ संकल्पवान और निर्भीक वक्ता थे। आप जन्मजात नेता थे।

मॉ बा खाइंग कयिन नेता और अत्यन्त सुयोग्य वक्ता थे। आप सहृदय और सेवापरायण व्यक्ति थे। अपने व्यक्तित्वकी विविध विशेषताओंके कारण ही आप दोनों समुदायोंमें सम्मानित थे। कयिन तो उन्हें आदर देते ही थे, बर्मी भी इज्जत करते थे।

ऊ बा विन जनरल आंग सांके बड़े भाई थे। आप येनांजाऊँके एक विद्यालयमें अध्यापक थे। आप ईमानदार और दृढ़निश्चयके व्यक्ति थे।

तखिन म्या बहुमुखी प्रतिभाके व्यक्ति थे। आप नैष्ठिक देश-भक्त विद्वान् और कर्मनिष्ठ पुरुष थे। विविध विषयोंका आपने गम्भीर अनुशीलन किया था। सन् १९३६ से सन् १९४० तक

आप व्यवस्थापिका सभाके एक सदस्य थे। सन् १९३८-१९३९में आपने किसानों और मजदूरोंके दलका संघटन किया था।

ऊ म्या

सन् १९४० में आप नजरबन्द किये गये थे। सन् १९४४ में आप बा मॉ सरकारके उपप्रधानमत्री और अखिल बर्मा किसान संघके अध्यक्ष थे। स्वतन्त्र बर्माकी अन्तरिम सरकारके आप 'गृह' और फिर 'वित्त' तथा राजस्व मन्त्री थे।

ऊ बा चो का जन्म सन् १८९३में हुआ। आप विद्यालयोंके डिप्टी इन्सपेक्टर थे। सन् १९२१ में आपने उस पदसे त्याग-पत्र दे दिया। सन् १९२६ में आपने 'डीडोक' पत्रका प्रकाशन किया। उसके एक वर्ष बाद आपने बर्मा पत्रकार संघकी स्थापना की। सन् १९३९ में जो सद्भावना शिष्टमण्डल चीन गया था उसके आप एक सदस्य थे। सन् १९४३ में आप बा मॉ सरकारकी 'प्रिवी कौंसिल'के एक सदस्य ये। सन् १९४६ में राज्यपालने जिस परिषद्का संघटन किया था उसके भी आप एक सदस्य थे।

ऊ बा चो सरलहृदय और साहित्यिक प्रवृत्तिके व्यक्ति थे। सूचनाविभागका काम आपके जिम्मे था। आप जनता और जनरल आंग सांके विश्वास-भाजन थे।

साम्राज्यशाहीपर लोकतान्त्रिक विजय

सन् १९४५ के १६ अक्तूबरके बादसे बर्मामें द्वैध शासनकी अवस्था पैदा हो गयी। एक तरफ गवर्नर सर रेजीनाल्ड डार्मन स्मिथकी रस्मी सरकार काम कर रही थी तो दूसरी ओर जनरल आंग सांकी गैररस्मी। डार्मन स्मिथकी सरकारकी सत्ता 'कागज' पर थी और आंग सांकी देशवासियोंके हृदयोंमें। ३ वर्षोंके ही युद्धकालने बर्मियोंको जो राष्ट्रीय चेतना दे दी थी वह कदाचित् तीन पीढ़ियोंमें भी न मिल पायी होती। मुट्ठीभर गद्दारोंको छोड़कर सम्पूर्ण जनवर्ग दृढ़ संकल्पके साथ 'फासिस्ट विरोधी जनस्वातन्त्र्य लीग' (ए० एफ० पी० एफ० एल०) के साथ था। एक भी ऐसा सरकारी विभाग नहीं बचा था, जिसमें इस दलके सदस्य न हों और जिसका सम्पूर्ण विभागके कार्यकर्त्ताओंपर नियन्त्रण न हो।

ऊ आंग सां और उनके सहयोगियोंने गान्धीवादी अमोघ अस्त्रका प्रयोग करना चाहा। सत्याग्रहका रास्ता अपनाया। लीगकी ओरसे देशव्यापी हड़तालकी योजना तैयार की गयी। यह एक विस्मयजनक घटना थी कि अन्य सरकारी विभागोंके कर्मचारियोंके साथ ही पुलिस विभागके कर्मचारियोंतकने हड़ताल कर दी। रेलगाड़ियोंका आना-जाना रुक गया। पोस्ट आफिसोंके दरवाजे बन्द दीखने लगे। कारखानोंमें सन्नाटा छा गया। पूरे देशका सारा कारबार ठप हो गया। शासनके नामपर कुछ भी नहीं रह गया। सर रेजीनाल्ड डार्मन स्मिथको मुँहकी खानी पड़ी। उन्हें लन्दन वापस बुला लिया गया। आंग सांकी ऐति-

हासिक विजय हुई। यह साम्राज्यशाहीपर लोकतन्त्रकी विजय थी।

सर रेजीनाल्ड डार्मन स्मिथके स्थानपर गर्वनर पदपर सर ह्यूबर्ट रेन्सकी नियुक्ति ब्रिटिश सरकारने की। सर ह्यूबर्ट ब्रिटिश सैनिक शासनकालमें असैनिक मामलोंके प्रमुख अधिकारी थे। आप जनरल आंग सांके प्रशंसक थे और बर्मी स्थितिका आपको अच्छा ज्ञान था। आपने बिगड़ी स्थितिको सँभालने और सुधारनेका मार्ग ढूढ़ना शुरू किया। अपने पूर्वाधिकारी गवर्नरकी असफलतासे भी नसीहत लेनेका आपको मौका था। ऊ आंग सांका बेजोड़ बर्मी नेतृत्व अब छिपा नहीं रह गया था। इसकी धाक सभी मानने लगे थे। सर ह्यू बर्ट और आंग सां एक-दूसरेको जानते थे, यह बात भी स्थितिपर काबू करनेमें सहायक हुई।

सर ह्यू बर्टने आते ही जनरल आंग सांको आमन्त्रित किया और गवर्नर परिषद्‌में सम्मिलित होनेको कहा। आंग सांने सुझावका स्वागत किया और इस तरह नयी परिषद्‌के संघटनसे जनमत सरकारी पक्षमें आ गया। हड़तालें बन्द हो गयीं। वातावरण शान्त हो गया। संयुक्त प्रयाससे काम चलने लगा।

बर्मी राजनीतिक स्थितिके साथ ही ब्रिटेनकी सरकारकी स्थितिमें भी परिवर्तन हो गया। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री सर विन्स्टन चर्चिलने युद्धमें सैनिक विजय तो प्राप्त कर ली थी परन्तु ब्रिटेनका अर्थिक दिवाला निकल चुका था। कदाचित् यह तथ्य माना जाना चाहिये कि किसी भी देशकी आम जनता अपनी आजादी और हार-जीतको निजी सुख-दुःखसे ही सर्वाधिक तौलती है। जिस चर्चिलके प्रधानमन्त्रित्वमें ब्रिटेनके अगणित जवानोंको मोरचोंपर आत्माहुति देनी पड़ी थी और बमवर्षासे अतुलित सम्पत्तिका नाश हुआ था, उसके पक्षमें वहाँकी आम जनता रह जाती, यह सम्भव नहीं था। युद्धके बाद ही ब्रिटेनमें जो संसदीय

निर्वाचन हुआ उसमें मजदूर दलकी जीत हुई और अनुदार दल हार गया। श्री चर्चिलके स्थानपर मजदूरदलीय नेता श्री क्लीमेंट एटली प्रधान मन्त्री हुए।

कुछ तो समयका तकाजा था और कुछ ब्रिटेनकी मजदूर सरकारकी अनुदार दलकी सरकारसे किञ्चित् भिन्न नीति, जिसके परिणामस्वरूप सन् १९४६, २० दिसम्बरको श्री एटलीने घोषणा की कि "बर्माकी राजनीतिक स्थितिपर विचार करनेके लिए एक प्रतिनिधिमण्डल आमन्त्रित किया जा रहा है। उससे विचार-विनिमयके बाद यह निश्चय किया जायगा कि बर्मा ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलके अन्तर्गत एक उपनिवेश रहेगा अथवा उससे बाहर पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें।" बर्मी भ्रममें न रहें तथा विश्वके सामने भी ब्रिटिश रुखका पूर्णतया स्पष्टीकरण हो जाय, इसलिए उपर्युक्त बयानको श्री एटलीने फिर दुहराया और कहा कि "प्रतिनिधिकी हैसियतसे आनेवाले बर्मी नेताओंका यह काम होगा कि वे बर्माकी राजनीतिक स्थितिको निश्चित रूप दें।"

श्री एटलीके आमन्त्रणको बर्मी बहुमतने स्वीकार किया और जनरल आंग सांके नेतृत्वमें एक प्रतिनिधिमण्डल लन्दन गया। यह मण्डल दिल्ली होता हुआ ब्रिटेन गया था, क्योंकि इससे पहले भी आंग सां भारतकी यात्रा कर आये थे और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके चोटीके नेताओंसे विचारोंका आदान-प्रदान कर चुके थे। उस प्रतिनिधिमण्डलको सर्वदलीय कहा जाना चाहिये, क्योंकि 'म्योचिट' दलके नेता ऊ सॉ तथा 'डो बामा असियों'के अध्यक्ष तखिन बा सेंइ भी उसमें सम्मिलित थे।

सन् १९४७ की ९ जनवरीको प्रतिनिधिमण्डल लन्दन पहुँचा और १८ दिनोंतक विचारविमर्श करता रहा। लीगकी बर्माके लिए पृथक् संविधानके निर्माण आदिकी विशेष माँगें मजूर की गयीं। अन्तरिम सरकारके संघटनके निमित्त दो ही महीनेके बाद

अप्रैलमें आम चुनावका निश्चय करके २७ जनवरी, सन् १९४७ को लन्दनमें 'आंग सां-एटली'के ऐतिहासिक समझौतेपर दोनोंके हस्ताक्षर हुए।

तखिन बा सेंइ और ऊ सॉने समझौतेके सम्बन्धमें लन्दनमें ही असन्तोष व्यक्त किया था और वर्मास्थित राजनीतिक दलोंमें भी परस्पर विरोधी भावनाएँ काम कर रही थीं। फासिस्ट विरोधी जनस्वातन्त्र्य लीगके साथ काम करनेवालोंमें भी एक ऐसा पक्ष तैयार हो गया था जो समझौतेसे सहमत नहीं था। उसका कहना था कि समझौता दूषित है। वर्माको जो राजनीतिक स्तर मिलना चाहिये, उसका उसमें अभाव है।

निर्वाचन हुआ उसमें मजदूर दलकी जीत हुई और अनुदार दल हार गया। श्री चर्चिलके स्थानपर मजदूरदलीय नेता श्री क्लीमेंट एटली प्रधान मन्त्री हुए।

कुछ तो समयका तकाजा था और कुछ ब्रिटेनकी मजदूर सरकारकी अनुदार दलकी सरकारसे किञ्चित् भिन्न नीति, जिसके परिणामस्वरूप सन् १९४६, २० दिसम्बरको श्री एटलीने घोषणा की कि "बर्माकी राजनीतिक स्थितिपर विचार करनेके लिए एक प्रतिनिधिमण्डल आमन्त्रित किया जा रहा है। उससे विचार-विनिमयके बाद यह निश्चय किया जायगा कि बर्मा ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलके अन्तर्गत एक उपनिवेश रहेगा अथवा उससे बाहर पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें।" बर्मी भ्रममें न रहें तथा विश्वके सामने भी ब्रिटिश रुखका पूर्णतया स्पष्टीकरण हो जाय, इसलिए उपर्युक्त बयानको श्री एटलीने फिर दुहराया और कहा कि "प्रतिनिधिकी हैसियतसे आनेवाले बर्मी नेताओंका यह काम होगा कि वे बर्माकी राजनीतिक स्थितिको निश्चित रूप दें।"

श्री एटलीके आमन्त्रणको बर्मी बहुमतने स्वीकार किया और जनरल आंग सांके नेतृत्वमें एक प्रतिनिधिमण्डल लन्दन गया। यह मण्डल दिल्ली होता हुआ ब्रिटेन गया था, क्योंकि इससे पहले भी आंग सां भारतकी यात्रा कर आये थे और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके चोटीके नेताओंसे विचारोंका आदान-प्रदान कर चुके थे। उस प्रतिनिधिमण्डलको सर्वदलीय कहा जाना चाहिये, क्योंकि 'म्योचिट' दलके नेता ऊ सॉ तथा 'डो वामा असियों'के अध्यक्ष तखिन बा सेंइ भी उसमें सम्मिलित थे।

सन् १९४७ की ९ जनवरीको प्रतिनिधिमण्डल लन्दन पहुँचा और १८ दिनोंतक विचारविमर्श करता रहा। लीगकी बर्माके लिए पृथक् संविधानके निर्माण आदिकी विशेष माँगें मजूर की गयीं। अन्तरिम सरकारके संघटनके निमित्त दो ही महीनेके बाद

अप्रैलमें आम चुनावका निश्चय करके २७ जनवरी, सन् १९४७ को लन्दनमें 'आंग सां-एटली'के ऐतिहासिक समझौतेपर दोनोंके हस्ताक्षर हुए।

तखिन वा सेंइ और ऊ सॉ ने समझौतेके सम्बन्धमें लन्दनमें ही असन्तोष व्यक्त किया था और बर्मास्थित राजनीतिक दलोंमें भी परस्पर विरोधी भावनाएँ काम कर रही थीं। फासिस्ट विरोधी जनस्वातन्त्र्य लीगके साथ काम करनेवालोंमें भी एक ऐसा पक्ष तैयार हो गया था जो समझौतेसे सहमत नहीं था। उसका कहना था कि समझौता दूषित है। बर्माको जो राजनीतिक स्तर मिलना चाहिये, उसका उसमें अभाव है।

नु-एटली-वार्ता

स्वतन्त्र बर्माकी अन्तरिम सरकार राज्यपाल सर ह्यूबर्ट रेन्सकी छायामें बन चुकी थी। इसका उपाध्यक्ष जनरल आंग सांको बनाया गया था। यह सरकार स्थायी रूप पानेपर राष्ट्रमण्डलके अन्तर्गत रहेगी अथवा बाहर, और उभय दशाओंमें ब्रिटेनकी सरकारके साथ इसका क्या सम्बन्ध होगा, इन्हीं कुछ बातोंपर विचार-विनिमय तथा निश्चय होना बाकी था। सरकारका निर्माण करने तथा इसे लेकर आगे चलनेमें आंग सांको जबरदस्त विरोधोंका सामना करना पड़ रहा था। डो बामा असियोंके तखिन बा सेंइ, म्योचिट दलके ऊ सॉ अलग राग अलाप रहे थे। फासिस्ट विरोधी जनस्वातन्त्र्य लीग (ए० एफ० पी० एफ० एल०) के नेताओंमें भी मतैक्य नहीं था। तखिन सॉने 'लाल कम्युनिस्ट' और तखिन तेंइ पे तथा तखिन तान ठुनने 'साधारण कम्युनिस्ट' दलोंका संघटन कर जबरदस्त विरोधी मोरचे तैयार कर दिये थे। आंग सां अप्रतिम प्रतिभावान् नेता थे, और अपेक्षाकृत सर्वाधिक जनमत उनके पक्षमें था। उनके सहयोगी सच्चे और कर्मनिष्ठ देशभक्त थे। इसलिए वे निर्भीक हो आगे चलते गये।

बर्मी राष्ट्रकी स्थिति उस वक्त गुलाबके पौधे जैसी थी। उसमें यदि काँटे थे तो फूल भी। किन्तु १९ जुलाई सन् १९४७ को सेक्रेटरियट भवनमें जनरल आंग सां, तखिन म्या, मां बा खाइंग, ऊ बा विन, मुहम्मद रजाक, और ऊ बा चो तथा मोपून्के सोबवा (जागीरदार) की हत्याके बाद वृक्ष और काँटे भर रह गये।

ऊ नु उस समय संविधान सभाके अध्यक्ष थे। ऊ आंग सांने जहाँसे कार्य छोड़ा था, ऊ नुने वहींसे सँभाल लिया। 'होइहैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारिन वे फूल'की आशा सँजोये अदम्य साहस, दृढ़ निश्चय और पवित्र संकल्पोंके साथ आपने 'कँटीली डालोंपर डेरा डाल दिया'। बर्मी राष्ट्र फिर वसन्तके दिन देखेगा, ऊ नुकी यह आशा सर्वथा उचित थी; क्योंकि महान् विभूतियाँ तथा नेता आते-जाते रहते हैं, किन्तु राष्ट्र तो बना ही रहता है।

ऊ नुका जन्म सन् १९०६ में हुआ था। आपने सन् १९२९ में रंगून विश्वविद्यालयसे बी० ए० की परीक्षा पास करके अध्यापन कार्य करना प्रारम्भ किया और सन् १९३० में 'डो बमा' पार्टीमें सम्मिलित होकर राजनीतिक क्षेत्रमें प्रवेश किया। रंगून विश्वविद्यालयके छात्रोंने आपको अपना नेता मान रखा था और सन् १९३६ की हड़तालमें आपने उनका नेतृत्व किया। सन १९४० में आपको ब्रिटिश सरकारने नजरबन्द किया था। डाक्टर बा मॉकी युद्धकालिक सरकारके आप सन् १९४३ में परराष्ट्रविभागीय मन्त्री थे और सन् १९४४ में आपने सूचना-विभाग सँभाला था। जापानियोंके विरुद्ध क्रान्ति करनेवाली संस्था 'फासिस्ट विरोधी जन स्वातंत्र्य-लीग'का जब संघटन हुआ तो आप उसके उपाध्यक्ष हुए। सन् १९४७ की व्यवस्थापिका सभाके आप अध्यक्ष थे। ऊ आंग सांकी मृत्युके पश्चात् सन् १९४७ के जुलाई माससे आप गवर्नरकी परिषद्के उपाध्यक्ष और ए० एफ० पी० एफ० एल० के अध्यक्ष हुए।

जापानी आधिपत्यकालीन 'बा मॉ सरकार'के परराष्ट्रमन्त्री और फिर सूचनामन्त्रीके पदोंको सँभालते हुए ऊ नुने अच्छी कार्यपटुताका परिचय दिया था। आप बा मॉके अद्वितीय विश्वासपात्र थे यह बात 'बर्मा जापानियोंके अन्तर्गत' शीर्षक

लिखी आपकी पुस्तकके स्थल-स्थलके वर्णनोंसे प्रमाणित होती है। ऊ नु मद्यपान आदि दुर्गुणोंसे बिलकुल अछूते हैं, यह बात भी उस पुस्तकके उन स्थलोंपर विशेष रूपसे अंकित मिलती है जहाँ बा मॉ हँसते हुए उनपर कटाक्ष करते हैं कि "तखिन नुमें यदि कोई अच्छाई है तो बस केवल यह कि न तो ये पीते हैं और न धूम्रपान करते हैं।"

जापानियोंके उग्र मुद्रामें होनेके समय भी ऊ नु अपने मस्तिष्कका सन्तुलन नहीं खोते थे। जो राजनीतिक उतार-चढ़ाव ऊ नुने देखे और इस प्रकार स्वयं जो अनुभव अर्जित किये थे वे सभी नये गुरुतर दायित्व सँभालनेमें सहायक सिद्ध हुए।

१९ जुलाईके हत्याकाण्डके सन्दिग्ध अभियुक्तोंका अनुमान करना कठिन काम नहीं था। आंग सां दलके सबसे जबरदस्त विरोधी ऊ सॉ कुख्याति पा चुके थे। पुलिस और सैनिक टुकड़ियोंने उसी दिन शामको उनके निवासस्थानको घेरकर उन्हें उनके ९ साथियोंके साथ गिरफ्तार कर लिया। तत्काल डाक्टर बा मॉपर भी सन्देह किया गया था और उन्हें भी पकड़ा गया, परन्तु निर्दोष सिद्ध होनेपर उन्हें शीघ्र ही मुक्त कर दिया गया। ऊ सॉ अपने साथियोंके साथ इन्सिन जेलमें रखे गये।

जस्टिस ऊ चो मिंकी अध्यक्षतामें संघटित एक विशेष अदालतमें उनके मुकदमेकी सुनवाई शुरू हुई। ऊ सॉके साथी अभियुक्तोंमेंसे एक सरकारी गवाह बन गया। उसने सम्पूर्ण रहस्योंद्घाटन कर दिया। उक्त गवाहके बयानका समर्थन तीन अन्य अभियुक्तोंने भी किया। मुकदमेकी सुनवाई २७ दिनोंतक चली। सरकारी पक्षकी ७८ और अभियुक्तोंकी ओरसे सफाईकी ३१ गवाहियाँ गुजरीं। ऊ सॉने लन्दनके श्री कुर्टीस बेनेट, के० सी० को अपना वकील बनाया था। सन् १९४७ की ३० दिसम्बरको मुकदमेकी सुनवाई समाप्त हुई। ऊ सॉ और अन्य आठ-

को फाँसीको सजाएँ सुनायी गयीं । जो अभियुक्त सरकारी गवाह बन चुका था उसे रिहा कर दिया गया । ऊ सॉने फिर अपील की, किन्तु पहली अदालतका ही फैसला बहाल रहा । अभियुक्तोंमेंसे तीनकी ओरसे राष्ट्रपतिके पास आवेदन करके क्षमायाचना की गयी जो अस्वीकार हो गयी । ऊ सॉने अपने छोटे भाईकी मार्फत, जो लन्दनमें थे, प्रिवी कौंसिलमें मामलेको ले जानेकी माँग की, किन्तु इसकी इजाजत नहीं मिली, क्योंकि तबतक बर्मा सम्पूर्णप्रभुसत्तासम्पन्न स्वतन्त्र राष्ट्र हो गया था तथा यहाँके न्यायालयोंके मुकदमोंकी अपील लन्दनमें करनेका अधिकार नहीं रह गया था । ऊ सॉके वकीलने रंगूनके उच्चतम न्यायालयमें अपील करनेकी भी नोटिस दी, किन्तु सब कुछ बेकार हुआ । सन् १९४८ की ८ मई, शनिवारको ऊ सॉ और उनके पाँच साथियोंको फाँसी दे दी गयी ।

ऊ आंग सांकी हत्याके थोड़े ही दिनों पहले ऊ नु लन्दनसे वापस हुए थे । शासनसूत्र हाथमें लेनेके बाद आपने बर्मी संविधान तैयार करनेकी ओर और अधिक ध्यान दिया । सितम्बर मासतक उसके तैयार हो जानेके बाद आपने फिर लन्दन यात्रा की । गवर्नरके निर्देशमें चलती हुई अन्तरिम बर्मी सरकारका रूप बदलना था । ब्रिटेनके साथ बर्माके उत्तमोत्तम सम्बन्ध कायम रखते हुए इसे ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलसे बाहर सम्पूर्णप्रभुसत्तासम्पन्न राष्ट्रके रूपमें रखना था । ऊ नु ब्रिटेनकी तत्कालीन सरकारको इसके लिए सहमत कर सके और १७ अक्तूबर सन् १९४७ को "नू-एटली" समझौता सम्पन्न हो गया । बर्मा सम्पूर्णप्रभुसत्तासम्पन्न, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलसे बाहर, ब्रिटेनका एक मित्रराष्ट्र मान लिया गया । सन् १९४८ की ४ जनवरीको बर्माकी स्वतन्त्र स्थितिकी घोषणा भी कर दी गयी । उसके प्रथम प्रधान मन्त्रीका स्थान ऊ नुने सुशोभित किया ।

नु-एटली समझौता

ग्रेट ब्रिटेनके युनाइटेड किंगडम और उत्तरी आयरलैण्डकी सरकार तथा बर्माकी आरजी सरकार यह समझकर कि बर्माको स्वतन्त्र होनेकी वैधानिक मान्यता देनेके लिए ग्रेट ब्रिटेनकी सरकार संसद्‌की बैठक बुलानेवाली है और ऐसी स्थितिमें दोनों देशोंके बीचके भावी सम्बन्धोंको निश्‍चित करनेके लिए एक सन्धि सम्पन्न करनेके निर्णयपर पहुँचती है अतएव ग्रेट ब्रिटेनकी सरकारकी ओरसे फर्स्ट लार्ड आव दी ट्रेजरी और प्रधान मन्त्री दी राइट आनरेबुल क्लीमेण्ट रिचार्ड एटली, सी० एच० एम० पी० और बर्माकी आरजी सरकारकी ओरसे प्रधान मन्त्री तखिन नु जो निम्नलिखितसे सहमत हैं, इसके लिए सर्वाधिकारी नियुक्त किये जा रहे हैं—

(१)

युनाइटेड किंगडमकी सरकार लोकतान्त्रिक बर्मा संघको सम्पूर्णप्रभुसत्तासम्पन्न स्वतन्त्र राष्ट्रकी मान्यता प्रदान कर रही है तथा दोनों ही सरकारें निश्चय कर रही हैं कि इनके बीच अधिकृत कूटनीतिक प्रतिनिधियोंकी अदला-बदली चालू रहेगी।

(२)

बर्मासे सम्बन्धित किसी प्रकारके भी प्रालेखोंके जो दायित्व अबतक युनाइटेड किंगडमकी सरकारपर रहते आये हैं, अबसे वे बर्माकी आरजी सरकारपर माने जायँगे। बर्माविषयक किसी भी अन्तरराष्ट्रीय प्रालेखके लागू होनेपर जो महत्ताएँ युनाइटेड किंगडमकी सरकारको प्राप्त होती रही हैं, अबसे उनका उपभोग बर्माकी आरजी सरकार करेगी।

(३)

कोई भी व्यक्ति जो इस सन्धिके लागू होनेके समयमें बर्मा संघके विधानके अनुसार वहाँका नागरिक हो या जो आगे चलकर भी हो सकता हो, चाहे वह ब्रिटिश प्रजा ही हो, बर्मा संघ द्वारा स्वीकृत कानूनोंके अनुसार उस नागरिकताको त्याग सकता है। वह व्यक्ति उसके बादसे बर्मा संघका नागरिक नहीं रह जायगा।

बर्माकी आरजी सरकार यह जिम्मेदारी ले रही है कि वह इस सन्धिके लागू होनेके बाद यथासम्भव शीघ्र या अधिकसे अधिक एक सालके भीतर संसद् द्वारा ऐसी विधि-व्यवस्था करेगी जिसके माध्यमसे इस सन्धिके अन्तर्नियम कार्यान्वित किये जा सकेंगे।

(४)

यह समझौता करनेवाली सरकारें रक्षाविषयक मामलेमें उस समझौतेपर अमल करेंगी, जो समझौता २९ अगस्त, १९४७ को दोनोंके बीच सम्पन्न हुआ था, जिसके उपनियम इसके साथ सम्बद्ध हैं, और इस सन्धिके अविकल अंग घोषित किये जा रहे हैं।

(५)

बर्माकी आरजी सरकार यह निश्चय पुनः व्यक्त करती है कि इस सन्धिके लागू होनेकी तिथितक ब्रिटिश प्रजाके जिन-जिन लोगोंको बर्मामें अधिवास (domicile) का अधिकार प्राप्त हुआ रहेगा वे भारत और पाकिस्तानको छोड़कर अन्य किसी भी देशमें होंगे तो उन्हें पेन्शन (निवृत्तिवेतन) प्रपोर्शनेट पेन्शन (आनुपातिक निवृत्तिवेतन), सेवापारितोषिक (ग्रेचिउटीज), पारिवारिक निवृत्तिकोष (फेमिली पेन्शन फण्ड), संचित कोष (प्राविडेण्ट फण्ड), सहायता अवकाश वेतन तथा दूसरी रकमें

जिन्हें बर्माकी आयसे प्राप्त होनेका उन्हें हक होगा, तबतक प्राप्त होती रहेंगी जबतक संघ सरकार कोई नया कानून बनाकर उन्हें रोक न देगी।

(६)

समझौता करनेवाली सरकारें निश्चय करती हैं कि आर्थिक प्रश्नोंके सुलझानेमें निम्नलिखित अन्तर्नियम समाधानके लिए सूत्रका काम देंगे—

१. बर्माकी आरजी सरकार पुनः निश्चय व्यक्त करती है कि वह सेना विभागीय संग्रहागारके सामानके विक्रयका सम्पूर्ण धन युनाइटेड किंगडमकी सरकारको दे देगी। इसके अन्तर्गत ही असैनिक विभागीय सामान भी होंगे। युनाइटेड किंगडमकी सरकार इस बातपर रजामन्दी प्रकट करती है कि वह असैनिक शासन (सिविल सरकार) प्रारम्भ होनेसे प्रशासकीय कार्योंके व्ययकी माँग बर्मी सरकारकी आरजी सरकारसे नहीं करेगी।

२. युनाइटेड किंगडमकी सरकारने साधारण आय-व्ययक-कोष तथा सीमास्थलीय आय-व्ययक-निधिकी कमीकी पूर्तिके लिए जो डेढ़ करोड़ रुपये दिये थे, उसे वह मंसूख कर दे रही है। बर्माकी आरजी सरकारसे उसे जो शेष रकम मिलनी है उसे वह बिना सूदके समान रकमकी २० किश्तोंमें लेगी जिसके भुगतानका काम १ अप्रैल, सन् १९५२ से पहले नहीं शुरू होगा। युनाइटेड किंगडमकी सरकारके इस धनके मंसूख करनेको जो बर्माकी आरजी सरकारपर उसका पावना है, बर्मा सरकार युनाइटेड किंगडमकी सरकारकी ओरसे बर्माकी सुव्यवस्थाओंके व्ययके लिए सहायता मान रही है और बर्मापर ब्रिटिश सैनिक शासन होनेके समय उसने जो कुछ सेवाएँ प्रदान की हैं उसके बदलेका भुगतान कर रही है।

३. बर्माकी आरजी सरकार युनाइटेड किंगडमकी सरकारको

वह सब रकम वापस करनेके लिए सहमत है जो उसने योजनाओं-में खर्च करनेके लिए दिया था। चालू समझौतेके अनुसार रुपये वापस करनेका काम—अभी जिन रुपयोंकी वसूलियाँ या भुगतानें मिल रही हैं—उनसे होगा और शेष बर्माकी आरजी सरकार द्वारा बिना सूदके २० वर्षोंकी समान किश्तोंमें होगा जिनके देनेका काम १ अप्रैल, सन् १९५२ से शुरू होगा।

४. युनाइटेड किंगडमकी सरकार बर्माकी आरजी सरकारको निम्नलिखित कामोंके लिए पुनः धन देने (प्रतिपूरित करने) का काम चालू रखेगी—

(अ) १९४२ में बर्मामें चालू आन्दोलनके समय बर्मी फौजके निमित्त जो सम्पूर्ति और सेवा प्रदान की गयी थी उसके दावेके बदलेमें, और—

(ब) बर्मी फौजके कर्मचारियोंको फौजसे उनकी नौकरी समाप्त कर दी जानेके एवजमें उन्हें जो कुछ देना है।

५. ३० अप्रैल, १९४७ को युनाइटेड किंगडम और बर्मा सरकारके बीच अर्थविषयक जो समझौता हुआ था उसके सभी अन्तर्नियम केवल उनको छोड़कर जो या तो खास तौरपर संशोधित कर दिये गये हैं या जिनका अधिक्रमण कर दिया गया है; ज्योंके त्यों लागू समझे जायँगे।

(७)

(a) All contracts other than contracts for personal service made in the exercise of 'the executive authority of Burma before the coming into force of the constitution of the Union of Burma to which any person being a British subjects domiciled in the United Kingdom or any company, wherever

registered, which is mainly owned, or which is managed and controlled by British subjects so domiciled, was a party or under which any such person or company was entitled to any right or benefit, shall as from that date, have effect as if made by the provisional Government of Burma as constituted on and from that date; and all obligations that were binding on the provisional Government of Burma immediately prior to the said date, and all liabilities, contractual or otherwise, to which that Government was then subject, shall, in so far as any such person or company as aforesaid is interested, devolve on the provisional Government of Burma as so constituted.

(b) In so far as any property, or any interest in any property vested in any person or authority in Burma before the coming into force of the constitution of Burma, or the benefit of any contract entered into by any such person or authority before that date, is there after transferred to, or vested in the provisional or any successor Government of Burma, it shall be so transfered or vested subject to such rights as may previously have been created and still subsist therein, or in respect there of, in favour of any person or company of the status or character described in the preceding sub-article.

(८)

यह समझौता करनेवाली सरकारें इस निश्चयपर पहुँचनेके कारण कि वे वाणिज्य और जहाजरानी-विषयक यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र ऐसी सन्धि करेंगी जो उभय पक्षोंको सन्तोषप्रद हो, इस सन्धिके लागू होनेके पश्चात्की दो वर्षोंकी अवधि अथवा वाणिज्य और जहाजरानीकी सन्धि सम्पन्न होनेतक वाणिज्य-विषयक अपने सम्बन्धोंको इसके साथ सम्बद्ध १ से ३ तककी 'नोट्स'के अनुसार चालू रखेंगी; साथ ही उन्हें यह भी हक है कि वर्तमान सन्धिके लागू होनेके ६ मास बाद कोई भी एक पक्ष जब चाहेगा तीन मास पूर्वकी नोटिस देकर उनमें निहित जिम्मेदारियोंको समाप्त कर सकेगा ।

(९)

समझौता करनेवाली सरकारें इस बातसे सहमत हैं कि वे दोनों देशोंके बीचकी पोस्टल 'सर्विसेज', हवाई डाक सर्विस और मनीआर्डर सर्विस सहित इस समय कायम नियमोंके आधारपर ही चालू रखेंगी और जब कभी किसी देशके विभागीय कार्योंमें किसी प्रकारके परिवर्तनकी आवश्यकता होगी तो वे एक-दूसरेके साथ तालमेल बैठा लिया करेंगी ।

(१०)

बर्माकी आरजी सरकार इस बातसे सहमत है कि वह युद्धकालिक शवाधिस्थानों और स्मारकोंको सुरक्षित कायम रखनेके लिए एक सन्धि सम्पन्न करनेके लिए इससे सम्बन्धित सभी सरकारोंसे विचार-विमर्श करेगी और जबतक सन्धि न हो जायगी तबतक वह 'इम्पीरियल वार ग्रेव कमीशन' को इसके लिए एकमात्र आधिकारिक संस्था मान रखेगी तथा वर्तमान सन्धिके साथ सम्बद्ध नोट्स नं० ४ और ५ के अनुसार उस कमीशनको सम्पूर्ण सुविधाएँ प्रदान करती रहेगी ।

(११)

समझौता करनेवाली उभय सरकारें एक-दूसरेके असैनिक-विमान-वहन विभागोंके प्रति सम्प्रति चालू नियमोंपर ही अमल करेंगी और यदि इस नियमको खत्म करना होगा तो ६ मास पूर्वकी सूचना (नोटिस) देनी पड़ेगी।

(१२)

समझौता करनेवाली सरकारें इस बातपर सहमत हो रही हैं कि वे यथासम्भव शीघ्र एक ऐसा समझौता करेंगी जिससे वे दोहरे करसे बच सकें।

(१३)

वर्तमान सन्धिके अन्तर्गत कोई ऐसी व्यवस्था नहीं की गयी है जो संयुक्त राष्ट्रसंघके चार्टर (राजसूत्र) के अनुसार इनपर आनेवाली जिम्मेदारियोंमें बाधा पहुँचा सके या किसी उस विशेषके लागू होनेमें बाधक बने तो उस परिच्छेदकी धारा ४३ के अनुसार आ सकती है।

(१४)

वर्तमान सन्धिको लागू करने या इसका रूपान्तर प्रस्तुत करनेमें यदि किसी प्रकारका मतभेद उपस्थित होगा और उसका समाधान करनेके लिए समझौता करनेवाली सरकारें सीधे वार्ता-करके निपटानेमें असफल होंगी तथा किसी दूसरे प्रकारके निर्णय-पर न पहुँच सकेंगी तो उस मतभेदको अन्तरराष्ट्रीय न्यायालयके समक्ष रखा जायगा।

युनाइटेड किंगडमकी सरकार द्वारा आवश्यक वैधानिक विधियाँ पूरी की जानेके बाद बर्माके स्वतन्त्र होते ही विलेखन सम्बन्धी कागजोंकी अदला-बदली करके इस सन्धिका विलेखन कर इसे लागू कर दिया जायगा।

इसके साक्षीके रूपमें उपरिलिखित नामवाले सर्वाधिकारप्राप्त व्यक्ति इस सन्धिपर हस्ताक्षर कर रहे हैं और उन्होंने अपनी मुहरें लगायी हैं।

यह सन्धि सन् १९४७ के १७ अक्तूबरको लन्दनमें प्रतिलिपिके रूपमें तैयार की गयी।

हस्ताक्षर–क्लीमेण्ट रिचार्ड एटली
हस्ताक्षर–तखिन नु

१२ फरवरी, संघ दिवस क्यों ?

सन् १९४७ की २७ जनवरीको आंग सां और एटलीने जिस समझौतेपर हस्ताक्षर किया था उसके अनुसार बर्माके लिए एक नये संविधानके निर्माणका रास्ता तो साफ हो गया था परन्तु सीमास्थलीय प्रदेशों और खास बर्माके बीच कैसे सम्बन्ध रखे जायँ इसपर विचार करना अब अत्यावश्यक हो गया था। समझौतेमें इस बातपर विशेष रूपसे संकेत किया गया था कि ब्रिटेनके महामान्य सम्राट्की सरकार और बर्मा सरकारकी इच्छा है कि सीमास्थलीय क्षेत्रोंके निवासियोंकी स्वेच्छया अनुमति प्राप्त कर उन क्षेत्रोंका बर्माके साथ यथासम्भव शीघ्र एकीकरण कर लिया जाय।

सन् १९४७ के फरवरी मासके प्रारम्भमें सीमास्थलीय क्षेत्रोंके बहुसंख्यक नेताओं और बर्माकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्योंकी संयुक्त बैठक पांगलौंगमें हुई। पांगलौंग लोइलमसे ६ मीलकी दूरीपर अवस्थित छोटा-सा कस्बा है। इस महत्त्वपूर्ण सम्मेलनके लिए यह स्थान इस कारण विशेष रूपसे चुना गया कि उन दिनों बर्मा सरकारने विज्ञप्ति कर रखी थी कि असैनिक प्रशासकीय क्षेत्रके किसी स्थानमें राजनीतिक बैठकें नहीं की जा सकतीं। लोइलम इस क्षेत्रके अन्तर्गत था परन्तु पांगलौंग उसके बाहर, इसलिए यह बैठक नहीं की गयी।

शां जनताके प्रतिनिधि शां सोबवा (जागीरदार) तो थे ही, अन्यान्य प्रतिनिधियोंका नेतृत्व यांग्श्वेके सोबवा साओ श्वे ताइक कर रहे थे। कछिन् जनताके नेता डुआ जॉवलॉन, सिमा

डुआ सिन्नानांग, ऊ जी टिंग नान, लावांग ग्रोंग, डुआ जावरिय इत्यादि थे। छिन जनताका प्रतिनिधित्व लुइ मुंग, तांग ज़ा, खुप, कियो मांग और वुम को हाऊ द्वारा किया जा रहा था। बर्मी कार्यकारिणी परिषद्‌की ओरसे जनरल आंग सां, सर मांग जी, ऊ आंग जां वाइ, ऊ टिन ठुट, बॉ खिन मांगले, तखिन वा टिन और कतिपय अन्य सदस्य भी थे।

डुआ सिन्नानांग

पांगलौंग सम्मेलनका प्रारम्भ १९४७ की ८ फरवरीसे हुआ और १२ फरवरी, १९४७ को यह अन्तिम निर्णयपर पहुँचा। यह एक अद्‌भुत अवसर था। इससे पहले जनताके नेतागण कभी भी एक सम्मेलनमें नहीं एकत्र हुए थे। परिगणित क्षेत्र खास बर्मासे एकदम अलग कर दिये गये और अंग्रेजोंका अनुमान था कि दोनों क्षेत्रोंका एकीकरण हो ही नहीं सकता था। उक्त समझौतेकी जिन शर्तोंके अनुसार बर्मा और सीमास्थलीय क्षेत्रोंके सम्बन्धोंमें सामञ्जस्य स्थापित किया गया वे निम्नलिखित हैं—

१९४७ का पांगलौंग समझौता—बर्माके तत्कालीन राज्यपालकी कार्यकारणी परिषद्‌के कतिपय सदस्यों शां, कछिन् और छिन राज्योंके प्रतिनिधियोंका एक सम्मेलन पांगलौंगमें हुआ जिसमें सदस्यगण निम्नलिखित निश्चयपर पहुँचे—

(१) राज्यपाल (गवर्नर) सीमास्थलीय मामलोंपर सलाह देनेके लिए पहाड़ी जातियोंका एक प्रतिनिधि संयुक्त पहाड़ी जाति

संघकी उच्चतम परिषद्का समर्थन प्राप्त होनेपर नियुक्त किया जायगा।

(२) वही सलाहकार, राज्यपालकी परिषद्का एक सदस्य बिना किसी पदके नियुक्त किया जायगा। सीमास्थलीय क्षेत्रोंकी रक्षा तथा परराष्ट्रविषयक मामलोंको वैधानिक रीतिसे कार्य-कारिणी परिषद्के अन्तर्गत लाया जायगा। सीमास्थलीय क्षेत्रोंके प्रतिनिधि उक्त सलाहकारको इसी रीतिसे प्रशासकीय अधिकार भी दिया जायगा।

(३) उस सलाहकारकी सहायताके लिए दो उपसलाहकार, नियुक्त किये जायँगे। ये दोनों सलाहकार, उन जातियोंके प्रतिनिधि होंगे जिनकी सदस्यता प्रमुख सलाहकारको नहीं मिली होगी। यद्यपि उपसलाहकार उन्हीं क्षेत्रोंके मामलोंपर विचार करेंगे जहाँसे प्रतिनिधि होकर वे आये होंगे और मुख्य सलाहकार शेष सभी क्षेत्रोंके मामलोंको देखेंगे किन्तु वैधानिक सिद्धान्तोंको दृष्टिकोणमें रखते हुए अन्ततः सबपर सभी मामलोंकी संयुक्त जिम्मेदारी होगी।

(४) यद्यपि राज्यपाल (गवर्नर) की कार्यकारिणी परिषद्के सदस्यकी हैसियतसे सीमास्थलीय क्षेत्रोंका प्रतिनिधि केवल सलाहकार ही होगा किन्तु जब भी सीमास्थलोंसे सम्बन्धित मामलोंपर विचार किया जायगा, उप-सलाहकारोंको भी कार्य-कारिणी परिषद्की बैठकोंमें सम्मिलित होनेका अधिकार रहेगा।

(५) जैसा ऊपर कहा गया है, यद्यपि राज्यपालकी परिषद्का विस्तार किया जा सकेगा किन्तु जहाँतक सीमास्थलीय क्षेत्रोंकी स्वायत्त-सत्ताका प्रश्न है, यह परिषद् उसके आन्तरिक मामलोंमें किसी प्रकार भी हस्तक्षेप न करेगी। सिद्धान्ततः सीमास्थलीय क्षेत्रोंकी स्वायत्त-सत्ता आन्तरिक प्रशासकीय कार्योंके लिए बिलकुल स्वतन्त्र रहेगी।

(६) संयुक्त बर्माके अन्तर्गत एक कछिन् राज्यकी स्थापनाका प्रश्न यद्यपि विधायिका समितिके विचाराधीन रखा गया है तो भी यह निश्चय किया जा रहा है कि एक ऐसे राज्यकी आवश्यकता है। इस दिशामें प्रथम कदमके रूपमें मचीना और भामो जिलेके उन क्षेत्रोंके प्रशासनके लिए, जो बर्मा सरकारके १९३५ के कानूनके अनुसार दूसरे दर्जेके परिगणित क्षेत्र करार दिये गये हैं, सलाहकार और उपसलाहकारोंसे अनुमति ली जायगी।

(७) सीमास्थलीय क्षेत्रोंके नागरिकोंको वे ही अधिकार और सुविधाएँ सुलभ होंगी जो लोकतान्त्रिक देशोंकी जनताको मूल रूपसे प्राप्त हुआ करती हैं।

(८) इस समझौतेके अनुसार जो कुछ व्यवस्थाएँ स्वीकार की गयी हैं, उनके द्वारा शां राज्य संघ (Federated Shan States) की आर्थिक स्वायत्त-सत्तामें किसी प्रकारका दखल नहीं होगा।

(९) बर्माके भूमिकरकी आमदनीसे कछिन् और छिन पहाड़ी प्रदेशोंको जो कुछ आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये उसमें इस समझौतेके अनुसार किसी प्रकारका दखल नहीं पहुँचेगा तथा राज्यपालकी कार्यकारिणी परिषद् सीमास्थलीय प्रदेशोंके सलाहकार और उप-सलाहकारोंकी सहायतासे इस बातपर विचार करेगी कि उक्त प्रदेशोंको क्योंकर ऐसी सहायता पहुँचायी जाय जो बर्मा और शां राज्य संघके बीच चालू है।

इस प्रकार पांगलौंग समझौतेने बर्मा संघ और सीमास्थलीय क्षेत्र जाँच समितिकी नींव डाली जिसके अध्यक्ष कर्नल डी० आर० रीज विलियम्स, कार्यकारिणी परिषद्के अविभागीय सदस्य आदरणीय ऊ टिन टुट, सी० बी० ई०, सदस्यगण फसपलके उपाध्यक्ष तखिन नु, फसपलके एक वरिष्ठ सदस्य ऊ खिन मांगले, कयिन तरुण संघके नेता सा मिं तेंइ निर्वाचित किये गये।

शां राज्यके मांग पोन जागीरके आदरणीय सोबवा महामहिम राज्यपालके सीमास्थलीय क्षेत्रोंके मामलेके लिए सलाहकार तथा कछिन् राज्यके सीमा डुआ सिन्नानांग, छिन राज्यके ऊ वुम को हाऊ उप-सलाहकार और कयिन राष्ट्रीय संघके नेता सा सांची सीमास्थलीय मामलोंके लिए सदस्य निर्वाचित हुए। इसके बाद ही आवश्यक छानबीन करके इस समितिने २४ अप्रैल, १९४७ को ब्रिटेनके महामान्य सम्राट्की सरकारके समक्ष एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

सीमास्थलीय क्षेत्रोंको खास बर्माके साथ सम्बद्ध कर यह 'संघीय' रूप देनेका निश्चय १९४७ की १२ फरवरीको किया गया था। इसलिए १२ फरवरीको 'संघ-दिवस'की संज्ञा दी गयी है और इस दिन सम्पूर्ण देशमें अवकाश मनाया जाता है।

इस संघके निर्माणमें सीमास्थलीय क्षेत्रोंके नेताओंने स्तुत्य योगदान किया अन्यथा इसका संघटन होना कदापि सम्भव नहीं था। अंग्रेजोंकी चाल थी कि इन क्षेत्रोंको अलग-अलग जागीरोंके रूपमें ब्रिटिश छत्रच्छायाके अन्तर्गत रखा जाय परन्तु स्वातन्त्र्य-प्रेमी इन नेताओंने इस चालको परख लिया और अंग्रेजोंकी एक न चलने दी।

कयिन (करेन) राज्यकी स्थापना

शासन-सूत्र सँभालनेके बाद ही ऊ नु सरकारको जिन विद्रोहोंके कारण सबसे अधिक परेशानी उठानी पड़ी, उनमें 'कयिन-विद्रोह' प्रमुख था। एक वक्त तो कयिन विद्रोहियोंका वर्माकी राजधानी रंगूनके निकट इन्सिनतकपर कब्जा हो गया था। कयिन पहाड़ी जनजाति है जो स्वतन्त्र कयिन राज्यकी स्थापना चाहती है। कयिनोंकी इस माँगको अंग्रेज बढ़ावा देते रहते हैं और चालू विद्रोहके पीछे भी कतिपय अंग्रेज अधिकारियोंका हाथ बताया जा रहा है। सन् १९३१ के बादसे बर्माकी आबादीके ठीक-ठीक आँकड़े प्राप्त नहीं होते हैं। किन्तु अनुमान है कि इस समय यहाँकी कुल आबादी १ करोड़ ८० लाख होगी। सबसे बड़ा समूह बर्मी भाषा-भाषी लोगोंका है, जिनकी संख्या लगभग १ करोड़ १२ लाख है और कयिन २० लाख या इससे कुछ अधिकको संख्यामें हैं। इस प्रकार कयिनोंकी संख्या बर्माके सम्पूर्ण निवासियोंके मध्य दूसरी और यहाँकी आदिवासी अल्पसंख्यक जातियोंके बीच सबसे बड़ी है।

कयिन पहाड़ी क्षेत्रोंके निवासी हैं। इनके गाँव उत्तरमें स्यामके सीमास्थल टौंजीसे लेकर दक्षिणमें मर्गुईतक सैकड़ों मीलके क्षेत्रमें यत्र-तत्र बिखरे बसे हुए हैं। कुछ पीढ़ियोंसे ये लोग मैदानोंमें भी आने लगे हैं और अब एयावडी (इरावदी) नदीके डेल्टा तथा सिट्टौं, तल्वि और अन्य छोटी नदियोंकी घाटियोंमें भी इनकी बस्तियाँ हैं।

बर्मामें ईसाई धर्मावलम्बियोंकी संख्या बहुत काफी है इनमेंसे आधे कयिन, ईसाई हैं। इस देशमें ईसाई धर्मका जो प्रचार हो

रहा है, उसमें कयिन समुदायके नेता अधिक हैं। इनमें अध्यापक, डाक्टर, प्रचारक और उपचारिकाएँ अच्छी संख्यामें हैं। कतिपय कयिन नेताओंका तो कहना है कि ईसाई धर्मके प्रचारकार्यमें रत बर्माके कयिन जैसा स्वावलम्बी समुदाय विश्वमें मुश्किलसे कहीं मिलेगा।

बर्माके उवे (तवाई) क्षेत्रमें बसनेवाले 'कोथाब्यू' नामक कयिनने सन् १८२८ में सबसे पहले ईसाई धर्ममें दीक्षा ली थी। इस प्रकार कयिन उसे अपना ईश्वरीय धर्मदूत मानते हैं। इसके बीच इस प्रकारका श्रीगणेश करनेवाले श्री जडसन थे। आप बर्मामें सन् १८१३ में आ गये थे किन्तु उनको वर्षोंतक कयिन जातिकी बाबत जानकारी नहीं हुई थी। रंगूनमें 'जडसन कालेज' उक्त जडसन साहबकी यादगारमें ही बनाया गया है।

बर्मी राष्ट्रपति ऊ विन मांग कयिन ही रहे हैं। आप जडसन कालेजके ही एक पुराने छात्र रहे हैं। ऊ विन मांगके राष्ट्रपति होनेपर कयिन गर्व करते थे। ऊ विन मांग बौद्ध हैं।

कयिन अंग्रेजोंके अत्यन्त विश्वासभाजन थे। जापानी शासन-कालमें बर्मियोंकी जापान विरोधी क्रान्ति कदापि उस प्रकार सफल न हुई होती यदि कयिनोंका सहयोग न प्राप्त हुआ होता। इस तथ्यको ऊ नुने 'बर्मा अण्डर दी जैपनीज' शीर्षक अपनी पुस्तकके अनेक स्थलोंपर स्वीकार किया है। जापान विरोधी क्रान्तिके लिए लगभग सभी ऐसे हवाई अड्डे, जहाँ खाद्य सामग्री गिरायी जाती थी अथवा छतरीबाज सैनिक मित्रराष्ट्रोंकी ओरसे उतारे जाते थे, कयिन क्षेत्रोंमें ही बनाये गये थे। छतरीबाज मित्र-राष्ट्रीय सैनिक जिस आत्मीयताका व्यवहार कयिनोंसे पाते थे—वैसा बर्मियोंसे नहीं। कयिन उनकी दृष्टिमें स्वधर्मावलम्बी थे। जापानियोंकी हारके बाद जब अंग्रेज फिर आये, यद्यपि अधिक समयतक नहीं टिक सके,—तो जाते-जाते कयिनोंको

स्वतन्त्रताकी माँग करनेके लिए प्रोत्साहित करते गये। उस वक्तके ब्रिटिश प्रधान मन्त्री सर विन्स्टन चर्चिलने कहा था कि "ब्रिटेनके बर्मा छोड़नेके बाद वहाँ राख ही राख रह जायगी।" ऐसी निश्चयात्मक भविष्यवाणी करनेके लिए चर्चिलको इसीलिए अन्तःप्रेरणा मिली थी कि उन्हें बर्मामें चलायी अपनी नीतिकी सफलतापर विश्वास था। जाते-जाते अंग्रेज बहुत बड़ी मात्रामें शस्त्रास्त्र कयिनोंके पास छोड़ते गये थे। क्षेत्रकी प्राकृतिक स्थिति कयिनोंके अनुकूल थी। पहाड़ी गुफाओंमें वे शस्त्रास्त्र छिपाकर सुविधापूर्वक रख सकते थे और वही उन्होंने किया भी।

सन् १९४९ की २६ जनवरीको कयिनोंने टाँगू शहरपर घेरा डाला और दूसरे दिन २७ जनवरीको उसपर कब्जा कर लिया। कदाचित् एक सप्ताह भी नहीं हुआ कि उन्होंने टाँगू जिलेके सम्पूर्ण क्षेत्रपर कब्जा कर लिया।

ऐसी ही द्रुति गतिसे वे अन्य क्षेत्रोंपर भी कब्जा करते गये। कयिन आन्दोलनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि निम्नलिखित प्रकार है—सन् १९२७-२८ में एक गण्यमान्य कयिन नेता डाक्टर सर सां सी० पोने 'बर्मा ऐण्ड दी करेन्स' नामक पुस्तक लिखी थी। इसमें उन्होंने कयिनोंके लिए एक पृथक् राज्यके निर्माणका समर्थन किया था। उन्होंने यह भी निर्दिष्ट किया था कि यदि 'तनासरिम डिविजन' इन्हें मिल जाय तो ठीक रहे। बर्मियोंसे अलग रहनेकी धारणा तो कयिनोंमें पहलेसे काम करती ही आ रही थी और सर सां सी० पोकी पुस्तकने उसे और पुष्ट किया। वे 'अलग राज्य'के माँगकी पृष्ठभूमि तैयार करनेमें लग गये। ब्रिटिश सरकारके सामने कयिन अपनी माँग रखने ही वाले थे कि सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और ब्रिटेन उसमें उलझ गया।

सन् १९४२ के प्रारम्भमें जब ब्रिटिश सरकारने बर्मा खाली

कर दिया तो कयिनोंको भाँति-भाँतिकी यातनाओंका सामना करना पड़ा। मौंम्या और प्यापोनके कयिन अत्यन्त निर्दयताके साथ सताये गये, ऐसा उनका बर्मियोंपर दोषारोपण है। अलग कयिन राज्यकी उनकी कामना अब और बलवती हो गयी। उन्हें यह निश्चय हो गया कि जबतक उनका अलग राज्य न होगा, राजनीतिक दृष्टिसे वे सुरक्षित नहीं रह सकेंगे।

बीसवीं शतीके प्रारम्भसे ही 'करेन नेशनल असोसियेशन' नामकी एक संस्था थी, किन्तु निष्क्रियताके साथ-साथ इसमें निर्भीकता भी आ गयी थी। इसलिए कयिनोंने सन् १९४२ में 'करेन सेण्ट्रल आर्गनाइजेशन'की स्थापना की। बर्मियोंसे तो ये क्षुब्ध रहते थे ही, जापानियोंके कठोर व्यवहारोंसे और अधिक दुःखी हुए। फलतः बर्मियों द्वारा शुरू की गयी जापान विरोधी क्रान्तिमें उन्होंने सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। सन् १९४५ में जापानी आत्मसमर्पणतक 'पृथक् कयिन राज्य'की माँग दबी रही और बर्मी-कयिन संयुक्त शक्तिका उपयोग जापानके विरोधमें होता रहा। बर्मापर अंग्रेजी सत्ताकी पुनः स्थापना होनेपर यहाँकी अन्य जन-जातियोंकी अपेक्षा कयिनोंको सर्वाधिक मनोवैज्ञानिक प्रोत्साहन मिला और इन्होंने अलग 'कयिन राज्य' की माँगके लिए आवाज बुलन्द की। कयिनोंके तत्कालीन लब्धप्रतिष्ठ नेता सा बा ऊ जीके नेतृत्वमें एक शिष्टमण्डल लन्दन गया, परन्तु वह विफल वापस आ गया। इस विफलतासे कयिन और अधिक मर्माहत दीखने लगे और उन्होंने करेन सेण्ट्रल आर्गनाइजेशनका नाम बदलकर के० एन० यू० (करेन नेशनल यूनियन) रख दिया। इस यूनियनने स्वयंसेवकोंका अलग दल भी स्थापित किया, जिसे के० एन० डी० ओ० (करेन नेशनल डिफेन्स आर्गनाइजेशन) कहा जाता है। दोनों संस्थाओंने थोड़े समयमें ही कल्पनातीत शक्ति संचित कर ली। के० एन० यू० ने कयिनोंमें राजनीतिक

चेतनाकी लहर दौड़ा दी तो के० एन० डी० ओ० ने सैनिक संघटनको परिपूर्णता प्रदान की।

सा बा ऊ जीके नेतृत्वमें के० एन० यू० और के० एन० डी० ओ० 'पृथक् कयिन राज्य'की माँगके लिए जब आन्दोलन जारी किये हुए थे तो उन्हीं दिनों कुछ कयिन इस पक्षमें भी थे कि बर्मियोंसे अलग रहना उचित नहीं है। उन्होंने एक और संस्था 'करेन यूथ लीग'की स्थापना की, जिसके अध्यक्ष भूतपूर्व बर्मी राष्ट्रपति ऊ विन मांग निर्वाचित किये गये थे। के० एन० यू० की आवाज इतनी जोरदार नहीं मालूम होती थी कि बर्मा सरकार उसपर यथोचित ध्यान देती। कयिनोंके दो हिस्सोंमें बँट जानेके कारण यह आवाज और धीमी लगती थी। फिर भी आवश्यक जाँचके लिए डाक्टर बा ऊकी अध्यक्षतामें एक आयोगका निर्माण किया गया। एक ओर आयोग अपना काम शुरू कर चुका था और दूसरी ओर के० एन० यू० तथा के० एन० डी० ओ० अपना कार्य।

फलस्वरूप आयोगकी रिपोर्ट पेश होनेसे पहले ही के० एन० डी० ओ० ने सशस्त्र क्रान्ति प्रारम्भ कर दी। सन् १९४८ के जनवरी मासके अन्तमें सशस्त्र संघर्षका श्रीगणेश हो गया। के० एन० डी० ओ० की ऐसी शक्ति थी कि एक ही मासके भीतर उन्होंने उधर टाँगूसे लेकर सम्पूर्ण मध्य बर्मापर (माण्डले-स्यंमा-तक) और इधर म्यिन् ज़ां क्षेत्रमें भी अधिकार जमा लिया। इसके बाद अप्रैल मासके अन्तमें उन्होंने टाँगू जिलेसे दक्षिणकी ओर बढ़ना आरम्भ किया और पेगूके सन्निकटके फयाजी-फयागले स्टेशनतकका क्षेत्र उनके कब्जेमें आ गया। कयिन और बर्मा सरकारकी सैनिक शक्तियोंके संघर्षके इतिहासमें सबसे भीषण युद्ध यांगलेविनके मोर्चेपर हुआ था। दोनों पक्षोंकी शक्तियाँ समान थीं। दो दिन और तीन राततक आयुधोंकी बौछारें चलती रहीं

और अन्ततः सरकारी फौज पीछे हट गयी। उक्त क्षेत्रपर कयिनोंका आधिपत्य हुआ।

कयिनोंके पास सीमित सामग्री थी। यदि उन्हें विदेशी सहायता मिलती भी रही हो तो लुक-छिप कर। परन्तु बर्मा सरकार विश्वमें मान्यताप्राप्त सरकार थी। वह कहींसे भी ऋण लेकर त्रुटियोंकी पूर्ति कर सकती थी और उसने वही किया। उसे सर्वाधिक सामयिक सहायता भारतसे मिली और वह क्रान्तिका दमन करनेमें धीरे-धीरे अग्रसर होने लगी। कयिनोंने इन्सिनतकपर, जो रंगूनसे केवल १० मील दूर है, कब्जा कर लिया था। रंगून शहर घिर गया था। इन क्षेत्रोंपर फिर सरकारी अधिकार हो गया। इसके बाद अन्य क्षेत्रोंमें बर्मी फौजें प्रगति करने लगीं और ये ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गयीं, क्रान्तिकारी पहाड़ी क्षेत्रोंमें प्रवेश करने लगे, जहाँ एक बड़ी संख्यामें वे आज भी हैं।

सरकारी फौजोंका कब्जा रेलवे लाइनों और राजमार्गोंके किनारे हो जानेसे ही क्रान्तिकी समाप्ति नहीं समझी जा सकती थी। पहाड़ियोंमें चले जानेपर भी कयिनोंने अपना फौजी संघटन जारी रखा। भीतर ही भीतर आग सुलगती रही। 'बा ऊ कमीशन' की रिपोर्टपर भी विचार करना जरूरी था। कयिन नेताओंके सामने दो विकल्प रखे गये, एकके अनुसार उन्हें अपना प्रतिनिधि संसद्में भेजनेका हक था और दूसरेके अनुसार बर्मी राष्ट्रके अन्तर्गत कयिन राज्य (स्टेट)की मान्यता दी जा रही थी। नेताओंने 'राज्य'के सुझावकी स्वीकृति दी और सन् १९५३ से अलग कयिन राज्यका निर्माण कर दिया गया। प्यापोन इस राज्यका केन्द्रीय नगर है। इसके पास-पड़ोसका क्षेत्र उक्त राज्यके अन्तर्गत आता है। कतिपय कयिनोंका कहना है कि इस क्षेत्रके पानेसे कयिनोंकी आकांक्षाकी अल्प तृप्ति भी नहीं हुई है। यहाँ मलेरियाका प्रकोप रहता है। एक बार एक आलोचक कयिनने

बात-चीतके प्रसंगमें यहाँतक कह डाला कि 'वहाँ आदमियोंकी अपेक्षा बन्दर अधिक हैं'। यह विचारधारा इस बातकी द्योतक है कि जो क्षेत्र राज्यके लिए पृथक् कर दिया गया है, कयिन उतनेसे सन्तुष्ट नहीं हैं।

बर्मा संघके संविधानके अनुसार कोई भी राज्य १० वर्षोंके बाद संघसे बिलकुल अलग अस्तित्व रख सकता है। अन्य राज्योंकी भाँति 'कयिन राज्य'का अलग विभाग रहा है। इसका अलग 'राज्यप्रमुख' रहा है और उसके सहायक मन्त्री हैं। शासन-व्यवस्थाके लिए एक डिप्टी कमिश्नर प्यापोनमें है। उसकी मातहतीमें अन्य अधिकारी तथा कर्मचारी हैं। आर्थिक दृष्टिसे यह राज्य स्वतन्त्र है। कयिनोंका एक पुराना राज्य भी है। पहले इसे कयिनी राज्य (स्टेट) कहा जाता था। लोयको इसका मुख्य नगर है। अब इसे कया राज्य कहते हैं।

जनरल ने विनका शासनकाल

सन् १९४७ की १९ जुलाईको जनरल आंग सां और उनके साथियोंकी हत्याके पश्चात् ऊ नुने "होइहैं बहुरि बसन्त ऋतु इन डारिन वे फूल"की जिस आशासे बर्मी राष्ट्रकी शासन-सत्ता सँभाली थी वह दुराशाके रूपमें परिणत होती गयी। गृह-कलह चलता ही रहा। सम्पूर्ण देशमें पूर्ण रूपसे शान्ति किसी समय भी स्थापित नहीं हो सकी। गृह-कलह कभी उग्र रूप ले लेता तो कभी मन्द पड़ जाता था। कयिन-विद्रोहके पीछे तो पश्चिमी राष्ट्रोंका हाथ था और पी० बी० ओ० के विद्रोहके मूलमें अवसरवादिता थी, परन्तु वामपक्षियों (कम्युनिस्टों) का मतभेद सैद्धान्तिक था। ये मार्क्सवादी सिद्धान्तोंके अनुगामी और राष्ट्रको इसी साँचेमें ढालनेके व्रती दीखते हैं।

जनरल आंग सांने ब्रिटिश प्रधान मन्त्री क्लीमेण्ट एटलीके साथ बर्मी स्वतन्त्रता सम्बन्धी जो समझौता किया था उसमें ब्रिटेनके साथ बर्माका सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध कायम रहनेकी गन्धतक वामपक्षीय नेताओंको पसन्द नहीं थी। उन्होंने उसी समयसे आंग सां विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था। सन् १९४२ में जापानियोंके विरोधमें क्रान्ति करनेके लिए जब 'फसपल' का संघटन किया गया था तो सभी नेता एक साथ थे, परन्तु युद्धके बाद ही मार्क्सवादी विचारधारावाले अलग हो गये और उन्होंने 'फसपल' से पृथक् कम्युनिस्ट पार्टीका संघटन कर लिया। आंग सांके नेतृत्वमें स्वतन्त्र बर्माकी अन्तरिम सरकारका निर्माण करनेके लिए सन् १९४८ के अप्रैल महीनेमें जब देशव्यापी आम

निर्वाचन हुआ तो यह दल 'फसपल' के विरुद्ध चुनाव भी लड़ा था।

फिर ऊ नु और श्री एटलीके बीच जो समझौता हुआ तथा जिसके अनुसार सन् १९४८ में ४ जनवरीको ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके बाहर बर्मा सम्पूर्णप्रभुसत्तासम्पन्न राष्ट्र घोषित किया गया उससे वामपक्षीय दल और अधिक क्षुब्ध हो गया। इससे दो ही महीने बाद मध्यबर्माके एक नगर पिन्मनामें इस दलने एक सम्मेलनका आयोजन किया जिसमें समझौता-विरोधी प्रस्ताव स्वीकार किये गये। कम्युनिस्ट नेता तखिन तान ठुन और उनके साथियोंने सार्वजनिक रूपसे ऊ नु तथा उनके साथियोंकी कटु आलोचनाएँ कर 'नु-सरकार'के विरोधमें आन्दोलन शुरू कर दिया। इस आन्दोलनका प्रारम्भिक रूप तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन जैसा प्रतीत हुआ परन्तु आगे चलकर इसने उस सशस्त्र सैनिक क्रान्तिका रूप ले लिया जो अबतक न पूर्ण रूपसे दबायी जा सकी और न तो उभय पक्षोंके बीच समझौता करके ही इसका अन्त किया जा सका।

वामपक्षीय आन्दोलन—वामपक्षीय दल सविनय अवज्ञा आन्दोलन चालू रखनेके समयसे ही सशस्त्र सैनिक क्रान्तिकी भी तैयारियाँ करता आ रहा था और इसके लिए उसके पास सभी साधन मौजूद थे। युद्धकालमें जापान विरोधी क्रान्तिका सर्जन करने अथवा उसे सक्रिय रूप देनेमें वामपक्षीय दलके बहुसंख्यक नेताओं एवं कार्य-कर्ताओंका योग था। क्रान्तिके दिन बीत जाने तथा अंग्रेजोंका पुनरागमन होते ही एक ओर तो ब्रिटिश गवर्नर और बर्मी नेताओंमें मतभेद प्रारम्भ हो गया था, दूसरी ओर क्रान्तिकारियोंमें भी परस्पर भेदभाव प्रारम्भ हो गया। परिणामस्वरूप वामपक्षीय विचारधाराके बर्मी नेताओंमें विरोधी-भावना तभीसे निरन्तर काम करती आ रही थी और ये उसकी तैया-

रियाँ भी करते आ रहे थे। पिन्मना महासभाके बाद जब 'ऊ नु सरकार' ने वामपक्षियोंकी गिरफ्तारी शुरू कर दी और तो वे अन्तर्धान होने लगे। सरकारकी ओरसे 'बर्मी-साम्यवादी' दल अवैधानिक घोषित कर दिया गया और साम्यवादियोंके पास जो हथियार थे उनसे उन्होंने पुलिस और सैनिक टुकड़ियोंका मुकाबला करते हुए नगरों, गाँवों और सरकारी शस्त्रागारों तथा खजानोंको लूटना प्रारम्भ कर दिया। उनका यह क्रम अबतक-जारी रहा है। वे क्षीणवल अवश्य हो गये हैं पर उनके और सरकारके बीच मतभेद अब भी बना हुआ है। बीच-बीचमें 'नु सरकार' ने क्षमा-दानकी घोषणाएँ और व्यवस्थाएँ भी की थीं, जिसके फलस्वरूप पी· बी· ओ· के फरार सदस्योंने प्रकट होकर सरकारसे समझौता भी कर लिया, परन्तु साम्यवादी दल समझौते-की शर्तें तय करनेमें ही लगा रहा और वह सामने नहीं आया। आज तो वामपक्षी लोग पुनः पूर्ण विद्रोह कर बैठे हैं और सरकार उनके दमनपर तुली हुई है।

सत्ताकी होड़—बर्मामें उक्त बाह्य विद्रोहके अतिरिक्त अन्तर्विद्रोह भी अनवरत चल रहा है। यहाँके जिस सत्तारूढ़ राजनीतिक दल 'फसपल'ने शासनसूत्र ले रखा था उसमें भी दो विचारधाराओं-के व्यक्ति कार्य कर रहे थे। इस तरह एक ही म्यानमें दो तलवारोंकी स्थिति थी। एक दलके नेता ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइ थे और दूसरेके स्वयं प्रधान मन्त्री ऊ नु। इन सबमें ऊ नु वय और अनुभवकी दृष्टिसे सबसे बड़े थे। ऊ नुकी यह विशेषता और साम्यवादियोंके प्रति दोनों दलोंका दृष्टिकोण समान रूपसे विरोधी होनेके कारण दोनोंका साथ निभता रहा। पर यह स्थिति अनिश्चित कालतक बिना कलहकी बनी नहीं रह सकती थी। अतएव थोड़े ही दिनोंमें मतभेदके एक-न-एक कारण उपस्थित होने लगे। ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइ एक-न-एक विभागके मन्त्री

होनेके साथ-साथ उपमन्त्री भी वर्षोंतक रहे। विचारोंमें परोक्ष रूपसे ही सही, भेद होनेके कारण अपना-अपना पक्ष सबल रखनेकी चिन्ता दोनों दलोंके नेताओंको सर्वदा रहती थी। यदि यह कहा जाय कि बर्मा सरकारका एक भी विभाग दलबन्दीसे अछूता नहीं था तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। इस दलगत राजनीतिसे पद एवं अर्थलोलुप कुछ अधिकारी स्वभावतः अनुचित लाभ भी उठाते रहे। आखिर वह दिन भी आ गया जब नेतागण अपने अनुयायियोंके दोष ढँकने और उन्हें अनुचित प्रोत्साहन देने लगे। अब शासन-व्यवस्था दूषित होनेके साथ ही 'फसपल'के संघटनमें भी दोष आने लगा जिसका कुप्रभाव सम्पूर्ण देशकी जनतापर पड़ा और इस दलके पदाधिकारियोंमें भी खींचा-तानी एवं कुचक्र शुरू हो गये।

'फसपल'में दो दल—सन् १९५८ के फरवरी मासमें 'फसपल'-के वार्षिक महाधिवेशनके अवसरपर महामन्त्रीके निर्वाचनके प्रश्न-को लेकर मतभेदकी कटुता इतनी तीव्र हो गयी कि अधिवेशनके असफल होनेकी सम्भावनाएँ दिखाई देने लगीं और ऊ नुने नेतृत्व त्याग देनेतककी घोषणा कर दी। महामन्त्री पदके लिए दो उम्मीदवार थे; एक तखिन चौ डुन और दूसरे तखिन ता खिन। चौ डुन ऊ नुके अनुयायी और तखिन 'स्वे एँइ' पक्षके सम्मानित कार्यकर्ता हैं। लम्बी बहसके बाद चौ डुनको महामन्त्री चुनकर समस्या हल कर दी गयी। महाधिवेशन तो समाप्त हो गया, किन्तु वहींसे 'फसपल' दो दलोंमें स्पष्टतः विभक्त दिखाई देने लगा। जो आग वर्षोंसे भीतर ही भीतर सुलगती आ रही थी उसकी लपट अब बाहर आ गयी और कभी तीव्र और कभी मन्द दिखाई देने लगी। 'फसपल'की कार्यकारिणीकी बैठकोंमें एक पक्ष दूसरेके विरोधमें नारे बुलन्द करने लगा।

सन १९५८ के अप्रैल मासमें 'फसपल'की कार्यकारिणीकी

एक बैठकमें ऊ नु और 'स्वे एँइ' नेताओंमें इस हदतक खींचतान हुई कि एक पक्ष दूसरेपर आरोप-प्रत्यारोप करनेपर तुल गया। 'स्वे एँइ' नेताओंका कहना था कि 'फसपल'में उत्पन्न फूटके लिए ऊ नु जिम्मेदार हैं और ऊ नुका कथन था कि इसका उत्तरदायित्व 'स्वे एँइ'पर ही है। फलतः 'फसपल' सदाके लिए दो स्वतन्त्र दलोंमें विभक्त हो गया।

इन नेताओंके पारस्परिक मतभेदके कारण बर्माका राजनीतिक वातावरण अत्यन्त विषम बन गया। सत्तारूढ़ दलके दो पक्षोंमें बँट जानेके कारण यह प्रश्न पैदा होने लगा कि 'शासनकी बागडोर किस पक्षके हाथमें रहे ? कौन प्रधानमन्त्री पदपर आसीन रहे और सरकार बनाये तथा संचालित करे ?' इससे एक प्रकारका वैधानिक संकट उपस्थित हो गया। बर्माकी जिस संसद्ने ऊ नुको प्रधान मन्त्री निश्चित किया था, बिना उसकी अमुमति प्राप्त किये नया मन्त्री पद-भार नहीं सँभाल सकता था और सत्तारूढ़ दल 'फसपल'के बहुसंख्यक सदस्योंके विरोधी रुख अपनानेके कारण ऊ नु उस पदपर बने नहीं रह सकते थे। अन्ततः ५ जून, सन् १९५८ को बर्मी संसद्का विशेष अधिवेशन बुलाया गया, जिसमें ऊ बा स्वेने ऊ नुके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव रखा।

'फसपल'में 'स्वे एँइ' पक्षका बहुमत था इसका ज्ञान ऊ नुको पहलेसे था। इसलिए मतभेद प्रारम्भ होनेके समयसे ही उन्होंने राष्ट्रीय संयुक्त मोरचा (एन० यू० एफ०)के नेताओंके साथ बात-चीत शुरू कर दी थी। वे इस दलकी सहानुभूति प्राप्त करनेमें सफल भी हुए। चार दिनों बाद जब ९ जूनको उक्त प्रस्तावपर मतदान हुआ तो ऊ नु ८ मतोंसे विजयी हुए।

बर्मी संसद्में कुल २४६ सदस्य हैं। इनमें 'स्वे एँइ' दलके ११९, ऊ नु दलके ८३ तथा राष्ट्रीय संयुक्त मोरचाके ४४ सदस्य हैं। ९ जूनकी विजयके पश्चात् ऊ नु प्रधान मन्त्री पदपर बने रहे

लेकिन 'स्वे ऐँइ' पक्षकी विरोधी भावना भी बराबर काम करती रही। प्रत्येक सरकारी विभागके कर्मचारी दो दलोंमें विभक्त दीख पड़ने लगे। ऊ नु और 'स्वे ऐँइ' नेताओंके दौरे भी शुरू हो गये। ऊ नुने सम्पूर्ण ऊपरी बर्मा, कछिन् राज्य और इरावदीकी तराईके कुछ नगरोंका दौरा एक ही यात्रामें किया और सर्वत्र उनका भव्य स्वागत हुआ।

इस दौरेसे ऊ नु जब २२ सितम्बरको रंगून वापस पहुँचे तो वहाँका वातावरण बिलकुल बदला हुआ मिला। उन्होंने स्थितिका अध्ययन किया और चार दिनोंके गम्भीर विचार-विनिमयके पश्चात् २६ सितम्बरको प्रधान सेनापति जनरल ने विनको पत्र लिखकर आमन्त्रित किया कि वे प्रधान मन्त्रीका पद सँभालें। जनरल ने विनने पत्रका उत्तर देते हुए कहा कि "मैं यद्यपि राजनीतिसे अलग रहना ही पसन्द करता हूँ फिर भी आपके विचारोंके प्रति आदर होनेके कारण मैं आपके सुझावको स्वीकार करता हूँ।" ऊ नुने अपने पत्रमें जिन अन्य बातोंका उल्लेख किया था उन सबका एक-एककर जनरल ने विनने उत्तर दिया और सेनाको राजनीतिसे अलग रखने, सरकारी विभागोंमें व्याप्त भ्रष्टाचारको यथाशक्ति दूर करने, बर्माकी परराष्ट्र नीतिको पूर्ववत् तटस्थ रखने और ६ मासके अन्दर अर्थात् अप्रैल, १९५९ के अन्ततक सम्पूर्ण देशमें आम निर्वाचनकी व्यवस्था कर देनेके लिए यथासम्भव प्रयत्नशील होनेका विश्वास दिलाया।

ऊ नुका आमन्त्रण स्वीकार करते हुए भी जनरल ने विन तबतक प्रधान मन्त्री पद नहीं सँभाल सकते थे जबतक संसद् द्वारा निर्वाचित नहीं होते। इसलिए ऊ नुने राष्ट्रपति ऊ विन मांगको संसद्की विशेष बैठक बुलानेकी राय दी। विधानके अनुसार संसद्की विशेष बैठक बुलानेके लिए एक मासकी पूर्वसूचना होनी चाहिये। इसलिए २८ सितम्बरको सूचना विज्ञापित कर

२८ अक्तूबरको राष्ट्रपतिने संसद्‌का अधिवेशन बुलाया।

फ़रवरी १९५८ में होनेवाले 'फसपल'के अधिवेशनके बाद यह दल जिन दो पक्षोंमें बँट गया था उनमेंसे एकका नामकरण 'विशुद्ध फसपल' और दूसरेका 'स्थायी फसपल' किया गया था। 'विशुद्ध फसपल'के नेता ऊ नु और तखिन टिन थे और 'स्थायी फसपल' के ऊ चौ एँइ और ऊ बा स्वे। इसलिए जब ऊ नुने जनरल ने विनको प्रधानमन्त्रित्व सुपुर्द करना चाहा तो 'स्थायी फसपल'के नेताओंकी अनुमति एवं स्वीकृति प्राप्त कर लेना भी अनिवार्य था। आपने यही किया। २६ सितम्बरको जनरल ने विनको पत्र लिखनेसे पहले ही आपने 'स्वे एँइ' नेताओंसे परामर्श कर लिया था और उन्होंने ने विनके प्रधान मन्त्री होनेका समर्थन करनेका वचन दिया था। अतएव २८ अक्तूबर १९५८ को संसद्‌के अधिवेशनमें जब ऊ नुने ने विनके प्रधानमन्त्री चुने जानेका प्रस्ताव रखा तो 'फसपल'के दोनों दलोंके सम्पूर्ण सदस्यों तथा 'नफ' (एन. यू. एफ.)के बहुसंख्यक सदस्योंने इसके पक्षमें मत दिया। परिणामस्वरूप ने विन प्रधान मन्त्री निर्वाचित कर लिये गये।

ऊ नुने जनरल ने विनको प्रधानमन्त्री चुने जानेके मिमित्त प्रस्ताव उपस्थित करते हुए तत्कालीन देशव्यापी स्थितिका सजीव चित्र सामने रखा और बताया कि किन परिस्थितियोंमें मैंने त्यागपत्र देने और ने विनको भार सँभालनेके लिए बुलानेका निश्चय किया। आपने कहा कि स्थिति इतनी जटिल बन गयी थी कि ने विनको आमन्त्रित करनेके सिवाय और कोई विकल्प नहीं रह गया था।

२९ अक्तूबरको ऊ नु मन्त्रिमण्डलने त्यागपत्र दिया और ने विन तथा उनके साथी मन्त्रियोंने पद-भार सँभालनेकी शपथ ग्रहण की।

३१ अक्तूबर १९५८ को बर्मी संसद्‌का अधिवेशन बुलाया गया था, जिसमें प्रधान मन्त्री ने विनने अपने प्रथम भाषणमें अपनी सरकारकी नीतियोंका स्पष्टीकरण किया। मैंने पद-भार सँभालनेकी स्वीकृति क्यों दी, इसपर प्रकाश डालते हुए आपने कहा कि धीरे-धीरे देशकी स्थिति वैसी ही बन चली थी जैसी कयिन विद्रोहके समय सन् १९४८-४९ में हो गयी थी। अबसे छ मास पहले, जबसे सत्तारूढ़ राजनीतिक दल 'फसपल'के नेताओं-में फूट हुई, स्थिति बिगड़ने लगी और धीरे-धीरे दुर्व्यवस्था उत्पन्न हो गयी। जो लोग एक साथ मिल-जुलकर काम करते थे, एक-दूसरेको सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगे, यहाँतक कि वे एक-दूसरेके जानी दुश्मन बन गये। देशके कुछ क्षेत्रोंके राजनीतिक कार्य-कर्ताओंमें तो इतना मतभेद बढ़ गया कि वे कभी-कभी खूँखार वृत्ति अपना लेते थे।

ने विनने कहा कि इस स्थितिसे कुछ लोग नाजायज फायदा उठाने लगे। जिन विद्रोहियोंने विगत १० वर्षोंसे क्रान्ति मचा रखी है उन्होंने सन् '५७ और '५८ के प्रारम्भमें यह अनुभव किया कि क्रान्ति कर उन्होंने भूल की थी। इस प्रकार वे लाभा-न्वित नहीं हो सकते थे। उन्होंने समूहोंमें आकर आत्मसमर्पण करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु 'फसपल'में फूट देखकर वे इससे लाभ उठानेकी आशामें पड़ गये। अब वे आत्मसमर्पण करनेके बदले मोल-तोल करने लगे। जिस साम्यवादी दलने शान्तिविषयक बातचीत करनेके लिए प्रतिनिधि भेज रखा था उसने सहसा ध्वनि बदल दी और नयी माँगें पेश करना प्रारम्भ कर दिया। पीपुल्स कामरेड पार्टीके क्रान्तिकारियोंने आत्मसमर्पण किया, परन्तु वे सच्चे दिलसे सरकारसे नहीं मिले। उन्होंने जिन हथियारोंके साथ आत्मसमर्पण किया है उनमेंसे ७० प्रतिशत बेकार हैं और अच्छे हथियार तो उन्होंने जंगलमें ही छोड़ दिये हैं।

पी० सी० पी० के सदस्य केवल आतंक पैदा करनेके लिए बाहर आये हैं। ऐसा करके उन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपोंमें रहकर आतंक जारी रखनेकी योजना तैयार की है। बागी कयिनोंने भी इस स्थितिसे लाभ उठानेमें कोई कसर नहीं रखी है। ने विनने बताया कि राजनीतिक फूटने सरकारी शासन-व्यवस्थाको भी काफी धक्का पहुँचाया है। जिलाधिकारी कर्मचारी इतने अधिक आतंकग्रस्त हो गये हैं कि जुर्म करनेवालोंसे दृढ़तापूर्वक कैफियत भी नहीं माँग सकते थे। अब यह विचारणीय विषय हो जाता है कि यदि शासन-व्यवस्था ही शिथिल हो जाय तो देशमें सरकार कैसे कायम रह सकती है ? वस्तुतः सन् १९४८-४९ की ही स्थिति पैदा हो चली थी। उस समयकी दशा ऐसी विचित्र हो गयी थी कि इसी पी० सी० पी० के कर्मचारी एक तरफ तो सरकारके आदमी बने थे और दूसरी ओर सरकारी खजाने लूट रहे थे। तब बर्मी सेनाको जैसे संकटोंका सामना करना पड़ा था, उसे यह कभी भूल नहीं सकती।

प्रधान मन्त्री ने विनने कहा कि अबसे ६ मास पूर्व जबसे मतभेद पैदा हुआ तभीसे देशके अन्य भागके यू० एम० पी० के कार्यकर्ताओंका रंगून आना प्रारम्भ हो गया और अगस्त महीनेतक वे इतनी बड़ी संख्यामें आने लगे कि इसपर विचार करना अनिवार्य हो गया। एक ओर पारस्परिक फूट, दूसरी ओर शासन-व्यवस्थामें शिथिलता और तीसरी ओर बागियोंकी गतिविधिमें उत्तरोत्तर उग्रता तथा राजनीतिक स्तम्भोंका हिलने लगना अधिकाधिक विचारणीय विषय बन गया था।

ऐसी स्थितिमें भूतपूर्व प्रधान मन्त्री ऊ नुने मुझे आमन्त्रित किया और भार सँभालनेका प्रस्ताव सामने रखा। स्वयं मुझपर जो दायित्व रहा है उसे ध्यानमें रखते हुए भी मैं इनकार नहीं कर सकता था और मैंने उन्हें स्वीकृति प्रदान कर दी। बर्मी संविधान-

की रक्षाके लिए मैं हर प्रकारसे तत्पर हूँ और आशा करता हूँ कि सभी सदस्य मेरा साथ देंगे। संविधान हमारे लिए उपास्य है। हमें उसे पूर्ण सम्मान देना चाहिये।

आन्तरिक शान्तिस्थापनाके सम्बन्धमें प्रकाश डालते हुए जनरल ने विनने कहा कि जबतक अपराधियोंको उनके अपराधोंके निमित्त दण्ड नहीं दिया जायगा तबतक देशमें शान्तिकी स्थापना नहीं हो सकती। यह प्रचार करना कि कम्युनिस्ट नेता तखिन तान ठुनके साथ आमने-सामने बातचीत होनेसे देशमें शान्ति स्थापित हो सकती है, देशकी जनताको धोखेमें डालना है। विद्रोहियोंके लिए अब भी दरवाजा खुला है, वे आ सकते हैं, परन्तु प्रत्येक व्यक्तिके कारनामोंपर विचार करके उनके साथ काररवाई की जायगी। यह कदापि सम्भव नहीं है कि अपराधियोंको छूट दे रखी जाय और देशमें अशान्ति कायम रहे। सुशासनके लिए कानूनी काररवाई अनिवार्य है और तभी सरकार अपना कार्य चला सकती है।

अबसे ६ मास बाद देशमें आम चुनाव करनेकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें जनरल ने विनने कहा कि देशमें अच्छी शासन-व्यवस्था कायम की जायगी तभी निष्पक्ष और शान्तिपूर्ण आम चुनाव होनेकी आशा की जा सकती है। हमारी सरकार किसी भी व्यक्ति या दलके पक्षमें न जाकर चुनाव करानेकी तैयारियाँ करेगी।

ने विनने कहा कि जिस प्रकार राजनीतिक विद्रोह देशके लिए घातक सिद्ध हो रहा है उसी प्रकार आर्थिक विद्रोह भी। कालाबाजार करनेवालों तथा नाजायज कीमतपर सामान बेचनेवालोंको मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि वे अपनी हरकतोंसे बाज आयें। हमारी सरकार सामानका दाम गिरानेके लिए सब प्रकारके साधनोंसे काम लेगी और जिन्हें इस नीतिके विरुद्ध चलते

पायेगी उनके साथ सख्तीका बर्ताव करेगी। जहाँतक परराष्ट्र-नीतिका प्रश्न है, हमारी सरकार इसमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं करेगी। मैं दृढ़तापूर्वक घोषणा कर रहा हूँ कि वह पूर्ववत् तटस्थ नीतिपर आचरण करती रहेगी। भाषणका उपसंहार करते हुए जनरल ने विनने कहा कि मैं एक बार पुनः यह तथ्य दोहरा देना चाहता हूँ कि केवल सैनिक बलसे काम नहीं बनेगा, राजनीतिज्ञोंका हार्दिक योगदान सर्वथा अपेक्षित है।

प्रारम्भिक कदम

जनरल ने विनके सत्ता सँभालनेके थोड़े ही दिनों बादसे रंगून नगर अपने अन्तरराष्ट्रीय गौरवके अनुरूप साफ़-सुथरा दिखाई देने लगा। राजमार्गोंके किनारे लगी छोटी-छोटी दूकानें एकदम उठा दी गयीं और उनको एक स्थानमें बसा दिया गया। 'नाइट-बाजार' बिलकुल पृथक् कर दिया गया। सड़कोंको बरबस किसी प्रकार गन्दा करता हुआ पाया जानेवाला व्यक्ति गिरफ्तार कर लिया जाता था। सड़कोंकी सफाईमें अट्टालिकाओंमें रहनेवालोंसे लेकर साधारण लोगोंको भी साथ देना पड़ता था। शहरमें जहाँ दर्जनों ही नहीं अपितु सैकड़ों पानोंकी दूकानें थीं, एक भी नहीं रह गयीं। यह क्यों? इसलिए कि पान खानेके शौकीन जहाँ मन आता था, वहीं पीक थूक देते थे। गलियोंमें पहरोंका बन्दोबस्त कर दिया गया था। गलियोंके निवासी ही पहरुओंकी ड्यूटियाँ बजाते थे। थोक माल मँगानेवाला खुदरा बेचनेवालेसे और खुदरा विक्रेता उपभोक्तासे दस प्रतिशतसे अधिक मुनाफा नहीं ले सकता था। प्रत्येकको नियमतः पुर्जा देना पड़ता था। सभी

जनरल ने विन

प्रकारके नियमोल्लंघनके लिए गिरफ्तारियाँ और सजाएँ थीं। व्यापारमें चोरबाजारी करनेवालोंके लिए देशनिकाला अथवा कालापानीसे कम सजाएँ थीं ही नहीं। यह उल्लेख करते हुए सन्तोषका अनुभव हो रहा है कि उपर्युक्त कठोर नियमोंको बरतनेमें भेदभावकी दृष्टिसे काम नहीं लिया जा रहा था। जो सजा एक स्वदेशी (बर्माके आदि-वासी) अपराधीके लिए थी वही विदेशीके लिए भी। हाँ, विदेशीको उसके देश भेज दिया जाता था और स्वदेशीको कालापानी, 'कोको' टापू।

अपराधियोंको दण्ड—ने विन सरकारने अनेक अभियुक्तोंको 'कोको' टापूमें निर्वासित करके वहाँकी जेलमें रखा था। यह निर्वासन वैसा ही था जैसे ब्रिटिश शासनके जमानेमें कालेपानीकी सजा देनेके लिए अन्दमान टापूमें भेजा जाता था। उक्त सरकारने संसद्‌के सामने प्रस्ताव रखकर दस लाख रुपयेकी माँग वहाँ सुन्दर जेल बनानेके लिए की थी। विरोधी दलोंके सदस्योंने इसका घोर विरोध किया था। उनका कहना था कि अभियुक्तोंको वहाँ रखना दोहरी सजा देनेके बराबर था। अपने घरोंसे तो वे दूर कर ही दिये जाते थे, उन्हें ऐसे स्थानोंमें रखा जा रहा था जहाँकी जलवायु नितान्त अस्वास्थ्यप्रद है। सालमें केवल चार महीने वहाँ जलमार्गसे जहाज जाता है। ऐसे स्थानोंमें जेल बनाना अभियुक्तोंके साथ तो ज्यादतीका बर्ताव करना है ही, सरकारी रुपयोंका भी अवव्यय करना है। बेहतर तो यह होगा कि 'कोको' टापूमें सरकार 'कोकोनट' (नारियल)के तेलकी मिल बैठा दे या उसी रुपयेसे जिलोंके जेलोंकी हालत सुधारे।

जनरल ने विनकी सरकारने अन्यान्य सफाइयोंके साथ-साथ स्मारकोंको भी साफ करना शुरू कर दिया था। २६ मार्च, १९५९ को रंगून पुलिस कोर्टके पासके मजदूर स्मारकको सरकारी कर्मचारियोंने गिरवा दिया जिसके कारण विशुद्ध फसपलकी छायामें

संघटित मजदूर यूनियनने असन्तोष प्रकट किया था। उक्त यूनियनने एक वक्तव्य प्रसारित कर कहा था कि स्वतन्त्रताप्राप्तिके लिए मजदूरोंने जो त्याग किया है उसके प्रतीकस्वरूप यह स्मारक था और इसे गिराकर मजदूरोंका अपमान किया गया है। सन् १९३८ में तेल उद्योगमें काम करनेवालोंने हड़ताल करके ब्रिटिश सरकारको जबरदस्त धक्का दिया था। पुनः सन् १९४७ में जब देश-व्यापी हड़ताल हुई थी तो उस समय भी मजदूरोंने प्रशंसनीय कार्य किया था। यही कारण था कि सन् १९४८ के जनवरी मासमें बर्माके स्वतन्त्र होनेके चार ही मास बाद मईके मजदूर-दिवसके अवसरपर उक्त स्मारककी स्थापना की गयी। इसकी स्थापनामें तत्कालीन प्रधानमन्त्री ऊ नु, श्रममन्त्री तखिन ल्विन, उपप्रधानमन्त्री ऊ बा स्वेका सबसे अधिक हाथ था।

एक और भी स्मारक गिराया गया था। यह स्मारक रंगून शहरकी बाउण्डरी रोडपर निर्मित किया गया था। हैरीतान नामक एक छात्रका यह स्मारक था। उक्त स्मारक गिरानेके समय बर्मा सरकारकी फौजी और पुलिस टुकड़ियाँ वहाँ तैनात थीं। सन् १९५७ की २२ मार्चको हैरीतान सरकारी पुलिसकी गोली लगनेके कारण चल बसा था। इसलिए उसकी स्मृतिमें छात्रोंने यह स्मारक बनाया था और २२ मार्चको हैरीतान दिवस मनानेकी प्रथा चालू कर दी थी। हैरीतान सातवीं कक्षाका एक छात्र था। १९५७ में इस कक्षाकी वार्षिक परीक्षाके प्रश्नपत्र पहले ही प्रकट हो चुके थे जिसे 'बमा खित' नामक बर्मी समाचार-पत्रने छाप दिया था। सरकारने पुनः परीक्षा लेनेका निर्णय किया जिसके कारण उग्र छात्रोंकी एक टोली 'बमा खित' प्रेसपर टूट पड़ी। प्रेसकी रक्षाके लिए जो पुलिस बुलायी गयी वह भी जब विफल होने लगी तो मजिस्ट्रेटके हुक्मसे उसने गोली चलायी और हैरीतान उसका निशाना बना।

यह सब होते हुए भी जनरल ने विनकी सरकारसे बिना अनुमति प्राप्त किये ही छात्रोंने यह दिवस २२ मार्चको मनाया। अखिल बर्मा छात्रसंघ और रंगून विश्वविद्यालय छात्रसंघके कार्यकर्ता इसके अग्रणी थे। इसलिए विश्वविद्यालयके तीन छात्र-नेताओंको गिरफ्तार कर लिया गया था। इनमें रंगून विश्वविद्यालय छात्रसंघके अध्यक्ष, महामन्त्री, और एक वरिष्ठ सदस्य थे। स्मारकके धराशायी करने तथा छात्र-नेताओंके गिरफ्तार किये जानेके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण देशके छात्रवर्गमें असन्तोषकी लहर फैल गयी थी।

जो हो, जनरल ने विनकी सरकारने रंगून शहरकी सफाईमें जो सफलता प्राप्त की, वह निश्चय ही प्रशंसनीय थी। पहले जिसने उक्त शहरको देखा होगा, वह यदि इसे अब देखता तो उसे निश्चित रूपसे परिवर्तन दिखाई देता। एक भी ऐसी गली नहीं थी जिसमें उसे अशोभनीय बनानेवाली वस्तु अब दिखाई देती। पान, साग-सब्जी अथवा ताला, जूता, घड़ी, फाउण्टेनपेन और चश्मे इत्यादि मरम्मत करनेकी जो छोटी-छोटी दूकानें लगी रहती थीं और जो गलियोंमें गन्दगीका कारण थीं वे सब हटा दी गयीं।

खास रंगून नगरके पड़ोसमें उत्तरी और दक्षिणी ओक तथा ताकेता नगर भी बसाये जानेका कार्य उसी समय शुरू हुआ था। ये नगर बहुत सुन्दरतासे बसे हैं। इनके अस्वच्छ होनेका कोई कारण नहीं रहने दिया गया है। हर वस्तुकी दूकानें पृथक् बनानेकी योजना तैयार की गयी ताकि खरीदनेवाला इच्छित वस्तु प्राप्त कर सके और सौन्दर्यमें भी कमी न हो। हर नगरमें सब प्रकारकी उपयोगी वस्तुओंके मिलनेकी व्यवस्था है। इन नगरोंके भवन भी नये नमूनोंके हैं और सड़कें स्वच्छ एवं सुन्दर।

इन छोटे नगरोंके पूर्ण आबाद हो जानेसे एक विशेष लाभ

यह है कि खास रंगून शहरका वातावरण बदल रहा है। यहाँके कुछ व्यापारियोंको अनिवार्यतः नये नगरोंमें जाकर बसना पड़ा है जिससे इसकी आबादी कम हो गयी है और साथ ही गन्दगी भी। ने विन सरकारकी सर्वप्रमुख विशेषता सबके साथ समान व्यवहारकी थी। चीनी, भारतीय, पाकिस्तानी अथवा पश्चिमी देशके व्यापारियों और आदिवासी जनोंपर यथासमय इस सरकारकी समान अपेक्षित दृष्टि पड़ती रही।

ने विनका त्यागपत्र

जनरल ने विनके २९ अक्तूबर, १९५८ को प्रधानमन्त्री पद सँभालनेके ठीक ५ दिनोंके पश्चात् इन पंक्तियोंके लेखकने भारतकी यात्रा की और उसके ३ मास ११ दिनोंके बाद जब यहाँ वापस आया तो समाचारपत्रोंपर दृष्टि डालनेपर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समाचार ने विनके त्यागपत्र और संसद्के तत्काल चालू अधिवेशनमें उसपर हो रही प्रतिक्रियायोंके प्रकाशन दिखाई दिये। यह अधिवेशन १३ फरवरीसे चालू था। उसी दिन प्रातःकाल राष्ट्रपति ऊ विन मांगको त्याग-पत्र सुपुर्द करनेके बाद ने विनने संसद्की बैठकमें इसकी सूचना दी थी और त्यागपत्र देनेके कारणोंपर प्रकाश डाला था।

जनरल ने विनका कथन था कि सितम्बर मासमें उन्हें प्रधान मत्री-पद सँभालनेके लिए आमन्त्रित किया गया था और २८ अक्तूबरके संसदीय जलसेमें जब तत्सम्बन्धी प्रस्ताव आया तो 'विशुद्ध' और 'स्थायी' दोनों फसपलके सभी सदस्योंने उसका समर्थन किया। किन्तु इसके थोड़े ही दिनों बाद 'विशुद्ध' फसपलने उनकी सरकारपर दोषारोपण शुरू कर दिया। यद्यपि शासन सँभालनेके लिए उन्हें उसी आलोचक पक्षने आमन्त्रित किया था क्योंकि तब शासनकी बागडोर उसीके हाथोंमें थी। अब 'स्थायी' फसपल उनके तबतकके लिए प्रधान मन्त्री बने रहनेका समर्थन करनेके लिए उद्यत था जबतक उसकी अपेक्षा होती परन्तु 'विशुद्ध' फसपलका यह रुख नहीं था। जब वही दल, जिसने उन्हें शासन-भार सौंपा था, प्रतिकूल रुख दिखाने लगा था तो उन्हें प्रधान मन्त्री बने रहना पसन्द नहीं था।

त्यागपत्र देनेका दूसरा कारण प्रस्तुत करते हुए जनरल ने विनने कहा कि अप्रैल,१९५९ तक स्वतन्त्र और स्वेच्छया आम निर्वाचन करानेकी व्यवस्थाएँ करने देना सम्भव नहीं प्रतीत होता और यदि चुनावकार्य प्रारम्भ ही किया गया तो वे प्रधान मन्त्रीका दायित्व सँभाले रहना नहीं चाहते। वे प्रधान सेनापतिकी हैसियतसे ही सरकारी सहायता पूर्ण रूपसे करते रहनेके पक्षमें हैं। तत्कालीन स्थितिसे संसद्को अवगत कराते हुए जनरल ने विनने निर्णयका दायित्व उसे सौंपते हुए कहा कि उनके स्थानकी पूर्तिके लिए प्रधान मन्त्रीका निर्वाचन करना उसका काम था परन्तु उस प्रधान मन्त्रीके कार्यकालकी अवधि इस बातपर अवलम्बित होगी कि आम-निर्वाचन १९५९ के अप्रैल मासमें होना सम्भव है या नहीं। यदि अप्रैलमें आम निर्वाचन होता है तो उसका कार्यकाल अत्यल्प होगा और ऐसा न होनेपर वह १९६० तक प्रधान मन्त्री बना रह सकता है। परन्तु वह भार संसद्के किसी सदस्यको ही सौंपा जा सकता है। और ऐसा नेता प्राप्य न होनेपर संविधानकी धारा ११६ के अन्तर्गत वह केवल ६ मासतक ही प्रधान मन्त्रीका कार्यभार सँभाल सकता है। अतएव उनके स्थानकी पूर्तिके लिए दूसरा नेता न मिलनेपर यह अनिवार्य होगा कि संसद् बर्मी संविधानकी धारा ११६ में संशोधन करे। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो वे नियमविरुद्ध प्रधान मन्त्री पदपर बने रहनेके लिए तैयार नहीं हैं।

जनरल ने विनके ऐसे दृढ़ एवं युक्तिपूर्ण विचारोंको सुननेके पश्चात् जब ऊ नुसे पुनः प्रधान मन्त्री पदपर आनेके लिए अनुरोध किया गया तो वे राजी नहीं हुए और विशुद्ध फसपलकी कार्य-समितिकी एक विशेष बैठकमें उन्होंने स्पष्ट किया कि यदि जनरल ने विन अप्रैलतक आम निर्वाचन कर देनेमें असमर्थता व्यक्त कर रहे हैं तो धारा ११६ में संशोधन लाकर उन्हें ही

प्रधान मन्त्री पदपर रखना राष्ट्रके हितमें है। इसके विपरीत जो भी कदम उठाया जायगा उसका अवांछित परिणाम होगा। आपने अपने सहयोगियोंको बताया कि जनरल ने विनने सत्ता सँभालनेके समय साफ-साफ वचन दिया था कि वे ६ मासके पश्चात् अर्थात् १९५९ तक आम निर्वाचन करा देंगे, किन्तु अभी यदि असमर्थता प्रकट कर रहे हैं तो उनके विचारोंको आदर देना ही श्रेयस्कर है। ऊ नुने आगे कहा कि मैंने महात्मा गान्धीका अनुसरणकर राष्ट्रका हित करनेका संकल्प ले रखा है। इतर मार्ग देशके लिए विध्वंसक सिद्ध हो सकता है। ऊ नुके ऐसे संकल्पपूर्ण विचारोंको सभी सदस्योंने आदर दिया और उसके बाद ही सभी राजनीतिक दलोंकी प्रतिक्रियात्मक विज्ञप्तियाँ प्रकाशित होने लगीं।

स्थायी फसपलकी ओरसे एक वक्तव्य प्रकाशित करके कहा गया कि "यह प्रमाणित दीख रहा है कि 'विशुद्ध फसपल'का विश्वास जनरल ने विनकी सरकारमें नहीं रह गया था। किन्तु जैसी विषम स्थितिमें ने विनको शासन-भार सँभालनेके लिए आमन्त्रित किया गया था उससे स्पष्ट है कि अभी उनके अतिरिक्त इस पदके योग्य दूसरा व्यक्ति नहीं है। अतएव ने विनको प्रधानमन्त्री पदपर रखनेके लिए जो भी प्रस्ताव सामने आयेगा, स्थायी फसपलके सदस्य उसका समर्थन करेंगे।"

राष्ट्रीय संयुक्त मोरचाने अपनी विज्ञप्ति प्रकाशित करके कहा कि अप्रैल १९५९ तक आम-निर्वाचन हो जाना चाहिये। और जो भी सरकार इस प्रकार आगे आयेगी, यह दल उसका साथ देगा।

निदान २० फरवरी, १९५९ को संसद्के समक्ष स्थायी फसपलके एक प्रमुख नेता ऊ चौ एँइ ने संविधानकी धारा ११६ में संशोधन करनेका विधेयक रखा। इस विधेयकके अनुसार सन्

१९६० में आम निर्वाचन करके नया प्रधान मन्त्री चुने जानेतक जनरल ने विन उक्त पदपर आसीन रह सकते थे। विधेयक प्रस्तुत करते हुए ऊ चौ एँइने कहा कि—"जब जनरल ने विनने यह कहकर त्यागपत्र दिया है कि वर्तमान विषम परिस्थितिमें आम निर्वाचनकी व्यवस्था इतने अल्प कालमें कर देना असम्भव है तो धारा ११६ में संशोधन करना आवश्यक हो जाता है। इन्होंने कहा कि संविधानके नियमोंकी अवहेलनाके बदले प्रधान मन्त्री पदसे त्यागपत्र दे देना इस तथ्यको प्रमाणित करता है कि जनरल ने विन संविधानका महान् आदर करते हैं। संविधान राष्ट्रकी रक्षाके लिए बनाया जाता है परन्तु जब उसकी धाराओंमें ज्योंका त्यों अमल करनेमें अरक्षा एवं अहित दिखाई देता है तो उसमें संशोधन अनिवार्य हो जाता है। इतना अवश्य है कि जिस देशकी राजनीतिक स्थिति जितनी ही स्थिर होती है वहाँके वैधानिक नियमोंमें संशोधनकी उतनी ही कम आवश्यकता पड़ती है। १५० वर्षोंके इतिहासमें अमेरिकाने केवल २२ बार संविधानमें संशोधन किया है और स्वतन्त्रताप्राप्तिके बादसे अबतक भारतने केवल ८ बार।"

ऊ चौ एँइने कहा कि—"बर्मा सम्प्रति जैसी अस्थिर स्थितिसे गुजर रहा है उसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता था। यह स्थिति आकस्मिक है। जनरल ने विनने विश्वास दिलाया है कि वे १९६० तक अवश्य आम निर्वाचन करा देंगे। धारा ११६ के संशोधनकी अवधि तबतकके लिए ही है। मैं इस सदनके हर विचारधाराके सदस्योंसे अपील कर रहा हूँ कि वे इस संशोधन विधेयकका समर्थन करें।"

संयुक्त राष्ट्रीय मोरचेके एक नेता ऊ बा एँइने प्रस्तावका विरोध करते हुए कहा कि बर्मी संविधान जनरल आंग सां और उनके साथी शहीदोंके रक्तसे लिखा गया है। वर्तमान संशोधन

अवांछित है। वर्तमान संशोधनके अनुसार यदि संसद्का विश्वास सरकारसे उठ गया हो तो राष्ट्रपतिको अधिकार है कि वे नये प्रधान मन्त्रीके निर्वाचनका आदेश दें और यदि १५ दिनोंके कालान्तरमें संसद् ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो राष्ट्रपति आम निर्वाचनके लिए आदेश दे सकते हैं। परन्तु अभी जो कुछ किया जा रहा है वह जनताकी भावनाओंकी उपेक्षा करके हो रहा है। अपना प्रतिनिधि चुननेका जनताको जो अधिकार सुलभ है, उसे कुचलकर सैनिक अधिकारी अपनी सत्ता कायम रखना चाहते हैं और उनकी इस मनचाहीको होने देना महान् घातक प्रमाण प्रस्तुत करना है।"

उपर्युक्त दलके दूसरे नेता वो ठुन सेंइने प्रस्तावके विरोधमें बोलते हुए कहा कि "अभी जो संशोधन पेश किया गया है, वह जनमतके सर्वथा विरुद्ध और एक उस व्यक्तिविशेषकी आकांक्षाओंको पूरा करनेके लिए है जो सैनिक शक्तिका सहारा लेकर अभीष्टकी सिद्धि चाहता है। यह नितान्त अवांछनीय है कि जिस संविधानका निर्माण जनरल आंग सां और उनके सथियोंके खूनसे किया गया हो उसे इतनी सरलतासे जनरल ने विनके कारण बर्बाद किया जाय।" वो ठुन सेंइने यह उद्घोष किया कि "विशुद्ध और स्थायी फसपलके नेताओंने ने विनसे भयभीत होकर इस संशोधनके लिए स्वीकृति दी है।" परन्तु जब मतदान हुआ तो विधेयक प्रबल बहुमतसे स्वीकार कर लिया गया और कानूनका रूप पा गया। राष्ट्रपति ऊ विनने प्रधान मन्त्रीका नाम प्रस्तावित करनेके लिए सदस्योंसे माँग की और विधेयक स्वीकार करनेकी भाँति ही जनरल ने विनको प्रधान मन्त्री पदपर रहनेके लिए भी २७ फरवरीको प्रस्ताव स्वीकार हो गया।

यह उल्लेखनीय है कि दोनों सदनोंकी संयुक्त बैठकमें ३६५ मतोंके पक्ष या विरोधमें जानेकी सभवनाएँ थीं। इसका दो

तिहाई २४६ होता है। २६ फरवरीको मतदानके समय ३०४ मत संशोधनके पक्षमें आये थे और २९ मत विरोधमें। विरोधमत केवल राष्ट्रीय संयुक्त मोरचाके थे। विरुद्ध और स्थायी फसपल तथा जस्टिस पार्टीने पक्षमें मतदान किया था। वही स्थिति २७ को भी थी जिस दिन ने विन पुनः सत्तारूढ़ हुए।

ऊ नुके संकट और कार्यकलाप

जनरल ने विनको प्रधान मन्त्री पदपर कुछ और अधिक समयतक आसीन रखनेके अभिप्रायसे संविधानकी धारा ११६ में संशोधन करनेका विधेयक प्रस्तुत होनेसे पहले ही १८ फरवरी, १९५९ को ऊ नुने पत्रकारोंके समक्ष अपना विचार प्रस्तुत कर दिया था। 'विशुद्ध' फसपल (नु-दल) का सरकारी कर्मचारियों द्वारा दमन हो रहा था जिससे क्षुब्ध होकर ऊ नुने कहा था कि "मैं नहीं चाहता कि दूसरे पक्षका भी ऐसा ही दमन किया जाय। उसके प्रति भले ही सहानुभूति रखी जाय, किन्तु हमारे दलके साथ ऐसे व्यवहारोंसे न पेश आया जाय जो व्यवहार एक असहायके साथ किये जाते हैं। इस निरंकुशतामें सुधार लानेके लिए यदि और सब प्रयत्न विफल हो जायँगे तो हम सत्याग्रह करेंगे। हमने इसके लिए अभीतक समय और स्थान नहीं निश्चित किया है क्योंकि जिन गम्भीर अन्यायपूर्ण काररवाइयोंके कारण ऐसा करनेके लिए सोचना पड़ा है उन मामलोंको सरकारके सामने रख दिया गया है और उनपर विचार न होनेपर ही हम यह रास्ता अख्तियार करेंगे।"

जब पत्रकारोंने इसपर विशद विवेचनकी माँग की तो ऊ नुने कहा कि "कदाचित् मैं इतना सामर्थ्यवान् होता कि ने विन सरकारको गिरा सकता तो भी उनका विरोध नहीं करता। परन्तु इसके साथ ही साथ यह स्थिति भी बिलकुल असह्य हो गयी है कि कुछ क्षेत्रोंके अधिकारी 'विशुद्ध' फसपलके कार्यकर्ताओंपर दमनचक्र इसलिए चला रहे हैं कि वे 'स्थायी' फसपलके लोगोंको लाभान्वित कर रहे हैं। अतएव, यदि मैंने सत्याग्रह शुरू किया तो

मेरा मूल उद्देश्य केवल इस स्थितिमें सुधार लानेका होगा। हम अपने दलके लिए किसी प्रकारकी रियायतकी माँग नहीं कर रहे हैं परन्तु यह भी नहीं चाहते हैं कि हमपर दमनचक्र चलाया जाय। यदि दूसरे पक्षके साथ सहानुभूति बरती जाय तो हम इसके लिए भी आपत्ति नहीं करते, किन्तु अपनी राजनीतिक स्थितिसे निपटनेके लिए हमें निरापद और अकेले छोड़ रखा जाय, हम यही चाहते हैं। हम अपने मार्गमें बाधाएँ नहीं चाहते।"

इसपर जब ऊ नुसे पूछा गया कि सत्याग्रह करनेकी मंशा रखते हुए भी आपने जनरल ने विनके प्रधान मन्त्री बने रहनेके सुझावका समर्थन क्यों किया, तो आपने उत्तर दिया कि "आम निर्वाचन ने विन ही करा सकते हैं। आप कहते हैं कि वर्तमान परिस्थितिमें अप्रैलतक इसके लिए व्यवस्था नहीं की जा सकती। ऐसी दशामें यह जरूरी है कि उन्हें पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाय ताकि वे इच्छानुकूल स्थितिका सर्जन कर सकें। साथ ही जनरल ने विनके प्रधान मन्त्री बने रहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि 'विशुद्ध' फसपलका दमन हम देखते रहें और उसका विरोध भी न करें। मैं अपनी शिकायत जनरल ने विनके सामने रख चुका हूँ और उसका समाधान तभी हो सकता है जब ऐसी नीति अपनायी जाय जिससे सभी राजनीतिक दलोंपर समान दृष्टि हो। 'विशुद्ध' फसपलके कार्यकर्ताओंका किस प्रकार दमन किया जा रहा है इसे प्रमाणित करनेके लिए विशेष घटनाओंका उल्लेख आवश्यक नहीं जान पड़ता। मैं आशान्वित हूँ कि जनरल ने विन, जो स्वयं व्यक्तिगत तौरपर पक्षपात और अन्यायसे दूर हैं, शिकायतोंके समाधानकी ओर ध्यान देकर भयभीत व्यक्तियोंको अभय करेंगे।"

ऊ नुने यह भी कहा था कि "बर्मी कौम थोड़ी-सी उत्तेजना

पानेपर ही झगड़ेपर तुल जानेवाली है, ऐसा स्वभाव नितान्त अहितकर है। मैं नहीं चाहता कि शिकायतोंको दूर करनेका विरोध प्रस्तुत करनेमें शस्त्रों (शक्ति) का प्रयोग किया जाय। मैं ऐसी प्रवृत्तिका मूलोच्छेद चाहता हूँ। मुझे यदि अवज्ञा आन्दोलन शुरू करना ही पड़ा तो मैं इसे सच्चे सत्याग्रहीके रूपमें और जनताको शिक्षा देनेका उद्देश्य लेकर चलूँगा।"

१९५९ के अप्रैलमें आम निर्वाचन होनेके सम्बन्धमें प्रश्न किये जानेपर आपने कहा कि "मैं चाहता हूँकि अप्रैलमें आम निर्वाचन हो किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी हो गयी हैं कि मैं जनरल ने विनके प्रधान मन्त्री पदपर रहनेका विरोध नहीं कर सकता। यदि मैं ऐसा करूँ तो मेरे विरोधी मुझे कम्युनिस्ट करार देनेका जाल फेंकना शुरू कर देंगे और इससे निस्सन्देह लाभ उठायेंगे।"

विशुद्ध फसपलका दमन—जनरल ने विनके हाथमें शक्ति आनेके कुछ ही महीनोंमें विशुद्ध फसपलका दमन इस हदतक हुआ था कि उसका मेरुदण्ड यदि टूटा नहीं था तो इतना जख्मी तो हो ही गया था कि ज्यों-ज्यों और जब-जब पीड़ा उठती थी इसके अध्यक्ष ऊ नु आहें भरने लगते थे। 'स्थायी' फसपलकी ओरसे ने विनके प्रधान मन्त्रिपदपर रहनेका इतना जोरदार समर्थन होना इस तथ्यको प्रमाणित करता था कि वे यह विश्वास किये बैठे थे कि सन् १९६० तक विशुद्ध 'फसपल' (नु टिन दल) क्षीणबल हो जायगा और मुकाबलेमें नहीं डट सकेगा। हाँ, इतने दमनपर भी आम जनमत सर्वाधिक ऊ नुके पक्षमें था और यदि १९५९के अप्रैलमें आम निर्वाचन हुआ होता तो भी इनके पक्षकी विजय निश्चित थी।

तत्कालीन स्थितिपर मनन करनेसे यह प्रश्न भी स्वभावतः उठ रहा था कि क्या ऊ नुकी सत्याग्रह करनेकी घोषणा दमन-चक्रको रोक सकती? और यदि नहीं तो परिणाम क्या होता?

इन पंक्तियोंके लेखकका अनुमान है कि यदि विशुद्ध फसपलका दमन पूर्ववत् चालू रहा होता और ऊ नुको सत्याग्रह करना ही पड़ता तो जैसा ऊ नुका स्वयं कथन था, 'बर्मी कौम सत्याग्रही नहीं है और न बन सकती है' इसीका कुपरिणाम चरितार्थ दीखता। कुछ लोग भले ही जेलोंमें जाना पसन्द करते लेकिन अधिकांश फरार होकर बागियोंका साथ देते। और तब कदाचित् जनरल ने विन भी स्थिति सँभालनेमें असमर्थ सिद्ध होते। सेना विभागमें कुछ अधिकारी नुके भी हिमायती तो थे ही, इसलिए सैनिकोंमें विद्रोह हो जाना सहज था और ने विनको यदि मिस्रके नगीबके दिन देखने पड़ते तो कोई आश्चर्य न होता। परन्तु बर्मामें मिस्रके कर्नल नासिर नहीं दिखाई दिये इसलिए ऐसी स्थिति नहीं आयी।

सत्याग्रहकी घोषणा——ऊ नुने सत्याग्रह करनेके लिए जो घोषणा की थी उसकी रूपरेखा क्या होती इसपर विचार करनेके लिए विशुद्ध 'फसपल'की कार्य-समितिकी बैठक हुई थी। बर्मी स्वतन्त्रताके जनक स्वर्गीय जनरल आंग सांकी धर्मपत्नी डा खिं चीने २५ फरवरी १९५९ को १ हजार देवियोंको साथ लेकर रंगूनके श्वे डगोन देवालयमें भगवान् बुद्धसे प्रार्थना की कि बर्मामें जो 'फासिज्म' चल रहा है उसका अन्त हो और सुराजकी स्थापना हो।

डा खिं ची ऊ नुके पक्षमें सर्वदा रही हैं। आंग सांकी मृत्युके बादसे ऊ नुने भी इनकी और इनके बच्चोंकी सदा देख-रेख की है। यह निश्चित था कि यदि ऊ नुको विवश होकर सत्याग्रह करना ही पड़ता तो डा खिं ची अपनी सहयोगी देवियोंके साथ इनसे भी आगे रहतीं। बर्मामें पुरुष और स्त्री दोनों वर्गोंके बीच डा खिं चीका महान् आदर है। ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइ दलके विरोधमें डा खिं ची सामने

आ चुकी थीं किन्तु जनरल ने विनकी सरकारके उन अधिकारियोंके पक्षमें, जो जुल्म ढा रहे थे, अबतक नहीं आयी थीं। अब उन्होंने सुसंघटित रूपमें उनका भी विरोध करना शुरू कर दिया था। डा खिं ची अखिल बर्मा महिला संघकी अध्यक्षा थीं और उन्होंने देशव्यापी संघटन शुरू कर दिया था। देशके जिन नगरोंमें महिला संघकी शाखाएँ थीं, वहाँ महिला जागरणका काम प्रारम्भ कर दिया गया था। सैनिक अधिकारियोंके बर्बर कृत्योंका वे विरोध भी कर रही थीं। महिलाओंका यह रुख सैनिकोंके विचारोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन लाता नहीं दीखता था।

इसी बीच ऊ नुने अमेरिकाकी यात्रा की। आप वहाँ विश्वधर्म सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए आमन्त्रित अतिथिके रूपमें गये थे। ऊ नुकी उक्त यात्राने नाटकीय रूप भी लिया था। विशुद्ध फसपलके अन्य कार्यकर्ता प्रारम्भमें उनकी इस यात्राके पक्षमें नहीं थे। उन्होंने ऊ नुको यह यात्रा स्थगित कर देनेके लिए भी विवश कर दिया था। इसकी सूचना पाते ही विश्व-धर्म सम्मेलनने अमेरिकासे तार दिया कि 'अधिवेशनका कार्यक्रम निर्धारित हो चुका है और उसके अनुसार आपको बुद्ध धर्मपर अनेक भाषण करने हैं। अतएव आप अधिवेशनमें अपने न भाग लेनेके निर्णयपर पुनः विचार करें।' फलस्वरूप विशुद्ध फसपलकी कार्यसमितिकी विशेष बैठक बुलाकर ऊ नुके अमेरिका जानेका निर्णय घोषित कर दिया गया। आपने ९ अप्रैल १९५९ को अपराह्नमें रंगूनसे भारतके लिए प्रस्थान किया। वहाँ दो दिनोंतक रहकर आप ब्रिटेन होते हुए अमेरिका गये। अमेरिकाके डलास नामक स्थानमें १७ से १९ अप्रैलतकविश्वधर्म सम्मेलन करनेका आयोजन किया गया था।

कार्यकर्ताओंका आह्वान—रंगूनसे प्रस्थानके दो दिनों पूर्व ७

अप्रैलको आपने विशुद्ध फसपलके कार्यकर्ताओंके सामने भाषण करते हुए बर्माकी तात्कालिक स्थितिपर खेद व्यक्त किया और उक्त स्थितिका अन्त करनेके लिए प्राणतककी बाजी लगा देनेका आह्वान किया। आपने कहा कि सम्प्रति बर्माकी स्थिति इतनी नाजुक है कि कुछ लोग उसके खतरोंको ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहे हैं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस स्थितिका अन्त करनेके लिए निश्चित कदम उठानेकी आवश्यकताएँ हैं और जब कदम बढ़ानेका समय आयेगा तो मैं आप लोगोंके आह्वानमें तनिक भी नहीं हिचकूँगा।

ऊ नुने चेतावनी दी कि "न तो यह समय इस सोच-विचारमें पड़नेका है कि जो कदम उठाया जायगा उसका क्या नतीजा होगा और न मूढ़ बननेका। सबको स्वार्थपरता त्याग देनी चाहिये और एक निश्चित योजना और लक्ष्य स्थिर कर लेना चाहिये। 'कोको टापू' अथवा इससे भी बदतर स्थानके लिए निर्वासित कर दिये जानेकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। यदि यह विश्वास हो जाता है कि जो कदम उठाया जानेवाला है वह देशहितमें होगा तो यह चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि इसका परिणाम क्या होगा। इस समय इस देशकी स्थिति ऐसी बन गयी है कि गिरफ्तारीसे लेकर मृत्युदण्डतक किसीको किसी दिन भी मिल सकता है।"

स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र उन्हींके निमित्त हैं जो इनकी रक्षाके लिए जानकी बाजी लगानेको तैयार हों। आज बर्मा संघके जीवन-मरणका प्रश्न हम लोगोंके सामने उपस्थित है और हमें इसका हल निकालनेके लिए साहसी और साथ ही दूरदर्शी भी होनेकी जरूरत है। हमें सशस्त्र विद्रोहमें विश्वास नहीं है, किन्तु सत्याग्रहमें मैं पूर्ण आस्था रखता हूँ। यदि हमें सत्याग्रहका नेतृत्व करना ही पड़ा तो हम इसके लिए पूर्णतः उद्यत हैं, चाहे

जैसी भी विषम परिस्थितिका सामना क्यों न करना पड़े।

आपने विशुद्ध 'फसपल'के नेताओंको चेतावनी दी कि वे आगामी जलोत्सवमें अधिक विलिप्त न हों। वे सत्कर्म करने, भिक्षुओंको भोजन देने और संघकी जनताको शान्तिके लिए प्रार्थनाएँ करनेके लिए सावधान करनेका ध्यान रखें।

ऊ नुके उपर्युक्त भाषणने लोगोंको स्तब्ध कर दिया था। वस्तुस्थितिसे वे इतने दुःखी और इसके निवारणके लिए इस भाँति संकल्पवान् थे, जनताको इसका ठीक परिचय उनके उक्त भाषणसे ही प्राप्त हुआ।

ने विन सरकार, ऊ नुके भाषणको सुनकर चुप रह गयी थी। उसने कोई कदम नहीं उठाया। इसपर भी अटकलबाजियाँ चलती रहीं। चुप्पीका अर्थ यह भी लगाया जा रहा था कि ऊ नुके विरोधमें कोई कारवाई करनेसे फौजी कर्मचारियोंके दलोंमें क्रान्ति हो जाती। कहा जाता है कि फौजमें बहुसंख्यक सिपाही ऊ नुके हिमायती थे। फौजमें 'स्वे एँइ'के पक्षके समर्थक अधिकारी वर्गके ही लोग थे क्योंकि स्वयं रक्षा-मन्त्री होनेके समय ऊ बा स्वेने अपने सम्बन्धी और सम्पर्कके व्यक्तियोंको ऊँचे पदोंपर रख दिया था—ऐसा कहा जाता था। परन्तु साधारण सैनिकोंमें जो श्रद्धा ऊ नुके प्रति थी उसे उच्च अधिकारी हटा नहीं सकते थे।

अमेरिका यात्रासे दो दिनों पूर्व ऊ नुने भाषण करते हुए जो यह कहा था कि 'इस वर्षकी स्थिति उत्सवमें मगन हो जानेकी नहीं है बल्कि एतत्कालीन विषम परिस्थितिके समाधान तथा बर्मी संघकी रक्षाके लिए भगवान् बुद्धसे प्रार्थना करनेकी है', इसका गहरा प्रभाव जनतापर पड़ा था, यद्यपि ऊ नुके हाथमें तब देशकी राजनीतिक सत्ता नहीं थी। ऊ नुके निर्देशके अतिरिक्त यों भी देशकी आम जनता खिन्न बैठी थी। वह अपना भविष्य अनिश्चित समझ रही थी। कब किस दिशासे और क्या रूप लेकर

कोई विपत्ति उसपर आ जायगी कुछ कहा नहीं जा सकता था। इसलिए वह अधिकांशतः चिन्तित दीखती थी।

उस वर्षके तिज्ज्यां (जलोत्सव)से सम्बन्धित एक चिन्ताजनक विशेष बात यह थी कि १४ से लेकर १७ अप्रैलके बीच एक दिन भी वर्षा नहीं हुई। साधारणतया यह निश्चित माना गया है कि जलोत्सवकालमें वर्षा होकर रहती है। उस वर्ष केवल कछिन् राज्यके एक स्थानपर थोड़ी वर्षा हुई थी।

अमेरिका रवाना होनेसे पहले रंगूनमें और अमेरिका पहुँचनेके बाद वहाँ भी ऊ नुने जो यह वक्तव्य दिया था कि बर्मामें लोकतत्र खतरेमें है। इसपर यह अफवाह उड़ी कि अमेरिकासे वापस आते ही ऊ नु गिरफ्तार कर लिये जायँगे। किन्तु ने विन सरकारके एक प्रवक्ताने इसका खण्डन किया और कहा कि ऐसी अफवाहें वे लोग उड़ा रहे हैं जो ने विन सरकारके विरोधी हैं। ऊ नुको कदापि गिरफ्तार नहीं किया जायगा। उन्हें पूरी छूट है। जब ऊ नु अमेरिका जाने लगे थे तो राजदूतोंको यह निर्देश भेज दिया गया था कि वे ऊ नुका यथोचित स्वागत करेंगे। वही हुआ भी। विदेशोंमें बर्मी दूतवासोंने तो आपका स्वागत किया ही, जब आप बर्मा वापस आये तो यहाँ उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया।

इसके बाद ही ऐतिहासिक मई दिवस आया। इस दिवसपर ऊ नुने जिस सभामें भाषण किया उसका आयोजन उस समतल पर्वतीय ऊँची भूमिपर किया गया था जहाँ बर्मी शहीदोंकी समाधियाँ बनी हुई हैं। आपकी सभामें एक लाखसे अधिक लोगोंकी भीड़ एकत्र थी। ऊ नुका भाषण अपेक्षाकृत अत्यधिक विस्तृत (२७ पृष्ठोंका लिखित) और अत्यन्त सारगर्भ था। ने विन सरकारके लिए उसमें चुनौती तो थी ही, 'स्वे एँइ' नेताओंकी आलोचना भी की गयी थी।

इस अवसरपर भाषण करते हुए ऊ नुने कहा कि बहुसंख्यक देश-रत्नोंके त्याग, बलिदान और तपस्वियोंके तपके फलस्वरूप अबसे १० वर्ष पूर्व बर्माको स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। ये १० वर्ष ही आपदाओंसे मुक्त नहीं बीते, परन्तु इस समय तो विषमतम स्थिति उत्पन्न हो गयी है।

बर्माकी स्वतन्त्रताकी घोषणाके कुछ महीनोंके बाद ही वामपक्षीयोंने यहाँ अधिनायकवाद चलाना चाहा और उन्होंने तत्कालीन सरकारकी समाप्ति कर देनी चाही, परन्तु धन्य हैं बर्मी सैनिक जिन्होंने देशकी रक्षा की। उनका प्रयत्न चलता ही रहा, यद्यपि अभी वे क्षीणबल हो गये हैं, फिर भी तोड़-फोड़में ही लगे हैं। हर्षकी बात यह है कि वे अभीष्टकी सिद्धिमें विफल रहे।

ऊ नुने मर्मवेदनाके साथ कहा कि यह सब होते हुए भी देश आपदाओंसे मुक्त नहीं हुआ। वामपक्षी दलके पस्तहिम्मत होनेके बाद दूसरा दल जो दक्षिणपक्षीय कहा जाता है, अपने ढंगका अधिनायकवाद चलानेकी फिक्रमें लग गया। अभी उसने उसी सेना विभागके, जिसने राष्ट्रको डूबनेसे बचाया था, कुछ अधिकारियोंको मिला लिया है और अधिनायकवादका सर्जन कर दिया है। जिस स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए इतने त्याग और बलिदान हुए उस स्वतत्रताका नाम ही नहीं रह गया है। जब लोकतत्र ही नहीं रह गया तो स्वतन्त्रता कहाँ? राष्ट्र एक बड़ी सन्दूकके समान है जिसमें लोकतन्त्ररूपी बहुमूल्य रत्न रखा होता है किन्तु वह रत्न तब प्राप्त होता है जब स्वतन्त्रतारूपी चाभी उसमें लगायी जाती है। जब चाभी उसमें लगती है और पेटी खुल जाती है तो पाँच प्रकारकी स्वतन्त्रता मिलती है। वाणी अथवा लेखनीके माध्यमसे विचारोंको व्यक्त करनेकी, धर्मप्रचार और उसपर आचरण करनेकी, न्यायालयोंसे उचित न्यायकी और आम निर्वाचन करके जनताके प्रतिनिधियों द्वारा सरकारका

संघटन करनेकी। सम्प्रति इनमेंसे एक प्रकारकी भी स्वतन्त्रता नहीं रह गयी है। लोकशाहीका स्थान तानाशाहीने ले लिया है। लेकिन इसे लेकर चलनेवाले भूल कर रहे हैं। उन्हें 'फासिस्ट' जापानियों और नाजी जर्मनोंके इतिहाससे नसीहत लेनी चाहिये।

कुछ सैनिक अधिकारियोंको मिलाकर 'स्वे एँइ' नेताओंने जो तरीका अपना रखा है उसकी व्याख्या करते हुए ऊ नुने कहा कि उन्होंने विशुद्ध 'फसपल'को हानि पहुँचानेके लिए पाँच अस्त्रोंसे काम लेना शुरू किया है—(१) विशुद्ध फसपलके समर्थकोंको यह कहकर कि सेना हमारे (स्वे एँइ) पक्षमें है डराना, धमकाना। (२) प्रतिष्ठा भंग करनेके लिए रोज एक-न-एक झूठी कहानी गढ़ना और उसका प्रचार करना। (३) सैनिक अधिकारियोंको मिलाकर निर्दोष किन्तु प्रभावशाली 'विशुद्ध फसपल'के नेताओंको गिरफ्तार कराना। (४) ऐसी निरीह हत्याएँ कराना, लूट मचाना और आतंकित रखना जैसी केवल फासिस्ट करा सकते हैं। (५) सत्ताका दुरुपयोग करके अपने दल स्थायी 'फसपल'का संघटन करना। ऊ नुने अनेक हत्याओं, गिरफ्तारियों और अन्य भ्रष्टाचारोंके ज्वलन्त उदाहरण रख-रखकर अपने विचारों की पुष्टि की। साथ ही आपने दृढ़तापूर्वक कहा कि इन सबसे डरकर हम राष्ट्रका विनाश नहीं होने देंगे। हम डंकेकी चोटपर अदम्य साहस और दृढ़ निश्चयसे इस स्थितिका सामना करेंगे, किन्तु हिंसाका बदला हम हिंसाके रास्तेसे नहीं लेंगे। हमारा अहिंसाका मार्ग होगा। अब हम और अधिक इंतजार नहीं करेंगे। हमारा सत्याग्रह अभियान चलेगा।

ऊ नुने सत्याग्रहियोंको चार श्रेणियोंमें बाँटकर एक-एक श्रेणीके सदस्योंको अलग-अलग कार्य बताया। आपने निर्देश किया कि एक श्रेणी तो उन लोगोंकी होगी जो सरकारी अनाचारोंको

अधिकारियोंके मुँहपर कहेंगे और सत्याग्रह (सत्यके आग्रह द्वारा) से न्यायकी माँग करेंगे। दूसरीमें वे होंगे जो सब प्रकारकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करेंगे। तीसरी श्रेणीवाले न्यायालयोंमें न्यायकी माँग करेंगे और चौथी श्रेणीके लोग देवालयों तथा अन्य पवित्र स्थानोंमें राष्ट्र और लोकशाहीकी रक्षाके लिए प्रार्थनाएँ करेंगे।

ऊ नुने भाषणका अन्त 'अधिनायकवादका नाश, लोकशाही जिन्दाबाद'के नारोंसे किया।

विविध प्रतिक्रियाएँ

सत्ता हस्तान्तरण और संविधानमें संशोधन जैसे असाधारण परिवर्तनोंके कारण उन दिनों बर्माकी राजनीतिक स्थिति विचित्र बन गयी थी। कभी आँग्ल-अमेरिकी गुटके साथ बर्माका गठबन्धन करानेके समर्थक तर्क देना शुरू कर देते तो कभी दक्षिणपक्षीय प्रगतिवादी, और कभी वामपक्षीय दहाड़ने लगते।

ऊ नुने १ मई, १९५९ को (मई दिवस-महोत्सवमें) जो भाषण किया था उसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। उनके प्रतिद्वन्द्वी राजनीतिज्ञों द्वारा मौखिक आलोचनाओंके साथ भाषणपुस्तिका वितरण करनेवालोंकी गिरफ्तारियाँ भी होने लगी थीं। परन्तु उसके प्रशंसकोंकी भी कभी नहीं रही।

बौद्ध भिक्षुओंका विरोध—२१ मईको स्थानीय श्वेडगोन पगोडामें १ हजार बौद्ध भिक्षुओंकी एक सभा हुई जिसमें दो प्रस्ताव स्वीकार किये गये। ने विन सरकारने नेशनल रजिस्ट्रेशनका अभियान चालू कर रखा था जिसका विरोध सबसे अधिक बौद्ध भिक्षुओं द्वारा ही हो रहा था। इस विभागके कार्योंके सबसे बड़े अधिकारी कर्नल छि म्याइंग थे। आपने भिक्षुओंको चेतावनी दी थी कि वे रुख बदलें। भिक्षु भी इस नियमका पालन करें। इसकी आवश्यकतापर जोर देते हुए कर्नलने कहा था कि बर्मामें भिक्षुओंका वेश बिलकुल निष्कलंक नहीं रह गया है। कषाय वस्त्र धारण करनेवाले सभी निर्मल जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसी बात नहीं है। अपनी भूलोंको छिपानेके लिए भी बहुत-से लोग यह वस्त्र धारण कर लेते हैं।

कर्नल छि म्याइंगने अपने उपर्युक्त विचारकी प्रामाणिकतापर

प्रकाश डालते हुए कहा—'बर्मी सर्वप्रमुख साम्यवादी नेता तखिन तान ठुनकी बाबत यह सुना जाता है कि वे प्रायः भिक्षुवेश धारण करके पूर्वी पहाड़ी क्षेत्रोंसे पश्चिमी और फिर पश्चिमसे पूर्वकी ओर जाते रहते हैं।' ऐसे ही अन्य अनेक उदाहरण कर्नलने देकर यह सिद्ध किया कि भिक्षुओंका भी नेशशल रजिस्ट्रेशनमें शामिल होना परमावश्यक है। यदि ऐसा न होगा तो यह मालूम ही नहीं होगा कि कौन साधु है और कौन वंचक। रजिस्ट्रेशन करानेके लिए सरकारने जो फार्म छपवाये थे, उन्हींमें सारा विवरण देना आवश्यक था और स्वयं छपवाये फार्मपर भी कर्नलने विशद प्रकाश डाला।

बर्मा सरकारसे प्रथम प्रस्तावमें निवेदन किया गया कि वह बौद्ध धर्मको राजधर्मकी मान्यता प्रदान करे और दूसरे प्रस्ताव द्वारा सरकारके सामने यह सुझाव पेश किया गया कि सरकारी रजिस्टरमें भिक्षुओंके नाम दर्ज करानेका कार्य मठाधीश भिक्षुओंसे अनुमति लेकर ही किया जाय।

उपर्युक्त प्रदर्शन यूनियन संघ असोसिएशनके तत्त्वावधानमें आयोजित हुआ था। आयोजन निरापद समाप्त हो और साथ ही सरकारको ठीक-ठीक सूचनाएँ मिल सकें, इसलिए विशेष पुलिस तैनात कर रखी गयी थी और देवालयके मुख्य द्वारपर वायरलेससे लैस कारें लिये हुए पुलिसके अधिकारी खड़े थे। जब प्रथम प्रस्ताव रखा गया तो उसके समर्थनमें ऊ हिलाका नामक एक सर्वश्रेष्ठ लब्धप्रतिष्ठ बर्मी भिक्षुने कहा कि—"हम भूतपूर्व प्रधान मन्त्री ऊ नुके 'मई दिवस'के भाषणका समर्थन कर रहे हैं कि उनके (ऊ नु) राजनीतिक दल 'विशुद्ध फसपल' के सदस्योंको जल्दसे जल्द रिहा कर दिया जाय।" आपने कहा कि जनताकी स्वेच्छाका सम्मान करना ही लोकतन्त्रके नियमोंका पालन करना है और बर्माके संविधानमें इसकी व्यवस्था रखी

गयी है। बिना आम निर्वाचनके जिस सरकारका संघटन किया गया हो वह देशकी समस्याओंका हल कर ही नहीं सकती क्योंकि जनताका प्रतिनिधित्व आम निर्वाचन द्वारा बनायी गयी सरकार ही कर सकती है। जिस सरकारका निर्माण यों ही कर लिया गया हो, वह कुछ अच्छाइयाँ कर सके तो भी उसका विशेष मूल्य नहीं है। यदि वह जनताके इच्छानुसार नहीं बनायी गयी तो उसे लोकतान्त्रिक सरकार नहीं कहा जा सकता। ऊ नुने अपने भाषणमें इतना कह दिया है कि और कुछ कहना व्यर्थ है। देश दयनीय स्थितिसे गुजर रहा है। इसका समाधान होना जरूरी है। इसलिए हम भिक्षुगण हाथपर हाथ रखकर बैठे नहीं रह सकते। हम सभी ऊ नुके साथ हैं। उनके सत्याग्रह आन्दोलनका समर्थन करते हैं। और सरकारसे भी अर्ज करते हैं कि वह बौद्ध धर्मको राज्यधर्मकी मान्यता प्रदान करे।

साम्यवादियोंकी ओरसे बौद्ध धर्मके विरोधमें जो कुछ कार्यकलाप चालू थे उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए प्रस्तावक महोदयने कहा कि "यह हम सब लोगोंके लिए असह्य है। साम्यवादका प्रचार रोकनेके लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिये क्योंकि अब तो साम्यवादियोंने भगवान् बुद्धकी भी आलोचनाएँ करनी प्रारम्भ कर दी हैं।"

फिर ६ जून, '५९ को रंगूनके प्रमुख भिक्षुओंने स्थानीय सिटी हालमें एक सभा साम्यवाद विरोधी अभियान चलानेके लिए की। सभापतिके आसनसे बोलते हुए एक भिक्षुने कहा कि इस समय बर्मामें बौद्ध धर्मके लिए जो खतरा पैदा हो गया है वह चीनी सम्राट् टो हाँ वाके बर्मापर आक्रमणके समय ही पैदा हुआ था। उक्त चीनी सम्राट्ने बहुसंख्यक बर्मी बौद्ध मठों और देवालयोंको ध्वस्त कर दिया था। ऐसी स्थितिमें यह अनिवार्य हो गया है कि साम्यवादके प्रसारको रोकनेके लिए संयुक्त शक्तिसे काम

लिया जाय। सभापतिने कहा कि जब बर्मी इतिहासपर दृष्टि डाली जाती है तो चीनी आक्रमणकालके अतिरिक्त और कभी भी बुद्ध धर्मके लिए ऐसा खतरा नहीं पैदा हुआ था जैसा आज दिखाई दे रहा है।

रंगून विश्वविद्यालयके छात्रसंघका वार्षिक निर्वाचन जुलाई मासके दूसरे सप्ताहमें हो जाया करता था परन्तु उस वर्ष ऐसा करनेमें उन्हें कठिनाई हुई। छात्रसंघके बहुसंख्यक नेताओंको, जिनमें अध्यक्ष भी थे, मार्च मासमें ही गिरफ्तार कर जेलमें डाल दिया गया था। संघके विधानके अनुसार निर्वाचन करानेका दायित्व संघके अध्यक्षपर ही होता है और उसकी अनुपस्थितिमें चुनाव होना असम्भव था। विश्वविद्यालयके छात्रोंका आन्दोलन भी बाह्य रूपसे एकदम दब गया था। इतनी कड़ाईसे काम लिया गया था कि छात्र सिर उठानेका साहस नहीं कर रहे थे। अब विश्वविद्यालयमें शुल्क भी लगने लगा था जिसका विरोध करनेकी इच्छा होते हुए भी भयवश छात्रोंने आवाज उठानी बन्द कर दी थी।

इस विश्वविद्यालयमें अनियन्त्रित स्थिति तो पहलेसे ही थी। पठन-पाठनका काम शून्य होता जा रहा था। केवल शोर-गुल मचा रहता था इसलिए नियन्त्रण स्थापित करना आवश्यक हो गया था। बताया जाता है कि ने विन कालमें भी पढ़ाईके कामोंमें किसी प्रकारका सुधार नहीं हुआ था। छात्र आतंकित रहते थे। रंगून विश्वविद्यालयके अतिरिक्त अन्यान्य क्षेत्रके विद्यालयोंकी स्थिति भी ऐसी ही थी। शिक्षा-शुल्क लगा दिये जानेसे छात्रोंकी संख्यामें भी कमी होने लगी थी।

इतनी विषम स्थिति होते हुए भी यह प्रायः निश्चित-सा प्रतीत हो रहा था कि बर्मामें आम निर्वाचन सन् १९५९ के अन्त और १९६० के प्रारम्भके किसी मासमें जरूर होने जा रहा था।

सरकारी वक्ताओंने जो घोषणाएँ की थीं उनमें सन् १९६० के अप्रैल मांससे पूर्व किसी महीनेमें भी चुनाव करानेको कहा गया था और इसी आधारपर कोई-कोई सूत्र तो फरवरी मास इसके लिए निश्चित बताता था। साथ ही, किन्हीं सूत्रोंका कहना था कि उससे भी पहले १९५९ के दिसम्बरमें ही यह कार्य सम्पन्न हो जायगा। जो हो, यह तो प्रायः तय हो ही गया था कि जनरल ने विनकी सरकार संविधानमें पुनः संशोधन कराकर सत्तारूढ़ रहनेका इरादा छोड़ चुकी थी। उधर ने विन सरकारके उक्त निर्णयने यहाँके कुछ विशिष्ट राजनीतिक दलों और राजनीतिज्ञोंको भी महत्त्वपूर्ण निष्कर्षोंपर पहुँचा दिया था।

जस्टिस पार्टीका विलयन—उन्हीं दिनों ११ जुलाई, १९५९ को 'जस्टिस पार्टी'के अध्यक्ष डा० ए मौंने घोषणा की कि वे अपने दलका विलयन 'विशुद्ध' फसपलमें करने जा रहे हैं। 'जस्टिस पार्टी'का संघटन इससे ५ वर्षों पूर्व किया गया था। उन दिनों वर्मी संसद्‌में उक्त दलके ५ सदस्य थे।

'विशुद्ध' फसपलमें अपने दलको विलीन कर देनेके सम्बन्धमें प्रकाश डालते हुए डा० ए मौंने निम्नलिखित कारण बताये थे—

१. 'विशुद्ध' फसपलकी नींव, जिसके नेता ऊ नु हैं, ठोस तौरपर लोकतान्त्रिक आदर्शोंपर है।

२. इस दलने अर्थव्यवस्थाकी जो नीति अपना रखी है, उससे ही अधिकाधिक जनकल्याण है।

३. साम्यवाद, बौद्धमतका शत्रु है और यह दल साम्यवादका विरोधी है।

४. 'विशुद्ध' फसपलकी परराष्ट्रनीति अन्तरराष्ट्रीय जगत्‌में तटस्थ है। यह न पश्चिमी लोकतन्त्रका ही अनुगमन करता है और न साम्यवादका। साथ ही सभी देशोंके साथ मैत्रीभाव भी

रखता है।

डा० ए० मौंने कहा कि 'जस्टिस पार्टी'की नीति 'विशुद्ध' फसपलकी नीतिसे मेल खाती है और 'विशुद्ध' फसपलने इसके इस निर्णयका हार्दिक स्वागत भी किया है। अतएव दोनों दलोंका एकीकरण कर डालना ही हितकर प्रतीत हुआ है। इस सिलसिलेमें विचार व्यक्त करते हुए डा० ए मौंने यह भी कहा कि 'जस्टिस पार्टी'के कार्यकर्ता देशके जिस भागमें भी हों, वे वहाँके स्थानीय 'विशुद्ध' फ़सपलके सदस्य बन जायँ। आपने कहा कि इस कार्यमें वे जितनी तत्परता रखेंगे, 'जस्टिस पार्टी' अपने अभीष्टकी सिद्धिके निकट उतनी ही जल्दी पहुँचेगी।

अन्ततः डा० ए मौंने अपने दलकी स्थापना करनेके कारणोंपर निम्नलिखित प्रकाश डाला—

१. जस्टिस पार्टीका संकल्प था कि वह संविधानमें निहित जनताके हकोंकी रक्षाके लिए लड़ेगी।

२. इसका मौलिक उद्देश्य जनताको न्याय, स्वातन्त्र्य और समता दिलाना था।

३. यह दल उसी सरकारसे सहमत होनेको राजी है, जो कानूनोंका सम्मान करनेवाली होगी।

४. किसी भी दलविशेषकी तानाशाहीका विरोध करना यह अपना कर्तव्य समझती रहेगी।

राष्ट्रीय संयुक्त मोरचा (नफ) के साथ मिलकर जस्टिस पार्टी कुछ दिनोंतक क्यों रही, इसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए डा० ए मौंने कहा कि अविभाजित फसपल १० वर्षोंतक सत्तारूढ़ रहा था और उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि संसद्में एक जबरदस्त विरोधी पक्षका होना अनिवार्य था। इसलिए जस्टिस दल कुछ समयतक 'नफ'के साथ मिला रहा, यद्यपि उसके साथ इसका अनेक अर्थोंमें विचारवैषम्य था।

आपने स्पष्ट किया कि फसपलके दो दलोंमें विभाजित हो जानेके बाद जस्टिस पार्टी ने 'विशुद्ध' फसपलके साथ अपना मतैक्य पाया और उसके साथ सम्बन्ध रखने लगी। अभी जब यह घोषित हो गया है कि १९६० के अप्रैल मासतक आम चुनाव होने जा रहा है और प्रायः सभी दल तैयारियाँ कर रहे हैं, तब जस्टिस पार्टीका अलग रहकर तैयारीमें लगना देशके लिए हितकर नहीं होगा। जब दो दलोंके उद्देश्य एक हैं, तो दोनों दो मोरचोंपर क्यों रहें ? दलके कतिपय कार्यकर्ताओंने विलयनका विरोध किया और इसीलिए इस कार्यमें थोड़ा विलम्ब भी हो गया किन्तु अन्ततः वही हुआ जो इसके जन्मदाता डा० ए मौं चाहते थे। इसे विशुद्ध फसपलमें विलीन कर दिया गया।

छात्रोंका आन्दोलन—इन्हीं दिनों रंगून विश्वविद्यालय छात्रसंघकी ओरसे प्रधानमन्त्री जनरल ने विनको एक पत्रक भेजकर अनुरोध किया गया कि वे कुलपतिके अधिकारोंका प्रयोग कर उन छात्रोंकी गतिविधिपर रोक लगायें जो छात्रसंघकी कौंसिलमें रहकर 'स्वे-एँइ' नेताओंके कठपुतले बने हुए थे और कार्योंमें बाधा पहुँचाते थे। छात्रसंघके नेताओंने पत्रक द्वारा जनरल ने विनका ध्यान शिक्षाविभागके ऐसे ही अन्य आर्यकलापोंकी ओर भी आकृष्ट किया था। उन्होंने यह भी उल्लेख किया था कि पिछले वर्षोंमें जब भी विश्वविद्यालय छात्रसंघके पदाधिकारियोंका निर्वाचन होता रहा, विश्वविद्यालयके अधिकारी पूरी सहायता पहुँचाते थे, किन्तु बादमें इसका अभाव दिखाई देने लगा था जो अनुचित था।

रंगून विश्वविद्यालयोंके छात्रोंकी तत्कालीन गतिविधिके सम्बन्धमें कुछ और भी उल्लेख्य बातें हैं। उक्त विश्वविद्यालयमें प्रत्येक विचारधाराके छात्रोंका अपना अलग संघटन था और इन संघटनोंके पीछे उच्च नेताओंका भी हाथ था। 'स्वे एँइ'

नेताओं और साम्यवादियोंकी तो इनमें विशेष दिलचस्पी रहती थी। ऊ नुकी छत्रच्छाया किसी दलविशेषपर तो नहीं थी, परन्तु कुछ छात्र उनके विशेष भक्त और कुछ उनके विमुख सर्वदा ही रहते आये थे। उन दिनों छात्रोंका सर्वाधिक बहुमत ऊ नुके पक्षमें हो गया था। इसके दो प्रधान हेतु थे। ऊ नुने अपने शासनकालमें देशभरकी प्रारम्भिकसे लेकर विश्वविद्यालयतककी शिक्षाको निःशुल्क कर दिया था। परन्तु उनके हाथसे सत्ता जानेके बादसे ही सारे देशमें शिक्षा-शुल्क लगा दिया गया। यह एक महान् परिवर्तन था। इसके कारण यदि बहुसंख्यक छात्रवर्ग ऊ नुको पुनः सत्तारूढ़ देखनेकी अभिलाषा करने लगे तो स्वाभाविक ही था। फिर ऊ नुने फरार बागियोंको बाहर आकर सरकारके साथ मिल जानेकी जो छूट दे रखी थी, यह भी एक भारी आकर्षण था। वामपक्षीय विचारधाराके सभी छात्र इस कदमके समर्थक थे। उन्हें मुँहमाँगी मुराद मिली थी। परन्तु वह हो नहीं पाया। तो भी इसके लिए ऊ नु तो दोषी ठहराये नहीं जा सकते थे। यदि फरार साम्यवादी बाहर नहीं आ सकते तो इसके लिए 'स्वे एँइ' नेता ही उत्तरदायी थे और फिर जनरल ने विन। इन परिस्थितियोंमें रंगून विश्वविद्यालयके छात्रोंका ऐसा असाधारण जनमत ऊ नुके पक्षमें होना 'स्वे एँइ' नेताओंको कभी भी पसन्द नहीं आ सकता था। क्योंकि इससे आम निर्वाचनके निमित्त ऊ नुके पक्षके लिए बहुत सबल स्थितिका सर्जन होता जा रहा था।

विविध राजनीतिक दलों और संस्थाओंकी तत्कालीन प्रतिक्रियाओंका यह एक अत्यन्त संक्षिप्त विश्लेषण है।

चुनाव-चर्चा और अभियान

१९५९ के जून मासके मध्यमें जब जनरल ने विन इजरायल जा रहे थे तो कलकत्तामें पत्र प्रतिनिधियोंने आपसे प्रश्न किया कि वे बर्मामें आम चुनाव कब कराने जा रहे हैं। प्रश्नका उत्तर देते हुए ने विनने दृढ़तापूर्वक कहा, '१९६०के अप्रैल मासतक।'

आम निर्वाचन करा देनेका ऐसा संकल्पपूर्ण विचार ने विनके मुखसे पहली बार सुननेको मिला था, तो भी, राजनीतिज्ञों और जनतामें इसका महान् प्रभाव पड़ा और चुनावकी चर्चा प्रारम्भ हो गयी। अब एक और ही प्रश्न उथल-पुथल मचाने लगा। वह यह कि, जनरल ने विन और उनके सहयोगी सैनिक अधिकारी भी चुनाव लड़नेवाले हैं या नहीं? इस प्रश्नका समुचित समाधान महीनों बाद हुआ। १९५९ के १३ अगस्तको शुरू होनेवाले संसदीय अधिवेशनके प्रश्नोत्तरोंने तो इसका परिहार किया ही, २५ अगस्तको एक पत्र-प्रतिनिधि सम्मेलन बुलाकर सेनाधिकारियोंने प्रत्येक शंकाका पूर्णतया समाधान कर दिया।

प्रश्नोत्तरके दौरानमें अधिकारियोंने निश्चयात्मक रूपसे कहा कि न ने विन चुनाव लड़ेंगे और न उनके साथी ही।

जनरल ने विनकी सरकारके सत्ताकालमें बलात्कारकी घटनाएँ बहुत बढ़ गयी थीं। इसलिए जब एक संवाददाताने यह प्रश्न किया तो सरकारी प्रवक्ताने कहा कि इसकी रोकथामकी ओर पूरा ध्यान दिया जा रहा है।

जनताकी सुख-सुविधाओंके प्रति सरकारी नीतिके सम्बन्धमें विचार व्यक्त करते हुए कर्नल मांग मांगने कहा कि सरकार

जो कुछ कर रही है उसका अधिकाधिक प्रचार किया जाना चाहिये।

बर्माके साम्यवादियोंकी शक्तिके सम्बन्धमें प्रश्न किये जानेपर एक सरकारी प्रवक्ताने कहा कि सशस्त्र क्रान्तिकारी साम्यवादियोंकी शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी है और उत्तरोत्तर क्षीण ही होती जा रही है, परन्तु जो नगर अथवा गाँवोंमें बैठे अवसरोंकी ताकमें हैं वे बहुत ही खतरनाक हैं। समाचारपत्रोंको चाहिये कि उन्हें ऐसी चेतावनी दें कि वे होशमें आ जायँ।

सैनिक खुफिया विभागके संचालक कर्नल वो लिवनने एक प्रश्नके उत्तरमें कहा कि सशस्त्र क्रान्तिमें लगे हुए विद्रोहियोंकी संख्या लगभग ६ हजार ३९० है जिनमें २ हजार ५०० सौ कुमिंतांगके भगोड़े हैं और शेषमें वर्मी साम्यवादी, शां और मुजाहिद सभी हैं।

इसके बाद ही प्रश्न किया गया कि 'क्या यह सच है कि आम चुनावके समय सैनिक अधिकारी अपने पदोंसे त्यागपत्र देकर चुनाव लड़ेंगे ?' इसपर कर्नल मांग मांगने तुरन्त उत्तर दिया—'नहीं, यह बिलकुल असंगत कार्य है कि जो चुनावकी देख-भाल करनेवाले हैं, वे ही चुनाव भी लड़ें। आप लोग इसके सम्बन्धमें कोई भ्रम न रखें। एक भी सैनिक अधिकारी चुनाव नहीं लड़ेगा और जो ऐसी अफवाहें उड़ायेंगे उनके विरोधमें कारखाइयाँ की जायँगी।'

फिर जब यह प्रश्न किया गया कि 'क्या निर्वाचनके बाद कुछ सैनिक अधिकारी सरकारी महत्त्वपूर्ण पदोंपर रहेंगे' तो प्रवक्ताने कहा कि 'इस सम्बन्धमें अभीसे ही कोई कुछ कैसे कह सकता है ? कौन जानता है कि तब क्या होगा ? आम निर्वाचनके बाद जो सरकार होगी वह जैसा निर्णय देगी वैसा किया जायगा।'

बर्मी संसद्‌में यह घोषणा हो जानेके पश्चात् कि सन् १९६० के जनवरी मासके अन्त अथवा फरवरीके प्रारम्भमें यहाँ आम निर्वाचन होने जा रहा है, सभी दल चुनाव लड़नेकी तैयारियाँ करने लगे।

बाह्य रूपसे ऐसा लगता था कि 'स्वे ऐंइ' दलका बोलबाला सबसे अधिक है किन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं थी। आम जनमत ऊ नुके पक्षमें अधिक था। समय-समयपर इन पंक्तियोंके लेखककी मुलाकात जिलोंसे आनेवाले अनेक सार्वजनिक कार्यकर्ताओंसे होती थी। वे कार्यकर्ता उन क्षेत्रोंके थे जहाँ कि विशुद्ध फसपल (ऊ नु दल) की शाखाएँ भी टूट चुकी थीं, परन्तु अब वहाँ शाखाओंकी पुनस्स्थापना होने लगी थी और चुनाव अभियान चालू हो गया। टाँगू जिलेके एक वयोवृद्ध कार्यकर्तासे एक बार बातचीतके दौरानमें लेखकने जब यह प्रश्न किया कि 'चुनावमें किसे मदद करने जा रहे हो?' तो उसके मुँहसे सहसा यह सुना कि 'ऊ नुको, दूसरा है कौन?' फिर उसने अपने निश्चयके कारणोंको स्पष्ट करते हुए बताया कि वैयक्तिक गुणोंमें तो ऊ नु सबसे अधिक आदरणीय हैं ही, यदि बर्मामें बुद्धधर्मको जीवित देखना हो तो भी यह परमावश्यक है कि चुनावकी जीतका सेहरा ऊ नुके ही सिर चढ़े और उनकी ही सरकार बने। रंगूनके पास-पड़ोसके साधारण बर्मियोंसे बातचीत करनेपर भी यही निष्कर्ष निकलता था। वे भी ऊ नुको ही पुनः सत्तारूढ़ देखना चाहते थे।

संसद्‌के इस अधिवेशनके प्रथम ही दिन परराष्ट्र एवं विधि-विभागीय मन्त्री ऊ चान ठुन आंगने घोषणा की कि सरकार १९६० के जनवरी मासके अन्त अथवा फरवरीके शुरू सप्ताहमें निश्चय ही आम निर्वाचन कराने जा रही है।

एक सदस्यके यह प्रश्न करनेपर कि क्या सरकार सम्पूर्ण

देशमें एक साथ ही आम निर्वाचन करायेगी अथवा एक-एक क्षेत्रके निर्वाचनके पृथक् समय निर्धारित करेगी, विधि मन्त्रीने उत्तर दिया—'सरकार इस प्रयत्नमें है कि सारे देशका आम निर्वाचन एक ही समय किया जाय।'

जनरल ने विनकी सरकारने दो भूतपूर्व मन्त्रियों और १२ संसदीय सदस्योंको गिरफ्तार कर रखा था और इनमेंसे भी १० सदस्यों तथा दोनों मन्त्रियोंको संसदीय काररवाइयाँ शुरू होनेसे पहले ही वहाँ लाया गया। दो गिरफ्तार सदस्य उपस्थित नहीं किये जा सके। इनमेंसे एक कोको टापूमें था जहाँसे लानेमें परिवहनकी कठिनाइयाँ थीं और एकको सजा सुनायी जा चुकी थी। जो १२ सदस्य लाये गये थे इनमें ६ 'विशुद्ध' फसपलके सदस्य थे। पाँच संयुक्त राष्ट्रीय मोरचा (नफ) के और केवल एक स्थायी फसपलका था। इस दलका नेतृत्व ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइ कर रहे थे। 'कोको टापू'में रखे गये संसदीय सदस्य भी 'नफ'के ही थे। गिरफ्तार मन्त्री तखिन चौ टुन और तखिन पा म्याइंग दोनों ऊ नु दलके विशिष्ट कार्यकर्ता रह चुके थे।

संसद्के इस अधिवेशनमें विशुद्ध फसपलके नेता ऊ नु और तखिन टिन उपस्थित थे। प्रधान मन्त्री जनरल ने विन नहीं सम्मिलित रहे। स्थायी 'फसपल' के नेता ऊ बा स्वे अस्वस्थता-वश और ऊ चौ एँइ विदेशभ्रमणपर होनेके कारण भाग नहीं ले सके।

संसदीय अधिवेशन चल ही रहा था कि सभी दल चुनावकी तैयारियोंमें लग गये। १५ अगस्तको विशुद्ध फसपलके संसदीय गुटकी एक बैठक दलके प्रधान कार्यालयमें हुई और दलका भावी कार्यक्रम क्या होगा इसे निर्धारित करनेके लिए तखिन टिनकी अध्यक्षतामें एक समितिका संघटन किया गया। इस बैठकका सभापतित्व ऊ नुने किया। विशुद्ध 'फसपल' के पुराने संसदीय

गुटमें थोड़ा फेर-बदल किया गया। जस्टिस पार्टीका विलयन विशुद्ध फसपलमें किये जानेके कारण उक्त परिवर्तन अनिवार्य हो गया था।

उस अधिवेशनका २० अगस्तका दिन सबसे अधिक संघर्षोंका रहा। विरोधी दलके अनेक सदस्योंने ऐसे प्रस्ताव प्रस्तुत किये जो विवादग्रस्त रहे, किन्तु सरकारी पक्षने बड़ी ही दृढ़ताका परिचय दिया। प्रस्तावकोंके क्षोभकी परवाह न करते हुए उन्हें रोका गया और करारा जवाब दिया गया।

'नफ'के एक विशिष्ट सदस्य तखिन छि मांगने एक प्रस्ताव रखकर सरकारसे माँग की थी कि सभी धार्मिक विदेशी मिशनरियोंपर प्रतिबन्ध लगा दिया जाय। प्रस्तावको तखिन छि मांगने पढ़ना आरम्भ ही किया था कि सरकारी पक्षके सदस्योंने एक स्वरसे उसका विरोध किया और प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं होने दिया गया। अध्यक्षने भी अनुमति नहीं दी।

उपर्युक्त प्रस्तावके सम्बन्धमें यह उल्लेख्य है कि तखिन छि मांग इसे संसद्के समक्ष प्रस्तुत करेंगे, इसकी चर्चा १५ दिनों पहलेसे हो चुकी थी और अनेक पत्रोंने इसपर अपना-अपना विचार व्यक्त किया था। 'नफ'की नीतिके समर्थक एक-दो बर्मी भाषाके पत्रोंको छोड़कर उक्त सभीने इसका विरोध किया था।

वस्तुतः बर्मामें सर्वाधिक सुनियोजित रूपसे ईसाई मिशनरियाँ काम कर रही हैं और तखिन छि मांगका संकेत भी उन्हींकी ओर था, परन्तु जब सरकारी पक्ष शनैः-शनैः पश्चिमी गुटकी ही ओर झुकता जा रहा था तो उनकी मिशनरियोंपर प्रतिबन्ध लगानेका प्रस्ताव कहाँतक युक्तिसंगत माना जा सकता था। साथ ही वैधानिक दृष्टिसे भी यह अनुचित था।

'नफ'के दूसरे प्रतिभाशाली एवं विद्वान् सदस्य ऊ तेंई पे मिंने एक प्रस्ताव रखना चाहा था किन्तु उसके लिए भी अनु-

मति नहीं मिली। ऊ तेंई पे मिंका प्रस्ताव था कि विश्वशान्तिकी स्थापनामें योगदान करनेके मन्तव्यसे बर्माको यह घोषणा कर देनी चाहिये कि वह किसी गुटमें शामिल नहीं होगा और न वह परमाणु अथवा उद्जन बमके रखनेके लिए अड्डा देगा।

आम-चुनावका अभियान—थोड़े ही समयमें आमचुनावका अभियान सभी मुख्य राजनीतिक दलोंने पूरी शक्तिसे चालू कर दिया। 'विशुद्ध' फसपलने अखिल बर्मी अधिवेशन रंगूनमें बुलाया। इसके अध्यक्ष ऊ नुने २७ सितम्बरको भाषण करते हुए बताया कि यदि उनका दल आम चुनावमें विजयी हुआ तो वे बौद्ध धर्मको राजधर्मकी मान्यना देंगे, भलाई योजनाको कार्यान्वित करेंगे तथा क्रान्तिमें लीन विद्रोहियोंसे समझौता नहीं करेंगे। इस अधिवेशनमें ५ हजार प्रतिनिधियोंने भाग लिया था जिनमें २ हजार ३ सौ प्रतिनिधि देशके अन्य जिलोंसे आये थे और शेष रंगून जिलेके थे।

बौद्ध धर्मको वैधानिक तौरपर राजधर्म मान लेनेकी माँग बर्माके कुछ लोगोंकी ओरसे पहलेसे होती आ रही थी। इसके लिए भिक्षुओंने अनेक वार प्रदर्शन भी किया था परन्तु ऐसा हो नहीं पाया। इससे बौद्धभिक्षु क्षुब्ध भी रहते आये थे और वैधानिक संरक्षण न मिलनेके कारण इस धर्मको हानि भी पहुँची थी। अभी ऊ नुकी ओरसे इसके लिए विश्वास दिलानेके दो अभिप्राय थे। आप बौद्ध धर्मप्रचारके लिए इस युगके 'अशोक' हैं, इसलिए उनका इसके विकासके लिए कृतसंकल्प होना स्वाभाविक ही था। आम चुनावके समय जनताको विश्वास दिलाकर अपनी ओर आकर्षित करना भी इस घोषणाका एक उद्देश्य कहा जा सकता है।

उस अधिवेशनमें ऊ नुके ऐसे भाषणका एक और भी हेतु था। इनसे तीन ही दिनों पहले स्थायी फसपलके नेता ऊ चौ एँइने

अपने दलके तत्त्वावधानमें आयोजित एक सभामें भाषण करते हुए ऊ नुपर परोक्ष रूपसे कटाक्ष किया था और उनकी हँसी उड़ायी थी। इस कटाक्षके लिए उन्होंने ऊ नुकी धार्मिक आस्थाओंको लक्ष्य किया था।

भाषणके दौरानमें ऊ चौ एँइने कहा था—ऊ नुका विशुद्ध फसपल दल देशमें शासनसत्ता स्थापित करनेके बिलकुल अयोग्य है क्योंकि वह धार्मिक आस्थाओंसे प्रभावित है। वह प्रार्थनाओंके बलपर शासन करना चाहता है और प्रार्थनाओंमें वह कहता क्या है?—'हे भगवान् बुद्ध, ऐसा वर दीजिये कि हमारा दल दीर्घजीवी रहे, इसके हाथसे सत्ता कभी न छूटे और कभी कोई भी विपदा आये तो आप इसे बचायें।' ऊ चौ एँइने कहा था—'ऐसी आस्थाएँ भिक्षुओं और भिक्षुणियोंको शोभा देती हैं, न कि उस सत्तारूढ़ दलको जिसे देशके शासनकी बागडोर सँभालनी हो।'

ऊ नुने जिस भलाई योजनाका जिक्र अपने भाषणमें किया था वह देशके विकाससे सम्बन्ध रखती थी। विद्रोहियोंसे समझौता न करनेका ऊ नुका निर्णय भी विशेष महत्त्व रखता था। ऐसी घोषणा न करनेसे उनके विरोधियोंको यह प्रचार करनेका मौका मिलता था कि ऊ नु कम्युनिस्टोंके प्रति हमदर्दी रखते हैं।

विशुद्ध 'फसपल'का अधिवेशन चार दिनोंतक चालू रहा। इसके उपाध्यक्ष तखिन टिनने दूसरे दिनके अधिवेशनमें दलकी भावी कार्यप्रणालीकी रूपरेखा प्रस्तुत की। आपने बताया था कि विशुद्ध फसपल जैसे समाजवादकी स्थापना चाहता है, उसका ढाँचा साम्यवादियों तथा वैयक्तिकतासे भिन्न है। इसकी शासन-व्यवस्था ऐसी होगी जो देशकी संस्कृति, रहन-सहन और धार्मिक आस्थाओंसे मेल खाये। आपने यह भी विश्वास दिलाया कि

बुद्ध धर्मको राजधर्मकी मान्यता दिलायी जायगी।

तखिन टिनने कहा—कुछ लोगोंने यह अफवाह फैलायी है कि आम चुनावमें विजयी होनेके पश्चात् विशुद्ध फसपल शासन चलानेमें समर्थ नहीं होगा। अतएव जनताको चाहिये कि वह फसपलके सत्ताकालके विगत १० वर्षोंके इतिहासपर दृष्टि डाले और देखे कि किस दलके नेताओंने किस पटुताका परिचय दिया था और शासन सँभालनेकी क्षमता किसमें कितनी है।

ऊ नुने शुद्ध 'फसपल'की सुप्रीम कौंसिलमें भाषण करते हुए घोषणा की कि यदि हमारे दलने आम निर्वाचनमें विजय प्राप्त की तो बुद्ध धर्मको राज्यधर्मका स्थान तो दिया जायगा, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अन्य धर्मोंको किसी प्रकारकी क्षति पहुँचायी जायगी। अन्य धर्मावलम्बियोंके अधिकारोंमें किसी प्रकारकी कमी नहीं होगी।

ऊ नुने कहा कि बर्मामें एकताकी बहुत बड़ी जरूरत है और यदि बुद्ध धर्म राज्यधर्म मान लिया जायगा तो इससे इस एकताको बल प्राप्त होगा। मैंने अपनी सरकारके शासनकालमें न अन्य किसी धर्मका दमन होने दिया था, न फिर सत्ता हाथ आनेपर ऐसा होने पायेगा।

इसी मासमें बर्मी दीप-पर्व था जिसके बारेमें ऊ नुने कहा कि हमारी परम्परा है कि इस अवसरपर बड़े-बूढ़ोंका आदर किया जाय और मैं चाहता हूँ कि इसकी रक्षा होनी चाहिये। सबको यथोचित सम्मान देना चाहिये।

आम चुनावकी चर्चा करते हुए ऊ नुने कहा कि चुनावमें दो दल खड़े हो रहे हैं जिनमें एक लोकतन्त्रशाही है और दूसरा फासिस्ट (सामन्तशाहीका पोषक), इसलिए जनताको चाहिये कि वह केवल मतदान ही न करे बल्कि जो दल उसे पसन्द हो उसे वह धन-दान भी दे। आपने अपने कार्यकर्ताओंको सावधान

करते हुए कहा कि उन्हें चाहिये कि गलत ढंगसे पैसे न वसूल करें।

आपने स्थायी फसपलको चुनौती देते हुए कहा कि हमारा दल स्वार्थियों और अवसरवादियोंको जनतापर हावी न होने देगा। हमारा ध्येय केवल चुनाव जीतना नहीं है। हमें इस देशमें प्रजातन्त्रको जीवित देखना है अन्यथा लोग हमें मनमाना हाँकने लगेंगे। बर्मामें समाजवादका नारा लगाना एक फैशन बन गया है। लेकिन समाजवादी कहलानेवालोंने इस वादके नामपर लज्जाजनक धब्बा लगाया है। सच्चा समाजवाद कायम करनेमें काफी समय लगेगा और यह कार्य केवल कागजी योजनाओंसे नहीं होगा। स्वयंको अच्छा बनाने और अच्छे कार्योंके करनेसे ही इस अभीष्टकी सिद्धि होगी।

भाषणका उपसंहार करते हुए ऊ नुने कहा—"हम विश्वास दिला रहे हैं कि देशको सच्चे समाजवादी ढाँचेमें ढालेंगे और जनताको खुशहाल रखेंगे।"

सन् १९५९, १ दिसम्बरको भूतपूर्व उपप्रधान मन्त्री एवं 'स्थायी फसपल'के उपनेता ऊ चौ एँइने पत्रप्रतिनिधि सम्मेलन बुलाया। इन दिनोंतक कुछ शहरोंकी नगरपालिकाओंके निर्वाचन होने लगे थे जिनमें 'स्थायी फसपल' हारता जा रहा था; अतएव उन निर्वाचनोंको लक्ष्य करके ऊ चौ एँइने कहा कि छोटे नगरोंमें भले ही स्थायी फसपल हारता जा रहा हो परन्तु मांडले और रंगून जैसे शहरोंमें इसकी विजय निश्चित है। ऊ चौ एँइने विशुद्ध फसपलके नेताओंपर दोषारोपण किया था कि उन्होंने विविध झूठे प्रचारों द्वारा जनताको स्थायी फसपलके विरोधमें खड़ा कर दिया है।

एक पत्र-प्रतिनिधिने ऊ चौ एँइसे पूछा कि नगरपालिकाके निर्वाचनोंमें स्थायी फसपल क्यों ऐसी बुरी तरह हार रहा है तो

उन्होंने जवाब दिया कि इसके तीन कारण हैं—

१. विशुद्ध फसपलके नेताओंने यह प्रचार करके कि जनरलने विनकी सरकार जो कुछ सख्ती कर रही है उसके पीछे स्थायी फसपलका हाथ है, आम जनताको इस दलके विरोधमें भड़का दिया है।

२. स्थायी फसपलके कुछ सदस्योंमें अत्यधिक आत्मविश्वास आ गया है जिस कारण वे जनताकी नजरोंसे गिर गये हैं।

३. ऊ नु दल जी-जानसे प्रयत्नशील है कि वह फिर सत्तारूढ़ हो जाय। इसके लिए वह कोई उपाय छोड़ नहीं रहा है। वह बौद्ध भिक्षुसंघकी शक्तियोंतकका उपयोग कर रहा है।

सम्मेलनका उपसंहार करते हुए ऊ चौ एँइने कहा कि नगरपालिकाके निर्वाचनोंमें स्थायी फसपल भले ही हारता हो लेकिन देशव्यापी बड़े आम चुनावमें यह जीतकर रहेगा। माण्डले और रंगून जैसे विशिष्ट नगरोंकी नगरपालिका तथा पौरसंघके निर्वाचनोंमें भी इसकी विजय होगी।

पत्र-प्रतिनिधि सम्मेलनसे एक दिन पहले ३० नवम्बरको ऊ चौ एँइने बौद्धभिक्षु नेताओंको भी आमन्त्रित किया था। आपने उनके समक्ष यह स्पष्टीकरण पेश किया कि ऊ नु दलके नेता नाहक यह प्रचार करते फिर रहे हैं कि स्थायी फसपल बुद्धधर्मविरोधी कारवाइयाँ कर रहा है। ऊ चौ एँइने भिक्षु नेताओंको विश्वास दिलाया कि 'भले ही स्थायी फसपल सत्तारूढ़ न हो सके, किन्तु संसद्‌में इसके इतने सदस्य तो होंगे ही जिनकी संख्या खासी अच्छी होगी और वे भिक्षुसंघकी माँगोंको संसद् द्वारा स्वीकार करानेमें सर्वदा प्रयत्नशील रहेंगे।

ऊ चौ एँइसे भी एक दिन पहले ऊ बा स्वेने, जो स्थायी फसपलके मुख्य नेता थे, पत्र-प्रतिनिधि सम्मेलन बुलाया था। आपने ऊ नु दलके चुनाव अभियानकी निन्दा करते हुए कहा

कि सत्तारूढ़ होनेपर बौद्ध धर्मको राज्यधर्मकी मान्यता प्रदान करनेका जो प्रलोभन ऊ नु दल दे रहा है वह अवैधानिक है। चुनाव अभियानमें धर्मका माध्यम नहीं लेना चाहिये।

ऊ बा स्वेने पत्र-प्रतिनिधियोंको बताया कि नगरपालिकाओंके निर्वाचनसे बड़े आम चुनावका कोई सम्बन्ध नहीं है। आम चुनावमें स्थायी फसपलकी विजय निश्चित है। देशका अधिक जनमत किस दलकी सरकारं चाहता है उसका निर्णय आम निर्वाचनसे ही होगा। ऊ बा स्वेने भी माण्डले और रंगून जैसे विशेष नगरोंकी नगरपालिका तथा पौरसंघके निर्वाचनोंमें अपने दलकी विजयकी पूरी आशा प्रकट की और उसके बाद ही चुनाव अभियानके सिलसिलेमें कयिन राज्यका दौरा शुरू कर दिया।

बर्माके मुख्य नगरोंमें मौलमीन भी एक है। वहाँकी नगरपालिकाका आम निर्वाचन शुरू होनेसे पहले ही स्थायी फसपलके अध्यक्ष ऊ बा स्वे मौलमीन पहुँचे और अभियानमें संलग्न हो गये। मतदाताओंको प्रभावित करनेका उन्होंने एक नया तरीका अख्तियार किया। निजी हस्ताक्षारसे मतदाताओंके पास पत्र भेजकर अपने दलके उम्मीदवारोंको मतदान करनेकी उन्होंने अपील की।

मतदाओंको लिखे गये अपने पत्रमें ऊ बा स्वेने कहा 'मैं स्वयं तनासरिम कमिश्नरीका रहनेवाला हूँ और मेरे हृदयमें सर्वदा ही देशभक्ति रही है। मौलमीन तनासरिम प्रदेशका मुख्य नगर है और मुझे पूर्ण आशा है कि इस नगरके निवासी मेरा समर्थन करेंगे।' आगे आपने कहा कि 'स्थायी फसपल मेरा राजनीतिक दल है और नगरपालिकाके चुनावमें खड़े होनेवाले उम्मीदवार मेरे प्रतिनिधि हैं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि मौलमीनकी जनता मुझे ही विजयी देखना चाहेगी। मेरी विजयमें उनकी विजय है।'

ऐसा ही कलात्मक एवं सांस्कारिक अभियान 'विशुद्ध फसपल'-के कार्यकर्त्ताओंने भी वहाँ शुरू किया। तनासरिम कमिश्नरीके विशुद्ध फसपलके अध्यक्ष और रंगूनके कुछ नेता भी मौलमीन पहुँच गये। अन्य प्रमुख नगरोंमें जहाँ भी नगरपालिकाके निर्वाचन हुए थे, विशुद्ध फसपलके नेता विजयी हुए थे। परन्तु मौलमीनमें 'स्थायी फसपल'के लोग ऐसा नहीं होने देना चाहते थे। वे जी-जानसे प्रयत्नशील थे। परन्तु साथ ही विशुद्ध फसपलने भी अपने प्रयत्नोंमें कोई कोर-कसर नहीं रखी थी और यही दल अन्तमें विजयी भी हुआ।

विशुद्ध फसपलके नेताओंने निश्चय किया था कि वे स्थायी फसपलके नेताओंके साथ जोड़के तोड़ नेताओंको चुनाव लड़नेके लिए खड़ा करेंगे। इस रीतिसे ऊ बा स्वेके मुकाबलेमें ऊ नु चुनाव लड़नेवाले थे। संयुक्त फसपलके मन्त्रिमण्डलमें दो मुसलिम मन्त्री थे। श्री लतीफ उर्फ ऊ खिन मांग लाट और श्री एम० ए० रशीद उर्फ ऊ रशीद। अभी आप दोनों दो बड़े प्रतिद्वन्द्वी दलोंके समर्थक हो गये थे। इसलिए दोनों एक ही क्षेत्रमें उम्मीदवार खड़े हुए।

जिस समय 'फसपल' दो दलोंमें नहीं बँटा था, निर्वाचनोंके समय इस दलकी मतदान पेटियोंपर स्वर्गीय जनरल आंग सांग-का चित्र रहा करता था, परन्तु इस दलके विभाजनके कारण उक्त चित्रका प्रयोग बन्द कर दिया गया और विशुद्ध फसपलने अपने दलके नेता ऊ नुका चित्र प्रयोगमें लानेका निर्णय किया। इस निर्णयकी घोषणा हुए तो दो महीने हो गये थे किन्तु स्थायी फसपलकी ओरसे अब इसपर आपत्ति प्रकट की जाने लगी। यह दल ऊ नुके चित्रका प्रयोग किया जाना अनुचित बताने लगा। अनौचित्यके सम्बन्धमें स्थायी फसपलके नेताओंका कहना था कि मतदान पेटियोंपर ऊ नुका चित्र देखकर मतदाता इस

भ्रममें पड़ सकते थे कि ऊ नु ही तो उस क्षेत्रके उम्मीदवार नहीं हैं ?

स्थायी फसपलने उपर्युक्त विरोध नवम्बर मासमें बर्मी विधि मन्त्री ऊ चान ठुन आंगके सामने पेश किया था। इसपर जब विधि मन्त्रीने दोनों दलोंके नेताओंको बुलाया तो वहाँ भी विरोध प्रस्तुत किया गया। स्थायी फसपलके दो प्रतिनिधि ऊ ठुन टिन और ऊ खिन मांग लाट वहाँ उपस्थित थे और मौखिक विरोध रखनेके बाद उन्होंने लिखित रूपसे भी आपत्ति प्रकट की। उन लोगोंने कहा कि चुनाव कानूनकी धारा ५१ (ए) में संशोधन होना चाहिये। सरकारकी ओरसे अबतक कोई निर्णय नहीं किया गया है। यह विरोध ऊ नुकी लोकप्रियताके कारण उपस्थित किया गया था। आम जनताका बहुमत ऊ नुके पक्षमें इतना अधिक था कि मतदान पेटीपर उनका चित्र देखकर सीधे-सादे बर्मी अवश्य ही अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित हो सकते थे। यदि ऐसा न होता तो भी ऊ नुका चित्र उनके भक्तोंको अधिक प्रभावित तो कर ही सकता था। वस्तुतः नगरपालिकाओंके निर्वाचनोंमें विशुद्ध फसपलकी असाधारण जीतके कारण स्थायी फसपलको काठ मार गया था और वे एक-न-एक बहाना ढूँढ़ने लगे थे। इससे पूर्व वे ऐसी बातोंपर बहुत ध्यान भी नहीं देते थे।

ऊ नुका चुनाव सम्बन्धी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषण सन् १९६० की १० जनवरीको रंगूनमें हुआ। उपस्थित जनताको सम्बोधित करते हुए ऊ नुने कहा—"आप मेरे दल अथवा व्यक्तित्वसे न प्रभावित हों, इनका कोई महत्त्व नहीं है। आप ऐसे प्रभावोंसे मुक्त रहकर मतदान करें। हमारा दल देशमें लोकतन्त्रकी स्थापना एवं व्यवस्थाके लिए खड़ा है। लोकतन्त्रमें हमारी जो आस्था है, यदि आप उसमें हिस्सेदार हैं तो हमारे लिए मतदान करें। यदि आप हमें मतदान नहीं करते हैं तो मानों

आपको 'फासिज्म' पसन्द है ।"

ऊ नुका निर्वाचनक्षेत्र पूर्वी रंगून था और वहाँके अपने सहयोगियोंके समक्ष विचार प्रकट करते हुए ऊ नुने कहा कि देश जिस अभीष्टकी सिद्धिके लिए आज यत्नशील है, वह स्पष्ट है । यह स्मरण रखनेकी जरूरत है कि फासिज्म सरलतासे सुलभ हो सकता है और लोकतन्त्रकी प्राप्ति कठिनाइयोंका सामना करनेसे होती है । मैं इस निर्वाचनक्षेत्रमें एक पैसा भी खर्च करनेके लिए नहीं तैयार हूँ । यदि आपको लोकतन्त्र प्रिय है तो आपको कठिनाइयोंका सामना करनेके लिए भी तैयार रहना ही चाहिये, कुर्बानियाँ करनेमें भी नहीं हिचकना चाहिये ।

ऊ नुके पश्चात् डा० ए मौं ने विचार व्यक्त किया और कहा कि आज देश उसी स्थितिसे गुजर रहा है, जैसी स्थिति १९४९ में थी । इस विषम स्थितिमें विशुद्ध फसपल ही देशको बचा सकता है । आप लोग यकीन रखिये कि विशुद्ध फसपलका अभीष्ट देशमें जनतन्त्रकी स्थापना करना है ।

निर्वाचन-सम्बन्धी डा० ए मौंके कुछ और भी विचार उल्लेख्य हैं । १२ फरवरी १९६० को स्थानीय अंग्रेजी दैनिक 'नेशन'के एक संवाददाताने डा० ए मौंसे उनके निवास-स्थानपर विशेष रूपसे भेंट की और यह प्रश्न किया कि 'लामडो' क्षेत्रमें स्थायी फसपलके अध्यक्ष ऊ बा स्वेके विरोधमें चुनाव लड़नेके लिए आप स्वेच्छया खड़े हुए हैं या ऊ नुने आपको विवश किया है ?

डा० ए मौं इन दिनों विशुद्ध फसपलके एक भूतपूर्व मन्त्री तखिन चौ डुनकी जमानतके लिए जो 'मूसा माधा अपहरण'के मामलेमें बन्द थे, प्रयत्नशील रहे और उसके लिए हाईकोर्टमें वकालत करके लौटे ही थे कि उपर्युक्त प्रश्न प्रस्तुत कर दिया गया । प्रश्न सुनते ही उन्होंने गांव वांग (टोपी) मेज-

पर पटक दी और कहा कि 'क्या आप मेरे और ऊ नुके बीच भी खाई खोदनेके इच्छुक हैं ?'

इसपर जब पत्र-प्रतिनिधिने कहा कि आप तो स्वयं भी यह विचार सुन रहे होंगे कि ऊ नुने डा० ए मौं और तखिन टिनको ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइके विरोधमें खड़ा करके उनके लिए राजनीतिक मौत माँगी है, तो डा० ए मौंने थोड़ा शान्त होकर उत्तर देना आरम्भ किया।

आपने कहा कि मैंने और तखिन टिनने स्वतः विशुद्ध फसपलकी एक बैठकमें ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइके विरोधमें उम्मीदवार खड़े होनेका प्रस्ताव किया था। ऊ नुका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः पहले तखिन टिनने ऊ चौ एँइके विरोधमें खड़े होनेके लिए अपने आपको प्रस्तुत किया और फिर मैंने अपनेको ऊ बा स्वेका प्रतिद्वन्द्वी घोषित किया।

आपने पत्र-प्रतिनिधिको सम्बोधित करते हुए कहा—"स्मरण रखिये, हम लोग बच्चे नहीं हैं। हम लोग जानते हैं कि ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइके विरोधमें खड़े होकर निश्चित खतरेका सामना करने जा रहे हैं, लेकिन हमारा विश्वास है कि जनता निस्सन्देह उनकी अपेक्षा हमें अधिक पसन्द करती है। साथ ही यदि हम और तखिन टिन हार जायँगे तो विशुद्ध फसपलकी बनी सरकार थोड़ी भी क्षीणबल नहीं होगी। और हम लोग इस दलके संघटनका काम करनेमें लग जायँगे, किन्तु यदि ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइ हारते हैं तो स्थायी फसपलका खात्मा होकर रहेगा। यदि हम दोनों हार जायँगे तो किसी अन्य क्षेत्रसे चुनाव भी नहीं लड़ेंगे।"

इसी भाँति ऊ बा स्वेके विचार भी उल्लेख्य हैं। १२ जनवरी १९६० को मौलमीनमें वक्तव्य देते हुए ऊ बा स्वेने कहा कि लामडो क्षेत्रमें हमारी विजय निश्चित है, किन्तु जिस क्षेत्रसे

आपको 'फ़ासिज्म' पसन्द है।"

ऊ नुका निर्वाचनक्षेत्र पूर्वी रंगून था और वहाँके अपने सहयोगियोंके समक्ष विचार प्रकट करते हुए ऊ नुने कहा कि देश जिस अभीष्टकी सिद्धिके लिए आज यत्नशील है, वह स्पष्ट है। यह स्मरण रखनेकी जरूरत है कि फ़ासिज्म सरलतासे सुलभ हो सकता है और लोकतन्त्रकी प्राप्ति कठिनाइयोंका सामना करनेसे होती है। मैं इस निर्वाचनक्षेत्रमें एक पैसा भी खर्च करनेके लिए नहीं तैयार हूँ। यदि आपको लोकतन्त्र प्रिय है तो आपको कठिनाइयोंका सामना करनेके लिए भी तैयार रहना ही चाहिये, कुर्बानियाँ करनेमें भी नहीं हिचकना चाहिये।

ऊ नुके पश्चात् डा० ए मौं ने विचार व्यक्त किया और कहा कि आज देश उसी स्थितिसे गुजर रहा है, जैसी स्थिति १९४९ में थी। इस विषम स्थितिमें विशुद्ध फसपल ही देशको बचा सकता है। आप लोग यकीन रखिये कि विशुद्ध फसपलका अभीष्ट देशमें जनतन्त्रकी स्थापना करना है।

निर्वाचन-सम्बन्धी डा० ए मौंके कुछ और भी विचार उल्लेख्य हैं। १२ फरवरी १९६० को स्थानीय अंग्रेजी दैनिक 'नेशन'के एक संवाददाताने डा० ए मौंसे उनके निवास-स्थानपर विशेष रूपसे भेंट की और यह प्रश्न किया कि 'लामडो' क्षेत्रमें स्थायी फसपलके अध्यक्ष ऊ बा स्वेके विरोधमें चुनाव लड़नेके लिए आप स्वेच्छया खड़े हुए हैं या ऊ नुने आपको विवश किया है?

डा० ए मौं इन दिनों विशुद्ध फसपलके एक भूतपूर्व मन्त्री तखिन चौ डुनकी जमानतके लिए जो 'मूसा माधा अपहरण'के मामलेमें बन्द थे, प्रयत्नशील रहे और उसके लिए हाईकोर्टमें वकालत करके लौटे ही थे कि उपर्युक्त प्रश्न प्रस्तुत कर दिया गया। प्रश्न सुनते ही उन्होंने गांव वांग (टोपी) मेज-

पर पटक दी और कहा कि 'क्या आप मेरे और ऊ नुके बीच भी खाई खोदनेके इच्छुक हैं ?'

इसपर जब पत्र-प्रतिनिधिने कहा कि आप तो स्वयं भी यह विचार सुन रहे होंगे कि ऊ नुने डा० ए मौं और तखिन टिनको ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइके विरोधमें खड़ा करके उनके लिए राजनीतिक मौत माँगी है, तो डा० ए मौंने थोड़ा शान्त होकर उत्तर देना आरम्भ किया।

आपने कहा कि मैंने और तखिन टिनने स्वतः विशुद्ध फसपलकी एक बैठकमें ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइके विरोधमें उम्मीदवार खड़े होनेका प्रस्ताव किया था। ऊ नुका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः पहले तखिन टिनने ऊ चौ एँइके विरोधमें खड़े होनेके लिए अपने आपको प्रस्तुत किया और फिर मैंने अपनेको ऊ बा स्वेका प्रतिद्वन्द्वी घोषित किया।

आपने पत्र-प्रतिनिधिको सम्बोधित करते हुए कहा—"स्मरण रखिये, हम लोग बच्चे नहीं हैं। हम लोग जानते हैं कि ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइके विरोधमें खड़े होकर निश्चित खतरेका सामना करने जा रहे हैं, लेकिन हमारा विश्वास है कि जनता निस्सन्देह उनकी अपेक्षा हमें अधिक पसन्द करती है। साथ ही यदि हम और तखिन टिन हार जायँगे तो विशुद्ध फसपलकी बनी सरकार थोड़ी भी क्षीणबल नहीं होगी। और हम लोग इस दलके संघटनका काम करनेमें लग जायँगे, किन्तु यदि ऊ बा स्वे और ऊ चौ एँइ हारते हैं तो स्थायी फसपलका खात्मा होकर रहेगा। यदि हम दोनों हार जायँगे तो किसी अन्य क्षेत्रसे चुनाव भी नहीं लड़ेंगे।"

इसी भाँति ऊ बा स्वेके विचार भी उल्लेख्य हैं। १२ जनवरी १९६० को मौलमीनमें वक्तव्य देते हुए ऊ बा स्वेने कहा कि लामडो क्षेत्रमें हमारी विजय निश्चित है, किन्तु जिस क्षेत्रसे

ऊ नु खड़े हो रहे हैं उसमें स्थायी फसपलकी विजयकी आशा नहीं है। सम्पूर्ण रंगूनके ९ निर्वाचनक्षेत्रोंमेंसे ५ या ६ में स्थायी फसपलकी निश्चित विजयकी आपने भविष्यवाणी की। तनासरिम इलाकेके मर्गुई और तवाय जिलोंके निर्वाचनफलोंके बारेमें आपने कहा कि इन दोनों जिलोंकी ६ सीटोंपर उनका पक्ष अधिकार पाकर रहेगा।

इधर मध्य रंगूनके निर्वाचनक्षेत्रके उम्मीदवारोंके वक्तव्य कुछ कम कौतूहलवर्द्धक नहीं हैं। १३ जनवरी १९६० को ऊ चौ एँइ और ऊ खिन मांग लाट (लतीफ) ने मध्य रंगूनके एक-एक व्यापारीके यहाँ जाकर उनसे कहा कि ऊ खिन मांग लाटको मतदान मिलना चाहिये। ऊ चौ एँइने व्यवसायियोंके सामने अपने दलकी व्यावसायिक नीतिका स्पष्टीकरण करते हुए प्रलोभनपूर्ण विचार रखा और ऊ खिन मांग लाटने मुसलमानोंसे यह कहा कि 'मध्य रंगून मेरा क्षेत्र है और यहाँ ऊ रशीद मेरे खिलाफ खड़े हुए हैं। एक मुसलमानका दूसरे मुसलमानके खिलाफ खड़ा होना गुनाह है, परन्तु इसकी जिम्मेदारी मेरे सिरपर नहीं मढ़ी जानी चाहिये।'

ऊ चौ एँइ ऊ खिन मांग लाटके द्वार-द्वारपर अलख जगानेके दूसरे ही दिन विशुद्ध फसपलके उम्मीदवार ऊ रशीदने अपना वक्तव्य दिया। आपने कहा कि 'मैं ऊ चौ एँइकी मनोवृत्ति तबसे जानता हूँ जब हम दोनों कालेजमें एक साथ अण्डर ग्रेजुएट्स थे। उनसे हिन्दू मुसलमान व्यवसायियोंका हितसाधन कहाँ ?' फिर स्थानीय अंग्रेजी दैनिक 'नेशन'के सम्पादकके नाम पत्र लिखकर आपने कहा कि ऊ खिन मांग लाटका यह दावा कि मध्य रंगून उनका क्षेत्र है, सरासर गलत है। यह पहला मौका है जब वे इस क्षेत्रसे चुनावमें उम्मीदवार खड़े हुए हैं। सबसे पहले जब वे संसदीय-निर्वाचनके लिए अपने घरके शहर

म्यांगम्यांमें खड़े हुए थे तो हार गये थे और फिर दो बार मईटीलऽ क्षेत्रसे खड़े हुए और जीते। मेरे लिए यह तीसरा अवसर है जब मैं रंगून क्षेत्रसे चुनाव लड़ने खड़ा हुआ हूँ। पहली बार सन् १९५२ में पूर्वी रंगूनसे चैम्बर आफ नेशनलिटीजके लिए निर्विरोध चुना गया था। सन् १९५६ में उसी सदनके लिए मध्य-रंगूनसे निर्वाचित हुआ था। अब तीसरी बार खड़ा हूँ।

लेकिन क्या, कौन किसके विरोधमें खड़ा हुआ है इससे कुछ मतलब निकलता है ? मैं चाहता हूँ कि ऊ खिन मांग लाट इन तुच्छ बातोंको छोड़ें और निर्वाचन आन्दोलनका स्तर ऊँचा उठने दें।

ऐसी थी उस समय देशव्यापी चुनाव-अभियानकी चर्चा और व्यापक प्रतिक्रिया।

बर्मी-चीनी मैत्री एवं अनाक्रमण सन्धि

स्वतन्त्रताप्राप्तिके बादसे ही बर्मा आन्तरिक कलहके कारण जैसी आपदाओंसे आक्रान्त रहता आ रहा है उससे कहीं अधिक आतंकित एवं त्रस्त वह अपने पड़ोसी देश चीनकी सीमाविषयक अस्पष्ट स्थितिके कारण तबतक रहा जबतक जनरल ने विन और चाउ एन लाइने उभय देशोंके प्रधान मन्त्रियोंकी हैसियतसे २८ जनवरी, १९६० को पेकिंगमें निम्नलिखित 'मैत्री एवं अनाक्रमण सन्धि' पर हस्ताक्षर नहीं कर दिये—

सन्धि-पत्र—बर्मा संघ और जनतान्त्रिक चीनकी सरकारोंने स्थायी शान्ति और उत्तमोत्तम मैत्री-सम्बन्ध कायम रखनेकी इच्छासे प्रेरित होकर तथा इस तथ्यसे सहमत होकर कि दोनों देशोंके पड़ोसी सम्बन्धों एवं पारस्परिक मैत्री भावनाओंको बल प्रदान करना दोनोंके हितोंका साधक होगा, वर्तमान सन्धिको सम्पन्न करनेका निश्चय किया है। यह सन्धि शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्वके पाँचों सिद्धान्तोंको दृष्टिकोणमें रखकर की जा रही है जो इस प्रकार है—

(१) सन्धि करनेवाले पक्ष एक-दूसरेके स्वातन्त्र्य एवं प्रभु-सत्ता-सम्बन्धी अधिकार और प्रादेशिक अखण्डताको सम्मान और मान्यता दे रहे हैं।

(२) दोनों पक्षोंके बीच सर्वदा शान्ति और उत्तमोत्तम मैत्री रहेगी तथा दोनों ही यह संकल्प कर रहे हैं कि वे अपने बीचके विवादोंको शान्तिपूर्ण विचार-विमर्श द्वारा ही सुलझायेंगे और इसके लिए बल-प्रयोग नहीं करेंगे।

(३) दोनों पक्ष यह दायित्व ले रहे हैं कि इनमेंसे कोई भी एक-दूसरेकी प्रतिद्वन्द्वितामें आक्रामक कार्य नहीं करेगा तथा किसी भी ऐसे सैनिक समझौतेमें शामिल नहीं होगा जो किसी

एकके विरोधमें किया जा रहा हो।

(४) सन्धि करनेवाले दोनों पक्ष घोषणा करते हैं कि वे उभय देशोंकी आर्थिक और सांस्कृतिक ग्रन्थियोंको विकसित करते हुए उसे दृढ़तर बनानेमें मैत्री एवं परस्पर सहयोगकी भावनासे काम लेंगे तथा समता और पारस्परिक हितका ध्यान रखते हुए एक-दूसरेके आन्तरिक मामलेमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

(५) यदि वर्तमान सन्धिके किसी एक अथवा एकसे अधिक नियमोंको समझने या लागू करनेमें किसी प्रकारका विवाद पैदा होगा तो उसका समाधान साधारण कूटनीतिक साधनों द्वारा विचार-विमर्श करके किया जायगा।

(६) १. वर्तमान सन्धिका पुष्टीकरण किया जाता है और इसके पुष्टीकरणका विलेखन यथासम्भव शीघ्र रंगूनमें किया जायगा।

२. ज्यों ही इस सन्धिका विलेखन हो जायगा उसके बादसे यह सन्धि लागू हो जायगी और भावी १० वर्षोंतक लागू रहेगी।

३. सन्धि करनेवाले पक्षोंमेंसे एक भी जबतक दूसरेको सन्धिकी अवधिकी समाप्तिके एक वर्ष पूर्व सूचना नहीं देगा तबतक यह अनिश्चित समयतक लागू रहेगी परन्तु प्रत्येक पक्षको यह अधिकार रहेगा कि वह जब चाहे तब दूसरेको एक वर्ष पहले सूचना देकर इसे समाप्त कर दे।

साक्षीके रूपमें बर्मा संघके प्रधान मन्त्री और जनतान्त्रिक चीनकी राज्यपरिषद्के प्रधान मन्त्रीने सन्धिपर हस्ताक्षर किये हैं।

सन् १९६० की २८ जनवरीको यह पेकिंगमें सम्पन्न हो रही है तथा इसकी प्रतिलिपियाँ चीनी और अंग्रेजी भाषाओंमें लिखी गयी हैं जिनके विवरण समान और प्रमाणित हैं।

बर्मा संघ सरकारके लिए (हस्ताक्षर)—ने विन

जनतान्त्रिक चीनी सरकारके लिए (हस्ताक्षर)–चाउ एन लाइ

बर्मा-चीनके बीच सीमा समझौता

बर्मा संघ और गणतन्त्र चीनकी सरकारें, दोनों देशोंके बीचकी सीमासमस्याके प्रश्नको हल करने तथा मैत्री-सम्बन्धमें उत्तरोत्तर वृद्धि लानेके लिए शान्तिमय सह-अस्तित्वके पाँचों सिद्धान्तोंके अनुसार निम्नलिखित समझौतेको सम्पन्न करनेके लिए राजी हुई हैं—

धारा—१. समझौता करनेवाली सरकारें अविलम्ब एक ऐसी संयुक्त समितिका संघटन करनेके निश्चयपर पहुँची हैं, जिसमें दोनों पक्षोंके बराबर संख्याके प्रतिनिधि होंगे और जो समझौतेकी धारा २ के अन्तर्गत निहित कार्योंको सम्पन्न करेगी तथा एक सीमानिर्धारण समितिका गठन करेगी जो बर्मी-चीनी सीमा सन्धिका मसविदा तैयार करेगी। यह समिति इन देशोंके राजधानी नगरों तथा देशके अन्य स्थानोंमें जहाँ उचित समझेगी निरन्तर बैठकें करती रहेगी।

धारा—२. समझौता करनेवाली सरकारें इस बातसे सहमत हैं कि बर्मा-चीनके बीचकी सीमा-समस्या निम्नलिखित व्यवस्थाओंके आधारपर हल की जायगी—

(१) पीमॉ, गॉलुम और कांगफांगको छोड़कर बर्मा-चीनकी सीमाके उस सम्पूर्ण क्षेत्रमें जिसकी सीमा निर्धारित नहीं हुई है सुण्डाकार ऊँची पर्वतीय चोटीसे लेकर पश्चिमी छोरतककी सीमा एक ओर तेपिंग, श्वेली, लू और तैरों नदियोंके बीच जल-प्रपातोंसे होती जायगी और दूसरी ओर 'न मइखा' नदीसे होती उस स्थानतक जहाँ यह चिंगदम और कुमकांगके बीच तैरों नदीको पार करती है, तथा फिर जल-प्रपातसे होती हुई तैरों और सामुल

नदियोंके बीचसे एक ओर, तथा तैरोंको छोड़ ईरावदीकी सभी सहायक नदियोंसे होती बर्मी-चीनी सीमाके धुर पश्चिमी छोरतक दूसरी ओर जायगी। यह समिति सीमा-सर्वेक्षणके लिए ऐसे दल भेजेगी जिसमें दोनों पक्षोंके व्यक्ति बराबर संख्यामें होंगे।

(२) पीमॉ, गॉलुम और कांगफांग क्षेत्रोंको, जो चीनके हैं, उसे वापस करनेके लिए बर्मा सरकार राजी हो गयी है। इस क्षेत्रका जितना हिस्सा चीनको वापस करना है उसकी बाबत संयुक्त समिति ४ फरवरी, १९५७ तथा २६ जुलाई १९५७ को नक्शोंपर किये गये निशानोंको तथा प्रस्तुत किये गये प्रस्तावोंको दृष्टिकोणमें रखते हुए विचार-विनिमय करेगी। जो भू-भाग वापस करना होगा उसके सम्बन्धमें निश्चय हो जानेपर दोनों देशोंकी ओरसे समान संख्यामें अधिकारी भेजे जायँगे जो निश्चित स्थानोंपर निशान लगायेंगे।

(३) नामवॉ और श्वेली नदियोंके संगमकी पासकी त्रिभुजाकार भूमि जिसे नामवॉ कहते हैं वह क्षेत्र चीनका है और जिसके लिए बर्मा निरन्तर पट्टा लिखता रहा है, चीन बर्माको वापस कर देगा और पट्टेकी प्रथा भंग कर दी जायगी। इसके बदलेमें बर्मा सरकार पांगहंग और पालाओं जातियोंके क्षेत्रको जो सीमारेखासे पश्चिम नामटिंग और नाम्या नदियोंके संगम स्थलपर है, चीनको वापस कर देगी। इस हस्तान्तरणके फलस्वरूप सीमाचिह्न स्थापित करनेका काम ब्रिटिश और चीनी सरकारोंके बीचके १८ जून, १९४१ के पत्राचारके आधारपर किया जायगा। इन क्षेत्रोंके चीनको वापस करनेके कार्य क्रमशः २६ जुलाई, १९५७ और ४ जून, १९५९ को बर्मा और चीनकी सरकारों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्तावों और नकशेपर लगाये गये निशानोंके अनुसार किये जायँगे। दोनों सरकारों द्वारा रखे प्रस्तावोंके अनुसार जहाँ क्षेत्रोंकी रेखा मिलेगी वह भाग निश्चय

ही चीनको वापस कर दिया जायगा और पांगहुंग जातियोंके क्षेत्रमें जहाँ प्रस्तावित क्षेत्रोंकी रेखामें मेल नहीं खायगा उसके निमित्त उभय देशोंके समान संख्याके अधिकारियोंका दल यह निश्चय करनेके लिए भेजा जायगा कि उक्त क्षेत्र चीनको वापस किया जाना चाहिये या नहीं। ज्यों ही यह निश्चय हो जायगा कि कौनसे भू-भाग वापस किये जायँ, दोनों सरकारोंके समान संख्याके अधिकारियोंके दल सीमा-चिह्न स्थापित करनेके लिए भेजे जायँगे।

(४) इस धाराके अनुच्छेद (३) में निहित शर्तोंके समायोजन करनेके अतिरिक्त नागरिक और नाम्या नदियोंके संगमके पासके सीमा-चिह्न ब्रिटिश और चीनी सरकारोंके बीचके १८ जून, १९४१ के पत्राचारके आधारपर स्थिर किये जायँगे। संयुक्त समिति दोनों देशोंके समान संख्या अधिकारियोंको भेजकर सीमा-चिह्न स्थापित करानेका काम करायेगी।

धारा—३. समझौता करनेवाली सरकारें निश्चय कर रही हैं कि संयुक्त-समिति वर्तमान समझौतेकी धारा २ में निहित शर्तोंको कार्यान्वित करनेके बाद बर्मी-चीनी सीमा-सन्धिका एक मसविदा तैयार करेगी जिसमें उन स्थलोंके बारेमें भी उल्लेख होगा जहाँ ब्रिटिश कालमें ही चिह्न स्थिर किये जा चुके थे और सम्प्रति उनके समायोजनकी आवश्यकता नहीं है।

दोनों देशोंकी सरकारों द्वारा हस्ताक्षर हो जानेके बाद यह सन्धि पहलेकी उन सभी सन्धियों और कागजोंकी पूर्ति करेगी जो कभी भी इन देशोंकी सरकारों द्वारा लिखे गये होंगे। चीनकी सरकार जिसकी नीति किसी भी विदेशी सरकारका हस्तक्षेप न बर्दास्त करनेकी तथा दूसरेकी प्रभुसत्ताको सम्मान देने की है, लुफांग क्षेत्रोंमें काम करनेके उस अधिकारको तिलांजलि दे रही है जो अधिकार उसे ब्रिटिश सरकारके १८ जून, १९४१ के

पत्रसे प्राप्त थे।

१. वर्तमान समझौतेका विलेखन अभी शेष है और यह यथासम्भव शीघ्र रंगूनमें सम्पन्न होगा।

२. यह समझौता विलेखनकी काररवाइयाँ पूरी होनेके बाद ही लागू हो जायगा और ज्योंही बर्मी-चीनी-सीमा-सन्धिपर दोनों देशोंकी सरकारोंके हस्ताक्षर हो जायँगे इसकी मान्यता समाप्त हो जायगी।

यह पेकिंगमें सन् १९६० के जनवरी मासके २८ वें दिन चीनी और अंग्रेजी भाषाओंमें अनुलिपिके रूपमें लिखा गया है।

बर्मा संघकी सरकारके लिए (हस्ताक्षर)–ने विन

गणतन्त्र चीनकी सरकारके लिए (हस्ताक्षर)–चाउ एन लाइ

राष्ट्र उद्धारक ने विन

६ फरवरीका वह दिन भी आ ही गया जिसकी प्रतीक्षा महीनोंसे थी। इस दिन अथवा इससे एक-दो दिन पहले या पीछे बर्मामें क्या होकर रहता इसकी कल्पनाओंमें लोग संलग्न थे। बीच-बीचमें ऐसे समाचार भी प्रसारित हो जाते थे जो आश्चर्यचकित कर देते थे। इससे एक सप्ताह पूर्व छिन प्रदेशमें यह समाचार फैला दिया गया था कि 'ऊ नुकी हत्या कर दी गयी है।' फिर ४ फरवरीको ऊ चौ ऍंइने एक भाषणमें कहा था कि 'ऊ नु इस प्रकारके षड्यन्त्रकी सोच रहे हैं कि कहीं सभा करते हुए अपने ही आदमीसे हथगोला फेंकवाकर हमारे दलके मत्थे अभियोग मढ़ें।' ऊ चौ ऍंइके उक्त भाषणने तो सुलगती आगको घृताहुति देनेका काम किया था। साधारणतः लोगोंने निश्चित धारणा बना ली थी कि एक-न-एक विध्वंसक घटना घटकर रहेगी, परन्तु कोई दुर्घटना घटी नहीं।

वास्तवमें फरवरी महीनेका पहला सप्ताह चुनाव अभियानकी आँधियोंका रहा। एक सभामें भाषण करते हुए ऊ बा स्वेने कहा 'यदि हमारे दलने चुनाव जीता तो जो भी व्यवसाय गैर आदिवासियोंके हाथमें है वह उनसे छीनकर आदिवासियोंको सौंप दिया जायगा।' भारतीयोंका योगदान, चाहे वे बर्मी नागरिक बन गये हों अथवा विदेशी हों, ऊ नु दलको था। ऊ बा स्वे दलका तो यह भी आरोप था कि भारतीयोंने गुप्त रूपसे लाखों रुपये ऊ नु दलके चुनाव अभियानके लिए सहायतार्थ दिये हैं।

५ फरवरीकी राततक सभाएँ चालू रहीं और सनसनीखेज खबरें तथा भाषण होते रहे। सरकारी सभी कामोंके लिए ६

फरवरीकी छुट्टीकी विज्ञप्ति हो ही गयी थी और व्यापारियोंको भी कारोबार बन्द रखनेका निर्देश दिया गया था।

६ फरवरीको प्रातःकाल रंगूनकी सड़कें एकदम सूनी लगती थीं, सन्नाटा छाया हुआ था, और ऐसा प्रतीत होता था कि लोग घरोंसे बाहर निकलनेमें भय मानते हों। मतदानका समय प्रातः काल ७ बजे निश्चित कर रखा गया था किन्तु तबतक सड़कोंपर बहुत कम लोग नजर आते थे। पीछे ज्यों-ज्यों दिन बढ़ता गया, सूर्यके तेजके साथ ही भीड़ भी बढ़ती गयी और लगभग ९ बजे-तक अपने-अपने दलोंके झण्डोंको फहराती हुई बहुसंख्यक मोटरों-की दौड़ होने लगी। यदाकदा कम होकर मतदाताओंकी यह भीड़ शामतक बनी रही। मतदानकी समाप्तिका समय सायंकाल ७ बजेका रखा गया था। उससे दो घण्टे पहलेसे मतदान केन्द्रों-को चारों ओरसे आदमी घेरे हुए दिखाई देते थे। सात बजे 'बूथ्स पण्डाल' सुनसान हो गये और सिटी हालके चारों ओर जनसमूह उमड़ पड़ा क्योंकि मतदानस्थलोंसे पेटियाँ ला-लाकर मतोंकी गणना वहीं होनी थी।

यों तो सुरक्षाकी व्यवस्था सर्वत्र ही कर रखी गयी थी, परन्तु सिटी हालकी व्यवस्था विशेष रूपसे की गयी थी। मतदानकी पेटियाँ लेकर आती हुई मोटरोंकी सुरक्षाके बन्दोबस्तके साथ लानेवालोंको निर्देश दे रखा गया था कि वे किसीपर किसी प्रकार भी यह न प्रकट होने दें कि अमुक पेटियाँ कहाँसे लायी जा रही थीं। पुलिस, सैनिक पुलिस और सेना विभागके अधि-कारियों तथा रक्षकोंकी तत्परता अवलोकनीय एवं आदर्श थी। इस प्रकार ६ फरवरीका दिन भी वैसे ही निरापद बीता जैसे सन् १९५८ के ५ जूनका बीता था जिस दिन ऊ बा स्वेने नु सरकारपर अविश्वासका प्रस्ताव संसद्के समक्ष रखा था। तब, जब सत्तारूढ़ दलके दो भागोंमें बँट जानेसे विनाशक घटनाओंकी

आशंकाएँ थीं और, अब, जब पुनः सत्ता प्राप्त करनेके मोहमें भ्रान्त हो ध्वंसक कृत्योंपर तुल जानेके सभी कारण उत्पन्न हो गये थे। इन परिस्थितियोंमें जनरल ने विनने जिस कुशल नेतृत्व एवं सुशासनका परिचय दिया, वह बर्माके राजनीतिक इतिहासमें अनन्त कालतक स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेगा। मतदान-कालमें बर्मी राष्ट्रपतिने अपनेको तटस्थ रखा। आपने अपना मतदान किया ही नहीं, यद्यपि यह घोषणा की जा चुकी थी कि वे प्रथम व्यक्ति होंगे जो मतदान करेंगे।

ऊ नु, ६ फरवरीको अपने निवासस्थानके पासके मतदान केन्द्रतक मतदान करनेके लिए बाहर आये थे अन्यथा घरपर ही रहे। उक्त केन्द्रपर जब वे पहुँचे तो एक वृद्धाने ऊँचे स्वरमें कहा कि 'विशुद्ध फसपलके अध्यक्ष ऊ नु दीर्घजीवी हों।' इसपर ऊ नुने कहा—'शोर करना चुनावके कानूनको तोड़ना है इसलिए शान्त रहो।' पत्रकारोंने ऊ नुसे मिलना चाहा परन्तु उन्होंने इसका अवसर ही नहीं दिया। पूर्वी रंगूनके डला क्षेत्रमें एक मर्मस्पर्शी दृश्य तब प्रस्तुत हो गया जब ७५ वर्षीय ऊ बा खिं नामक एक अन्धे वृद्धने आकर वहाँके चुनाव अधिकारीसे कहा, 'मैं अपना मत ऊ नुकी पेटीमें डालना चाहता हूँ।'

चुनावमें स्थायी फसपलके अध्यक्ष एवं भूतपूर्व प्रधान मन्त्री ऊ बा स्वेको डाक्टर ए मौंके मुकाबलेमें भी करारी हार मिली थी। ऊ बा स्वेको ५१४४ और ए मौंको १२४३० मत प्राप्त हुए थे। ऊ खिं मांग लाटके मुकाबलेमें ऊ रशीदको भी शानदार विजय मिली। स्थायी फसपलके दूसरे उच्चतम नेता ऊ चौ एँइकी हारने तो सबको आश्चर्यमें डाल दिया। ६ फरवरीको प्रातःकालसे ही ७०० मोटरोंकी व्यवस्था उन्होंने कर रखी थी। दिनके २ बजे जब एक पत्रकारने पूछा तो ऊ चौ एँइने कह भी दिया था, 'मैं अपनी विजय निश्चित समझता हूँ।' श्रीमती चौ एँइ तो

एक कदम और आगे बढ़ गयी थीं और नारी सुलभ उल्लाससे बोल पड़ीं—'हमने चुनाव अभियान ही ऐसा चालू कर रखा था।' लेकिन आपको अपने प्रतिद्वन्द्वी नेता विशुद्ध फसपलके उपाध्यक्ष तखिन टिनको प्राप्त २०६३६ मतोंके मुकाबलेमें केवल ९२३२ मत मिले। रंगूनके ९ चुनाव-क्षेत्रोंमेंसे प्रत्येकमें विशुद्ध फसपलकी जीत हुई जिसके फलस्वरूप स्थायी फसपलके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री ऊ बा स्वे, उपप्रधान मन्त्री ऊ चौ एँइ, गृहमन्त्री बो खिन मांग ले, विधि मन्त्री ऊ खिन मांग लाट (लतीफ) तथा अन्य मन्त्रिगण ऊ ठुन टिन और ऊ टिन यूंकी हार हुई। स्वतन्त्र उम्मीदवारोंकी आशाओंपर तो पानी ही फिर गया। कम्युनिस्ट परायण 'नफ' (संयुक्त राष्ट्रीय मोरचा) ने भी मानों अस्तित्व ही खो दिया। ऊ एँइ पे मिं, ऊ बा एँइ, तखिन छि मांग और बो ठुन सेंइ सभी चुनावमें पराजित हुए।

ऊ नुको उक्त निर्वाचनमें जो विजय मिली उसके मुख्य रूपसे दो कारण थे। एक तो बर्मी आम जनता बुद्धधर्मपरायण है और इस धर्मके प्रचारके लिए ऊ नु जो कुछ कर रहे हैं, उसकी मान्यतामें भारतीय पत्र उन्हें 'युगके सम्राट् अशोक'की उपाधि प्रदान कर चुके हैं। दूसरे जनरल ने विनकी सरकारके दिनोंमें जिलोंके सैनिक अधिकारियों द्वारा जो ज्यादतियाँ हुई थीं, उनका कुप्रभाव एवं कलंक नुके प्रतिद्वन्द्वियोंके सिरपर मढ़ा गया। आम जनता क्षुब्ध एवं क्रुद्ध, अवसरकी ताकमें बैठी थी।

आम निर्वाचनमें विजयी होनेका सेहरा तो चाहे जिनके सिर चढ़ा परन्तु 'राष्ट्र उद्धारक' कहलानेका मुकुट तो जनरल ने विनके ही यशस्वी मस्तकपर रखा जाना चाहिये। सन् १९५९ के २८ सितम्बरसे १९६० के १ अप्रैलतक शासन सँभालते हुए इस वीरपुंगव सेनापतिने जिस नीतिकुशलता और दृढ़ताका परिचय दिया वह वर्णनातीत है। आम-निर्वाचनकी घोषणा हो

जानेके पश्चात् प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे जनरल ने विनने १९५९ की २१ दिसम्बरको सरकारी, सैनिक और असैनिक अधिकारियोंको कहा था—आम निर्वाचनके समय अधिकारियोंको हर प्रकारसे तटस्थ रहना चाहिये। उन्हें किसी दलका पक्ष नहीं लेना चाहिये। मतदानके समय किसीको संकेततक न देना चाहिये और न अपने विरोधियोंका दमन करना चाहिये।

इस अवसरपर जनरल ने विनने बर्माके राजनीतिक इतिहासपर विहंगम दृष्टि डालते हुए उन परिस्थितियोंका मार्मिक विवरण दिया जिनसे विवश होकर १९५८ में राजनीतिज्ञोंने ने विनको सत्ता सँभालनेके लिए आमन्त्रित किया था। आपने कहा कि प्रारम्भमें लोगोंने भाँति-भाँतिके विचार देने शुरू किये, किन्तु आगे चलकर वास्तविकता छिपी नहीं रही और जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हमें बुलाया गया था, उसे सबने अनुभव किया। सरकारने जिस प्रकार दायित्व सँभाला उसका विवरण देते हुए ने विनने सरकारी अधिकारियोंसे कहा कि अब आवश्यक यह है कि स्वतन्त्र और स्वेच्छया निर्वाचन कराया जाय और यदि सरकारी अधिकारी अपने कर्तव्योंकी पूर्तिमें तत्पर रहेंगे तो वैसी सरकारका निर्माण होकर रहेगा, जैसी सरकार जनता चाहती है।

जनरल ने विनने जिस दृढ़ताके साथ उपर्युक्त विचार प्रकट किया, वह अभूतपूर्व था। सैनिक अधिकारियोंने जिस प्रकार 'विशुद्ध' फसपलका दमन जारी रखा था, उससे अनुमान किया जाने लगा था कि आपका झुकाव स्थायी फसपलकी ओर था। कहीं-कहीं तो सैनिक अधिकारी ऐसे संकेत करते थे कि जिससे स्थायी फसपलकी ओर उनका झुकाव स्पष्ट हो जाता था। परिणामस्वरूप जनरल ने विनका भाषण विचारणीय बन गया था। किसी-किसी पक्षका तो यह भी कहना था कि नगरपालिकाओंके

निर्वाचनमें विशुद्ध फसपलकी शानदार विजय देखकर जनरल ने विनको निश्चय हो गया है कि यह दल आम-निर्वाचनमें निश्चय ही विजयी होने जा रहा है और इसीलिए उन्होंने अपनी स्थिति सँभालनेकी दृष्टिसे यह भाषण किया है। तो भी, ऐसी विचार-धाराओंके लोग, जो इस बातमें व्यक्तिगत रूपसे ने विनको दोषी नहीं मानते थे कि सेनाने विशुद्ध फसपलका दमन किया है, वे उपर्युक्त विचारधारासे दूर रहे। उनका कहना था कि ने विनकी अधीनतामें काम करनेवाले कतिपय अधिकारियोंने मनमानी करके सम्पूर्ण सेना-विभागके पक्षपाती होनेका कलंक सिरपर लिया है।

ये धारणाएँ तो जनरल ने विनके भाषणके प्रति गौण रूपसे व्यक्त की जा रही थीं, किन्तु निश्चित बात तो यह थी कि ने विनके विचारोंको सुनकर आम जनताको भारी राहत मिली थी। निर्वाचन-कालमें वह किसी प्रकार भी दबायी न जायगी, इसकी उसे पूर्ण आशा हो गयी थी।

जनरल ने विनके राष्ट्र उद्धारक होनेके सम्बन्धमें १९६० की ४ जनवरीको, बर्मी स्वातन्त्र्यदिवसपर किये गये राष्ट्रपति ऊ विन मांगके भाषणका उद्धरण यहाँ समीचीन प्रतीत हो रहा है। राष्ट्रपतिने कहा था—'मित्रों तथा बर्मी संघके साथी नागरिको! बर्मी स्वतन्त्रताकी १२ वीं वर्षगाँठके अवसरपर आज आप लोगों-से कुछ कहनेका जो अवसर मुझे मिला है उसके लिए मैं परम प्रसन्न हूँ। चूँकि बर्माको यह स्वतन्त्रता देश-सेवकोंके बलिदान और त्याग-तपके परिणामस्वरूप मिली है, इसलिए हमें यह अत्यन्त प्रिय है और हम लोग प्रति वर्ष आजके दिन इस उत्सव-को मनानेके लिए एकत्र होते हैं। हम लोग अपनी स्वतन्त्रताका आदर इतने ऊँचे पैमानेपर करते हैं फिर भी स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद ही १० वर्षोंतक निरन्तर देशव्यापी क्रान्ति रहनेके कारण

हम सब उसके आनन्दका अनुभव नहीं कर सके। केवल गत वर्ष ही ऐसा बीता है जब हमें इस बातका संकेत मिलने लगा कि स्वतन्त्रताके परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाले वरदान हमारे लिए वास्तवमें फलीभूत होकर रहेंगे। एतदर्थ, मैं पूर्ण विश्वास कर रहा हूँ कि आज आप लोग अपेक्षाकृत अधिक प्रसन्न मनसे यहाँ पधारे हैं।

इसीलिए मुझे यह उचित प्रतीत हो रहा है कि मैं उन आपदाओंका चित्र आप लोगोंके सामने रखूँ जिनके बीचसे हम लोग पिछले १० वर्षोंतक गुजरते रहे हैं और जिन्हें दूर करनेका बीड़ा जनरल ने विनकी सरकारने उठाया था। आप सब जानते हैं कि जनरल ने विनकी सरकारने मुख्य रूपसे तीन जिम्मेदारियोंको निभानेका संकल्प किया था—

(१) कानूनों और आदेशोंको लागू करना तथा लोगोंमें नियमोंके पालनके प्रति भावना उत्पन्न करना।

(२) जनसाधारणके उपयोगमें लायी जानेवाली सामग्रीका मूल्य घटाना तथा आर्थिक विद्रोहका दमन करना।

(३) स्वतन्त्र एवं स्वेच्छया आम निर्वाचन करानेकी व्यवस्था करना।

जनरल ने विनकी सरकारने अपनी पहली जिम्मेदारी निभानेमें एक वर्षके अल्पकालमें अपनी पूरी शक्ति लगा दी। देशमें शान्ति और सुव्यवस्थाकी स्थापनाके लिए जो कुछ जनरल ने विनकी सरकारने किया है, उसका सिंहावलोकन करनेसे पता चलता है कि सम्पूर्ण देशमें लगभग १० हजार विद्रोहियोंने या तो आत्मसमर्पण कर दिया है या वे मार डाले गये अथवा घायल हो गये हैं। विविध रंगोंमें रँगे हुए विद्रोहियोंका दमन इस प्रकार हो गया है कि वे दो-दो, तीन-तीनकी टुकड़ियोंमें बाँसों और घासपर दिन गुजारकर यत्र-तत्र भागते फिरते हैं।

विद्रोहियोंका दमन इस प्रकार कर दिया गया है कि यात्री दिन या रातके समय जल-थल मार्गोंसे अभय होकर यात्रा कर सकते हैं। मैं देख रहा हूँ कि कानूनोंके प्रति सम्मानकी भावना भी नागरिकोंमें बहुत हद्तक आ गयी है। परिणामस्वरूप देखा जा रहा है कि सामानके मूल्यमें बहुत कमी आ गयी है और गरीब वर्गके लोग बेहतर जीवन बिता रहे हैं, क्योंकि उन्हें सस्ती चीजें उपलब्ध होने लगी हैं। साथ ही देशकी आर्थिक अवस्था भी प्रगतिपथपर है। एक ओर औद्योगिक विकास हो रहा है, दूसरी ओर कृषिकार्यमें भी सुधार हुआ है। घूसखोरी तथा अन्य भ्रष्टाचार बन्द हो गये हैं।

अन्तमें राष्ट्रपतिने जनरल ने विन द्वारा की जानेवाली आम निर्वाचनकी व्यवस्थाओंकी चरचा की। आपने कहा कि १९ दिसम्बर, १९५९ से संसद्का विघटन कर दिया गया है। मेरे समेत बर्मा संघके नागरिक इस बातको स्वीकार कर रहे हैं कि जनरलकी सरकारने जैसा वादा किया था उसके अनुसार उसने देशमें स्वतन्त्र एवं स्वेच्छया निर्वाचन करानेकी व्यवस्था कर दी है। अब यह हम लोगोंपर है कि हम सब अपनी जिम्मेदारियोंको समझें और निभायें। अपने-अपने कर्त्तव्योंका पालन कर हम लोग स्वतन्त्रताकी रक्षा कर सकेंगे और बर्मा संघके नागरिकोंको ऐसी स्थिति प्रदान करेंगे कि वे दैन्य एवं विपदाओंसे मुक्त होकर सुखी एवं सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सकें।

राष्ट्रपतिने कहा कि इस तथ्यपर हम विशेष बल देना चाहते हैं कि विद्रोह और अपराधोंके दमनकी ओर हम अधिकाधिक ध्यान दें, क्योंकि संविधानमें निहित उद्देश्योंकी पूर्ति हम ऐसा करके ही कर सकेंगे। इस प्रकार मैं आन्तरिक आशा व्यक्त कर रहा हूँ कि संघका प्रत्येक नागरिक अपने सतत प्रयत्नोंसे शान्ति और सुव्यवस्थाकी स्थापना करनेमें योगदान करेगा।

नु मन्त्रिमण्डल और उसकी नीति

बर्मी राष्ट्रपति ऊ विन मौंने २ मार्च, १९६० को एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर आदेश जारी किया कि ६ फरवरीको होनेवाले आम निर्वाचनके फलस्वरूप नवनिर्मित संसद्की पृथक् बैठक १ अप्रैल, '६० को बुलायी गयी थी। ६ फरवरीके आम चुनावमें बर्माके राजनीतिक दल 'विशुद्ध फसपल'को बड़े ही प्रचण्ड बहुमतसे विजय मिली थी और उस दलके नेता ऊ नुने प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे अपने मन्त्रिमण्डलका संघटन भी कर लिया था। इसलिए एक अप्रैलको बुलायी जानेवाली संसदीय बैठकमें जनरल ने विनकी सरकारके हाथसे इस नव-संघटित 'नु-मन्त्रिमण्डल'को सत्ता सौंपनेकी प्रारम्भिक रस्में पूरी की जानी थीं और ऐसा ही हुआ। १ अप्रैलको सत्ता हस्तान्तरणकी कारवाइयाँ पूर्ण हुईं और उसके पश्चात् ४ अप्रैलको ऊ नुने स्वयं तथा उनके मन्त्रिमण्डलके मन्त्रियोंने शासन ग्रहण करनेकी शपथ ली। इस उपलक्ष्यमें उसी दिन राष्ट्रपति ऊ विन मौंने ऐसे ६ अपराधियोंको, जिन्हें मृत्युदण्ड सुनाया गया था, आजीवन कालेपानीकी सजा देनेका आदेश जारी किया। बर्मी संविधानकी धारा ६० के अनुसार क्षमा-दानका जो अधिकार राष्ट्रपतिको प्राप्त है उसका प्रयोग करते हुए उक्त निर्णय किया गया।

नु मन्त्रिमण्डलके शपथ ग्रहण करनेके दिन, ४ अप्रैलसे ही राष्ट्रपतिने व्रत रखना शुरू कर दिया था और १७ अप्रैलको उसे भंग किया। ऊ नुने ५ अप्रैलको संसद्के समक्ष जो नीति सम्बन्धी भाषण किया उसका सारांश इस प्रकार है। लोक-

तन्त्रकी महत्ताको बताते हुए आपने कहा कि “इसके लिए और कोई विकल्प नहीं है। सरकारके सामने प्रथम समस्या यह है कि वह अपनी पिछली भूलोंको सुधारे, और अपनेको लोकतन्त्रकी स्थापना करनेके लिए ‘करो या मरो’ अभियान प्रारम्भ करनेके योग्य बनाये।” आपने विश्वास दिलाया कि मन्त्रियों द्वारा शक्तिका दुरुपयोग नहीं होने दिया जायगा, कानूनोंको सही तौरपर लागू किया जायगा और लोगोंको एक सूत्रमें बाँधकर राष्ट्रीय एकता स्थापित की जायगी।

ऊ नुने यह बताते हुए कि देशसेवकोंके आत्मोत्सर्गके परिणामस्वरूप अबसे १२ वर्षों पूर्व बर्मा स्वतन्त्र हुआ किन्तु उसके बाद ही गृह-कलह प्रारम्भ हो गया जिससे देशमें अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकी। अभी जिस विषम स्थितिके बाद हम लोग आजका दिन देख रहे हैं यह हमारी ही नहीं अपितु विश्वकी दृष्टिमें ऐतिहासिक स्थिति रही है। इस प्रकार हम सब एक बार फिर वर्मामें लोकतन्त्रकी नींवको सुदृढ़ करने और सरकारी कार्योंको उसके अनुसार चलानेके साथ ही निजी जीवनको भी उसी साँचेमें ढालनेके लिए उद्यत हुए हैं। पहली बार जब हमें इसके लिए अवसर मिला था तो हम क्यों विफल हो गये इसके कारणोंको हमें अपने-अपने हृदयमें टटोलना चाहिये। इस सम्बन्धमें हमलोगोंका पहला कदम यह होना चाहिये कि हम अपने आपको सुधारें और इस अभियानको लेकर चलनेके योग्य बनें। हम सब, जो इस कार्यके लिए अग्रणी हैं, अपने आचरणों और दिनचर्यासे यह सिद्ध करें कि वस्तुतः लोकतन्त्र है क्या और किस प्रकार यह साकार हो सकता है? फिर हमारा दूसरा कदम अपने दलका पुनस्संघटन करनेका होगा। हमने अपने दल विशुद्ध फसपलका नाम बदलकर ‘पीडांग्सू’ कर दिया है। इसके प्रत्येक सदस्यका लोकतान्त्रिक नियमोंमें आस्था रखना और उनपर

अमल करना अनिवार्य है। यह दल सभी सदस्योंसे विचार-विमर्श किये बिना कदापि किसी निर्णयपर नहीं पहुँचेगा। संसदीय लोकतन्त्रमें एक राजनीतिक दलका, यदि और किसी अर्थके लिए नहीं तो चुनाव लड़नेके लिए ही सही, होना अनिवार्य है; परन्तु यदि वह दल जनताका समर्थन पानेके बाद सत्तारूढ़ हो जाय और अपनी इच्छाओंको जनतापर लादने लगे अथवा अपने विरोधियोंका दमन करने लगे तो इसके दुष्परिणामस्वरूप उसका लोकतान्त्रिक कहा जाना ही व्यर्थ नहीं हो जायगा अपितु वह लोकतन्त्रका विनाशक कहा जायगा।

संसद्के अध्यक्षको सम्बोधित करते हुए ऊ नुने कहा कि एक सच्चे लोकतान्त्रिक दलका कार्य है कि सत्ता पानेके बाद जब वह पुनर्निर्वाचन कराये तो सरकारी सुलभ साधनोंका प्रयोग न करे। उसके कार्य-कलापों और नेताओंकी योग्यताको परखकर जनताको मतदान करने दे और मैं आपके माध्यमसे देशको विश्वास दिला रहा हूँ कि 'पीडांग्सू' दल भावी निर्वाचनमें सरकारी शक्ति-सुविधाओंका उपयोग कदापि न करेगा।

ऊ नुने विश्वास दिलाया कि संसद्के विरोधी दलके साथ बिलकुल नये ढंगका बर्ताव रखा जायगा। हम इस बातकी कोशिश करेंगे कि संसद्में विरोधी दल सच्चे लोकतन्त्रकी स्थापनामें सहायक बने। देशकी किसी भी समस्याके समाधानके लिए उनसे पूर्ण परामर्शके बाद ही किसी निर्णयपर पहुँचा जाय।

अर्थनीति—अपनी सरकारकी अर्थनीतिके सम्बन्धमें ऊ नुने उद्घोषित किया कि हमारी सरकारकी अर्थनीतिका पहला लक्ष्य जनसाधारणकी स्थितिमें सुधार लाना होगा। हम उन्हें ऐसी सुविधाएँ प्रदान करनेकी कोशिश करेंगे कि वे अपने रहन-सहनके स्तरको उन्नत करें और एक स्वतन्त्र राष्ट्रके नागरिककी भाँति सुख-शान्ति और सुरक्षापूर्वक रह सकें।

वाणिज्य और उद्योगक्षेत्रमें हमारा मुख्य लक्ष्य यह होगा कि हम इसे यथासम्भव अधिकाधिक देशवासियोंके हाथोंमें सौंपें और ध्यान भी रखें कि उपभोक्ता और जनसाधारण इससे यथेष्ट लाभान्वित रहें। स्वतन्त्रताप्राप्तिके बादके १० वर्षोंतक, जबतक फसपलमें फूट नहीं पैदा हुई थी, हमारी जो आर्थिक-नीति थी उससे जनता भी लाभान्वित हुई थी, किन्तु प्रधानतया वह दोषपूर्ण थी। उसे कार्यान्वित करनेमें नेताओंकी स्वेच्छा अधिक काम करती थी और सत्तारूढ़ दलके पिछलग्गू अधिक लाभ उठाते रहे।

ऊ नुने कहा कि 'पिडांग्सू'की सुप्रीम कौंसिलकी जो बैठक विगत सितम्बर महीनेमें हुई थी उसमें हमारी सरकारकी अर्थ-नीतिकी निश्चित घोषणा कर दी गयी थी। उसके अनुसार उद्योग और कृषिमें उचित सन्तुलन रखा जायगा। सरकार स्वयं आर्थिक योजनाओंमें सक्रिय भाग लेगी। किसानों और श्रमिकोंके हितोंकी रक्षापर ध्यान दिया जायगा। जो भी अर्थविषयक कार्य होंगे उनमें इस बातका ध्यान रखा जायगा कि इसपर देशवासियों-का ही अधिकाधिक आधिपत्य रहे। देशी तथा विदेशी साधनोंका पूर्ण रूपसे उपयोग किया जायगा, यहाँतक कि विदेशी पूँजी भी लगायी जायगी।

परराष्ट्रनीति—परराष्ट्रनीतिके सम्बन्धमें ऊ नुने कहा कि हम तटस्थ रहकर विश्वशान्तिके लिए प्रयत्नशील रहेंगे। अराकान और मोन राज्योंकी मान्यताओंकी बाबत आपने विचार व्यक्त किया कि यदि वहाँकी जनता चाहेगी तो हमारी सरकार इनको मान्यताएँ देगी। बौद्धधर्मको राजधर्मकी मान्यता प्रदान करनेके लिए आपने कहा कि संसद्के वर्तमान अधिवेशनमें एक ऐसी समितिका संघटन किया जायगा जो सरकारके सामने इस सम्बन्धकी विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करेगी।

नवसंघटित सरकारके अधिकारियोंकी पहली बैठक ऊ नुने ७ मईको बुलायी। अधिकारियोंको यह बतानेके बाद कि सरकारने सुरक्षा परिषदोंको समाप्त कर देनेका निर्णय कर लिया है, ऊ नुने उनसे पूछा कि अन्य क्या उपाय हो सकते हैं जिनसे शान्ति और सुव्यवस्था बनी रहे। उन्होंने कहा कि कानून तो अच्छा होना ही चाहिये, कानूनको लागू करनेवाले प्रधान मन्त्रीसे लेकर मुहल्लोंके मुखिया और पंचतक अच्छे होने चाहिये।

राष्ट्रीय उत्थानकी अपील—ऊ नुने कहा कि मैं नहीं जानता कि आप लोग देशकी स्थितिके बारेमें क्या विचार रखते हैं, किन्तु मेरी दृष्टिमें तो इसकी हालत उस बीमार जैसी है जिसे सभी डाक्टरोंने जवाब दे दिया हो। हमारे पिछले दिन चाहे जैसे रहे हों किन्तु जनताने हमें चुना है इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि इस बीमारमें जीवनी शक्ति लायें। आपको मालूम है कि आम जनता यह चाहती है कि उसपर नियमानुसार शासन किया जाय। स्वतन्त्रताप्राप्तिके विगत १० वर्षोंमें मेरी अनेक महत्त्वाकांक्षाएँ रही हैं। मैं आम जनताके जीवन-स्तरको ऊँचा करना चाहता था। उनकी दीनता दूर करके उन्हें वैभवसम्पन्न बनाना चाहता था, किन्तु आज उन महत्त्वाकांक्षाओंको मैंने त्याग दिया है। आज मेरी एकमात्र महत्त्वाकांक्षा यह है कि सामान्य जनताको सुशासित कैसे रखा जाय। कुशासनमें रहनेवाली प्रजाकी अवस्था पिजड़ेमें बन्द पक्षी-सी होती है। कितना ही सुस्वादु-भोजन क्यों न उस पक्षीको दिया जाय किन्तु अवसर पाते ही वह उड़ना चाहता है, उसी प्रकार कुशासित जनता सब प्रकारके ऐश्वर्योंमें रहते हुए भी सुशासनके लिए लालायित रहा करती है। इसलिए आगामी ४ वर्षोंकी अवधिमें, जबतक शासनकी बागडोर हम लोगोंके हाथमें रहनेवाली है, मैं अपना ध्यान और किसी ओर न ले जाकर सुशासन स्थापित करनेकी ओर ही

केन्द्रित रखना चाहता हूँ। यह काम अच्छे कानून बनाने और उन्हें अच्छी रीतिसे लागू करनेसे हो सकता है। स्मरण रहे कि कानून चाहे कितने ही अच्छे बनाये जायँ किन्तु उन्हें व्यवहारमें लानेवाले प्रशासक यदि योग्य न हों तो अच्छे कानून बनाना व्यर्थ है। प्रशासकसे मेरा तात्पर्य है आप सब उपस्थित उच्च अधिकारियोंसे लेकर साधारण पंचतक।

आगे ऊ नुने कहा कि इतिहास इस बातका साक्षी है कि देशकी बर्बादियाँ दो प्रकारसे होती हैं, या तो बाहरी आक्रमणोंसे और या तो भीतरी कुशासन अर्थात् न्याय, नियम और कानूनके अभावसे। इतिहास यह भी बताता है कि दूसरे कारणोंसे भी उतनी ही बर्बादियाँ होती आ रही हैं जितनी पहलेके द्वारा। सन् १७८९ में फ्रांसका पतन हुआ और वह कम्युनिस्ट होते-होते बचा। इसी कारण रूसका १९१७ में पतन हुआ और वह कम्युनिस्ट बन गया तथा चीनका पतन १९४९ में हुआ और वह भी कम्युनिस्ट हो गया। ऐसे ही अनेक अन्य प्रमाण हैं।

अतएव यदि हम चाहते हैं कि हमारे देशका भी वैसा ही प्रारब्ध न बने जैसा उल्लखित देशोंका बना है तो हमें अच्छे कानून बनाने चाहिये और योग्य प्रशासक रखने चाहिये। इस अवसरपर मैं भगवान् बुद्धके शब्दोंमें बता देना चाहता हूँ कि अच्छे शासकके क्या गुण होने चाहिये—

(१) दान, (२) पंचशील आचरण, (३) त्याग, (४) पवित्रता, (५) विनम्रता, (६) व्रत-निर्वाह, (७) क्रोधपर अधिकार, (८) दूसरोंके प्रति दुर्व्यवहार न करना, (९) शान्ति, (१०) औरोंके साथ अपनेको मिला कर रखना।

प्रत्येक अच्छे प्रशासकमें उपर्युक्त गुण होने चाहिये। यदि उसमें ये गुण न हों तो उसे चाहिये कि इन्हें अर्जित करनेका प्रयास करे। अच्छे प्रशासकमें पाँच गुणोंका होना तो परमावश्यक

है। ये गुण हैं पवित्रता, विनम्रता, अक्रोध, दूसरोंके प्रति दुर्व्यवहार न करना और शान्ति।

जब जनताने हमें चुना है तो हमें चाहिये कि पिछली बातोंको भूलकर परस्पर सहयोगसे काम करें। आपने हमारे साथ भूल की या हमने आपके साथ, इसकी चिन्ता न करें। जब हमारे हाथमें शक्ति नहीं थी तो आपके लिए यह जरूरी नहीं था कि हमें अपना साथी डाक्टर समझें या हमारी परवाह करें, वैसी ही हमारी भी प्रतिक्रिया थी। लेकिन जब ऐसे बहुमतसे हमें चुना गया है तो आपको चाहिये कि हमें अपना नेता समझें। जो वयमें हमसे बड़े हैं, हमें छोटा भाई समझें और जो छोटे हैं, बड़ा भाई। और अपनी समस्याओंको इस प्रकार सामने लायें जैसे एक भाई दूसरेके सामने ले जाता है। हम भी अपनी ओरसे वैसा ही करेंगे और इस प्रकार समस्याओंका समाधान ढूढ़नेका प्रयत्न होना चाहिये।

अन्ततः ऊ नुने कहा कि हम लोग पहले भी घोषणा कर चुके हैं और फिर भी कह रहे हैं कि हम अपने व्यक्तिगत अथवा दलके स्वार्थोंसे शासनको अछूता रखेंगे।

सीमा समझौतेका ऊ नु द्वारा विश्लेषण

जिस बर्मा-चीन सीमा-समझौता और मैत्री तथा पारस्परिक अनाक्रामण सन्धि पर जनरल ने विन और चाउ एन लाईने २८ जनवरी, १९६० को पेकिंगमें हस्ताक्षर किये थे उसे प्रधान मन्त्री ऊ नुने उसी वर्षके २८ अप्रैलको प्रारम्भ होनेवाले संसद्के अधिवेशनमें मान्यता एवं विलेखनके लिए उपस्थित किया। इसकी महत्ता बताते हुए आपने जो भाषण किया उसका संक्षिप्त आशय इस प्रकार है—

बर्माने जबसे पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त की तभीसे हम लोग बर्मा-चीनके बीचकी सीमा निर्धारणकी अपूर्णतासे उत्पन्न समस्याओंको अनुभव करते आ रहे हैं। जिस समय चीनकी शासनसत्ता राष्ट्रीय चीनकी सरकारके हाथों थी उस समय उसने बार-बार हमें इन समस्याओंका स्मरण कराया था और उसके द्वारा जो नकशे प्रकाशित किये थे उनमें भी बर्माका एक बड़ा हिस्सा चीनका बताया गया था।

सन्१८९७ के चीनी-ब्रिटिश सीमा-समझौतेके अनुसार नामवाँ क्षेत्रका भूमिकर चीनको एक हजार रुपये सालाना दिया जाता था लेकिन १९४८ में जब हम लोगोंने यह कर देना चाहा तो चीनकी राष्ट्रीय सरकारने उसे इनकार कर दिया। इसे लेकर उन्होंने यह सूचना भी दी कि नामवाँ क्षेत्रके सम्बन्धमें जो स्थायी पट्टा था उसे वह भंग करना चाहती थी, परन्तु एक तो उससे भी पहलेसे वह गृह-युद्धमें उलझी आ रही थी और फिर इस माँगके बाद ही उसका पतन हो गया। इसलिए वह इस मामलेको लेकर और आगे न बढ़ सकी।

जब चीनकी जनतान्त्रिक सरकारको हम लोगोंने मान्यता दे दी और सीमा-विषयक प्रश्नपर उसका रुख जानना चाहा तो उसने भी इसकी अनिश्चितताके परिणामस्वरूप पैदा होनेवाली असाधारण उलझनोंको अनुभव किया परन्तु तत्काल अनेक अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओंको सुलझानेमें लगी रहनेके कारण उसपर विचार-विमर्श करना तबतकके लिए स्थगित रखा, जबतक अनुकूल समय न आ जाय। जब मैंने प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे १९५४ के दिसम्बर मासमें पेकिंगकी यात्रा की तो १२ दिसम्बर, १९५४ को मेरी और चीनी प्रधान मन्त्रीकी ओरसे जो संयुक्त विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी उसके निम्नलिखित अनुच्छेदमें चीनी रुखका समावेश हुआ था। वह अनुच्छेद इस प्रकार है—'चीन और बर्माके बीचकी सीमाके अधूरे परिसीमनके प्रश्नपर विचार करते हुए दोनों प्रधानमन्त्रियोंने यह आवश्यक माना है कि अनुकूल अवसर मिलनेपर मैत्रीपूर्ण रीतिसे सामान्य कूटनीतिक सम्बन्धोंके माध्यमसे इसका समाधान कर लिया जाय।'

तो भी, लगभग दो वर्षोंके बाद ही दोनों देशोंकी सरकारें इसे सुलझानेमें तन्मयतासे लगीं। यह तत्परता आनेका एक विशेष कारण था। सन् १९५५ के नवम्बर महीनेमें उत्तरी 'वा' राज्यके वाखा स्थानपर, बर्मी और चीनी सैनिक टुकड़ियोंमें मुठभेड़ हो गयी। सन् १९४१ के ब्रिटिश-चीनी सीमा समझौतेके अनुसार वाखा बर्मी क्षेत्रमें पड़ता है इसलिए हम लोगोंने चीन सरकारसे अनुरोध किया कि वह अपनी सैनिक टुकड़ी वहाँसे हटा ले। लेकिन चीन सरकारने अपना भिन्न विचार व्यक्त किया। उसने कहा कि यूनान और बर्माके बीच वा राज्यके सन्निकट परिसीमनका फैसला ब्रिटिश सरकारने सन् १९४१ में राष्ट्रीय चीनी सरकारपर बलपूर्वक लादा था। चीन सरकार उस समय जापानी आक्रमणका मुकाबला करनेसे क्षीणबल थी इस-

लिए उसने ब्रिटेनकी सरकारके फैसलेको मान लिया। ऐसी परिस्थितिमें उस क्षेत्रको पूर्वस्थितिमें ही तबतकके लिए छोड़ रखा जाय जबतक सीमाविषयक सम्पूर्ण मामलेका फैसला न हो पाये। बर्मा सरकार इससे सहमत नहीं थी क्योंकि सैनिक टुकड़ियोंमें संघर्ष होनेकी आशंका बनी हुई थी इसलिए इसने चीन सरकारको सुझाव दिया कि १९४१ में निर्धारित की गयी सीमारेखाके दोनों ओर कुछ निश्चित क्षेत्र छोड़कर फौजें रखी जायँ ताकि सीमापर तैनात की गयी सैनिक टुकड़ियोंके संघर्षकी आशंका समाप्त हो जाय परन्तु उसे यह मान्य नहीं हुआ।

ये प्रयत्न चालू ही थे कि स्थानीय अंग्रेजी दैनिक पत्र 'नेशन'में एक समाचार प्रकाशित कर यह निर्दिष्ट किया कि वहुसंख्यक चीनी, सीमाका अतिक्रमण कर बर्मी क्षेत्रमें प्रवेश करने लगे हैं। 'नेशन' में प्रकाशित इस समाचारको दूसरे पत्रोंने भी महत्त्वके साथ छापनेके साथ ही चीन सरकारकी ऐसी भर्त्सनाएँ करनी शुरू कीं कि मैं यद्यपि उन दिनों प्रधान मन्त्रिपदपर नहीं था तो भी उभय देशोंके सम्बन्धोंको बिगाड़नेसे बचानेके लिए ऐसे प्रकाशन रोकनेके निमित्त पत्रकारोंसे अनुरोध करनेके लिए विवश हुआ।

इसी बीच तत्कालीन बर्मी प्रधान मन्त्री ऊ बा स्वेने एक पत्र लिखा जिसका उत्तर देते हुए चीनी प्रधान मन्त्री चाउ एन लाईने एक नयी घटनाका उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि सन् १९११ के १० अप्रैलको ब्रिटिश सरकारने चीन सरकारको एक पत्र लिखकर निर्दिष्ट किया था कि पीमॉ, कांगफांग और गॉलुम ग्राम चीन-अधिकृत हैं परन्तु इस समय वहाँ बर्मी सैनिक हैं। अतएव बर्मा सरकार वहाँसे अपने सैनिकोंको हटा ले। उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया था कि जिन स्थलोंसे बर्मी सैनिक हटाये जायँगे वहाँ चीनी तबतक न रखे जायँगे जबतक दोनों सरकारोंके प्रति-

निधियों द्वारा संघटित आयोग परिसीमन कार्यको सम्पन्न न कर देगा। साथ ही, चीन सरकारने अपनी सैनिक टुकड़ियोंको भी १९४१में निर्धारित सीमारेखाके पूर्व हटा लेनेका विश्वास दिलाया।

एक ओर तो चीन सरकारका यह सुझाव युक्तियुक्त प्रतीत हुआ और दूसरी ओर उन्हीं दिनों मैंने तत्कालीन प्रधान मन्त्री ऊ बा स्वेकी अनुमतिसे इस प्रश्नपर विचार-विमर्शके लिए चीनी प्रधानमन्त्री चाउ एन लाईके आमन्त्रणपर पेकिंगकी यात्रा की। जस्टिस ऊ मिं तेंइ, पेकिंग स्थित तत्कालीन बर्मी राजदूत ऊ ल्हा मांग, परराष्ट्र विभागीय मुख्य सचिव ऊ ठुन शेंइ और कतिपय अन्यान्य उत्तरदायी अधिकारी मेरे साथ थे। मैंने प्रस्थानसे पूर्व सभी नेताओंसे रामर्श किया और उन्होंने सुझाव दिया कि ब्रिटिश सरकारने जिस सीमारेखाको मान्यता दे रखी थी उसे ज्योंकी त्यों मानते हुए मैं वार्ता चालू करनेकी माँग करूँगा।

जब मैं साथियों सहित पेकिंग पहुँचा और वार्ता प्रारम्भ हुई तो चीन सरकारने पूर्व वक्तव्योंकी प्रामाणिकता सिद्ध करते हुए यह भी कहा कि ऐतिहासिक तथ्य तो यह बतालाते हैं कि एक समय चीनने 'न माइखा'के उस पार त्रिभुजाकार भूभागको भी अपना बताकर उसकी माँग की थी। लेकिन चीनकी वर्तमान लोकतान्त्रिक सरकार उन पुरानी माँगोंको पुनः करनेको उद्यत नहीं है, बल्कि, उसकी इच्छा यह है कि सीमारेखा वृत्ताकार, ऊँची पर्वतीय चोटियोंके उत्तर 'न माइखा' नदीके पूर्वसे होती हुई स्थापित की जाय ताकि पीमॉ, कांगफांग और गॉलुम चीनी क्षेत्र-में आ जायँ और वह भारतीय सीमाके सुदूर उत्तरसे होती हुई इजुराज़ी दर्रेके पाससे गुजरे।

यह चीनी सुझाव यद्यपि मुझे युक्तियुक्त लगा किन्तु मैंने तबतक अपना विचार नहीं व्यक्त किया जबतक ऊ मिं तेंइ, ऊ ल्हा मांग और ऊ ठुन शेंइने स्वयं यह नहीं कहा कि 'चीनी सुझाव

युक्तिसंगत है'। जब उनके विचार मालूम हो गये तब मैंने ऊ ल्हा मांग, ऊ ठुन शेंइ और ऊ खिन यूंको रंगून आकर सरकारी अनुमति प्राप्त करनेके साथ ही कछिन् राज्यके नेताओंको साथ लेकर वापस होनेको कहा। वे यहाँ आये और चन्द दिनों बाद जब पेकिंग वापस हुए तो उनके साथ कछिन् राज्यके तत्कालीन प्रमुख ऊ जां ता सिन, डुआ ज़ाउ लॉन, डुआ सिन्नानांग, कछिन् राज्य सरकारके सचिव ऊ शां लोन और ऊ ठुन शेंइके अस्वस्थ हो जानेके कारण उनके बदले श्री वैरिंगटन गये। उनके वापस होते समय मन्त्रिमण्डलकी परराष्ट्रविभागीय उपसमितिने कुछ मन्तव्य भी उनपर प्रकट किये जो बर्मा सरकारकी पुरानी माँगोंके समर्थनमें थे। इन माँगों की बातें बताते हुए राजदूत ऊ ल्हा मांगने यह भी कहा कि परराष्ट्रविभागीय उपसमितिका यह भी मत है कि यदि पीमॉ, कांगफांग, और गॉलुमको चीन अपने अधिकारमें लेकर नामवाँ क्षेत्र बर्माके लिए छोड़नेकी तत्परता दिखावे तो भी समझौता कर लेना चाहिये। परराष्ट्रविभागके इस इरादेसे अवगत होनेके बाद जब मैंने कछिन् राज्यके प्रमुखको इससे सहमत कराना चाहा तो असफलता हाथ लगी। वे पीमॉ, कांगफांग और गॉलुमको छोड़नेके लिए राजी नहीं थे। जब कछिन् नेताओंको सहमत करनेके अन्य प्रयत्न भी विफल दीखे तो मैंने प्रधान मन्त्री चाउ एन लाइसे मुलाकात करके उन्हें इससे अवगत कराते हुए उनके समक्ष सुझाव रखा कि सैनिक टुकड़ियोंको पीछे हटानेका समझौता सम्पन्न कर लिया जाय और शेष कार्योंके लिए मेरा रंगून वापस जाकर प्रयत्नशील होना नितान्त अपेक्षित हो गया है। उधर चाउ एन लाइने अनुरोध किया कि मैं चन्द दिनों और वहाँ रहूँ ताकि वे चीन सरकारके निश्चित दृष्टिकोणको मेरे सामने रख सकें। मैं इसपर सहमत हो गया। परिणामस्वरूप उभय पक्ष एक निर्दिष्ट विन्दुपर पहुँच सका। हम लोगोंके अनुरोधपर

चीन सरकारने इजुराजी दर्रे और वृत्ताकार पर्वतीय चोटियोंके बीच पानीके झरनेके निकटसे होती हुई सीमारेखा स्थापित करनेका विश्वास दिलाया। उसने 'न माइखा'के पूर्व सीमा निर्धारित करनेका इरादा छोड़ दिया। 'न माइखा' और तल्वि नदियोंके बीचसे सीमारेखा जानी थी। सीमा-विषयक इन निश्चयों और सैनिक टुकड़ियोंको पीछे हटा लेनेकी शर्तको ५ नवम्बर, १९५६ को एक ही संयुक्त-विज्ञप्तिमें उल्लिखित और प्रकाशित हो जानेके पश्चात् हम लोग बर्मा वापस आ गये। पेकिंग-वार्ताकालके सम्पूर्ण कागज-पत्र मन्त्रि-मण्डलके समक्ष रखे गये और मैंने रेडियो भाषण द्वारा देशकी जनताको बताया कि चीनी सुझाव मुझे क्यों मान्य है। इसके लिए मैंने दो कारण बताये—

(१) नामवाँ क्षेत्र कभी भी बर्मा अधिकृत नहीं था। ब्रिटिश सरकार भी उसे पट्टे द्वारा अपने अधिकारमें रखती आ रही थी।

(२) ब्रिटिश सरकारने भी, जो 'न माइखा' और 'तल्वि' के बीचके झरनेसे होकर सीमारेखा स्थापित करना चाहती थी, यह अस्वीकार नहीं किया था कि पीमॉ, गॉलुम और कांगफांग, चीनके हैं।

मैंने देशवासियोंसे कहा कि 'बर्माको नैतिक कारणोंपर अमल करना चाहिये। जो कुछ उसका अपना नहीं है उसको उसे नहीं रखना चाहिये।' ब्रिटिश सत्ताकालीन १८९४ और १८९७ के समझौते भी यह नहीं प्रामाणित करते कि कछिन् राज्यके इन ग्रामोंपर चीनी सत्ता नहीं थी और न यही प्रमाण मिलता है कि नामवाँ क्षेत्रपर स्थायी बर्मी आधिपत्य था। ब्रिटिश सरकार नामवाँकी पट्टेदार थी और वह १ हजार रुपये वार्षिक चीनको भूमि कर देती रही। १९४८ में जब चीनने कर लेना बन्द किया तभी हम लोगोंको अनुमान हो गया था कि अब हमारी पट्टेदारी

जाती रही। इसके अतिरिक्त कछिन् नेताओंको जब सम्पूर्ण स्थितिसे पूर्णरूपेण अवगत कराया गया तब वे तीनों ग्रामोंको चीनके हवाले करनेको राजी हुए और बर्मी संघ तथा कछिन् राज्यकी सरकारोंमें तय हुआ कि ५६ वर्गमील जमीन चीनको दी जाय।

सन् १९५६ के दिसम्बर मासमें प्रधान मन्त्री चाउ एन लाइने बर्माकी यात्रा की और उनकी जो कुछ बातचीत मुझसे अथवा प्रधान मन्त्री ऊ बा स्वेसे हुई उससे यह अनुमान किया गया कि यदि पीमॉ, कांगफांग और गॉलुम चीनको वापस कर दिये जायँगे तो चीन सरकार नामवाँ क्षेत्र बर्माको वापस करनेको राजी हो जायगी। पुनः ४ फरवरी, १९५७ को प्रधान मन्त्री ऊ बा स्वेने एक पत्र लिखा जिसके साथ एक नकशा भी संलग्न किया। पत्रमें आपने साफ-साफ लिखा कि 'मेरी सरकारकी धारणा है कि नितान्त आवश्यक कुछ हेर-फेरके अतिरिक्त चीन सरकार चीन और बर्माके बीचकी उस सीमारेखाको स्वीकार करनेको तैयार है जो बर्माको ४ जनवरी, १९४८ को ब्रिटिश सरकारकी ओरसे उत्तराधिकारके रूपमें मिली थी।'

इसके थोड़े ही समय बाद १९५७ में जब मैंने प्रधान मन्त्रीका काम फिर सँभालना शुरू किया तो मैंने कुमिंगकी यात्रा की। मेरे साथ परराष्ट्रविभागीय मन्त्री साओ खुन छिओ भी थे और प्रधान मन्त्री चाउ एन लाइ वहाँ मुझसे मिलने आये। जब बातचीत शुरू हुई तो उन्होंने पीमॉ, कांगफांग और गॉलुमको तो चीनका बताया ही, नामवाँ क्षेत्रके लिए कहा कि इसकी पट्टेदारीकी प्रथा तो तोड़ ही दी जानी चाहिये परन्तु इसका उपयोग बर्माके लिए बहुत ही महत्त्वका है इसलिए इसके बदले दूसरा भूभाग लेकर चीन इसे बर्माके निमित्त छोड़ देगा। इस प्रकारके ही कुछ और भी सुझाव उन्होंने रखा जिससे मुझे कहना पड़ा कि 'मैं तो

समझता था कि सीमाविवाद समाप्त हो गया परन्तु अब ऐसा नहीं प्रतीत हो रहा है। इसलिए आप ऊ बा स्वेके पत्रका उत्तर औपचारिक तौरपर भेजिये और उसमें इन बातोंका भी जिन्हें आपने अभी व्यक्त किया है, समावेश कीजिये।' इससे प्रधान मन्त्री चाउ एन लाइ सहमत हो गये।

१९५७ के जुलाई मासमें पेकिंग स्थित बर्मी राजदूतसे प्राप्त सूचनाओंके आधारपर यह अनुमान किया जाने लगा था कि इजुराज़ीके पाससे गुजरनेवाली रेखा कठिनाई पैदा करेगी। २६ जुलाई, १९५७ को प्रधान मन्त्री चाउ एन लाइका जो पत्र आया उसमें भी उलझन बढ़ी हुई मिली। इसपर जस्टिस ऊ मिं तेंइको पेकिंग भेजा गया। आपने वापस होकर जो रिपोर्ट दी उसपर पराराष्ट्रविभागीय उपसमितिने १४ अक्तूबर, १९५७ को विचार किया। उसके आधारपर यह निश्चय किया गया कि चीनके साथ किसी निश्चयपर पहुँचनेमें जल्दबाजी न की जाय।

सन् १९५७ के दिसम्बर मासमें उपप्रधान मन्त्री ऊ बा स्वे और ऊ चौ ऍंइने चीनकी सद्भावना-यात्रा की तो गैररस्मी तौरपर प्रधान मन्त्री चाउ एन लाइसे सीमाविषयक बातचीत भी की। उस सिलसिलेमें उन लोगोंने कहा कि बर्मी मत यह था कि यदि पीमॉ, कांगफांग और गॉलुम चीनको दिये जायँगे तो नामवाँ क्षेत्र चीन बर्माके लिए छोड़ देगा परन्तु अभी नामवाँके बदले पांगहंग-पांगलाओ क्षेत्रका एक नया प्रश्न आपकी ओरसे प्रस्तुत कर दिया गया है। इसपर चाउ एन लाइने चीनी स्थितिपर विस्तृत प्रकाश डाला और कहा कि पीमॉ, कांगफांग, और गॉलुम तो कानूनन चीनके हैं और उसी प्रकार नामवाँ क्षेत्र भी। किन्तु नामवाँका महत्त्व बर्माके लिए विशेष रूपसे है। यदि उसे चीन ले लेता है तो बर्माके सामने कठिनाई उपस्थित हो जायगी इसलिए उसके बदले पांगहंग और पांगलाओ जनजातियोंके क्षेत्रसे कुछ

भाग लेकर उसे बर्माके निमित्त छोड़ दिया जायगा।

परम्परागत चली आयी सीमारेखाके सम्बन्धमें चाउ एन लाइने कहा कि इरावदीके धुर उत्तरी छोरके पानीके झरनोंसे होती वह रेखा स्थापित की जाय लेकिन उन्होंने यह सुझाव दिया कि रेखा सीधी न खींची जाय बल्कि बीच-बीचमें पड़नेवाले बौद्ध मन्दिरों और जड़ी-बूटियोंसे औषधि तैयार करनेके केन्द्रोंको छोड़ रखा जाय। आपने कहा कि दोनों पक्षोंके प्रतिनिधियोंको मिलाकर आयोग संघटित कर दिया जाय जो पूरे कार्यको धीरे-धीरे करता रहे।

ये सुझाव सन् १९५८ के फरवरी मासमें होनेवाली परराष्ट्र-विभागीय उपसमितिकी बैठकमें विचारार्थ रखे गये। समितिका विचार हुआ कि यदि झरनोंसे होकर सीमारेखा स्थापित की जाती है तो बीच-बीचके स्थलोंको छोड़नेका सुझाव युक्तियुक्त न होगा क्योंकि ऐसा होनेसे आयोग विवादोंमें ही उलझा रहेगा। इस निष्कर्षपर पहुँचनेके बाद राजदूत ऊ ल्हा मांगको चीन वापस भेजनेका निश्चय किया गया और उनसे कहा गया कि वे चीन सरकारको यह समझावें कि जब झरनोंसे गुजरती हुई सीमारेखा स्थापित करनी है तो ऐसा करनेमें कोई शर्त न रखी जाय। पीमॉ, कांगफांग और गॉलुमसे सम्बधित प्रश्नपर ऊ वा स्वेके ४ फरवरी, १९५७ के पत्रके सुझावको अमलमें लाया जाय और नामवाँ क्षेत्रके सम्बन्धमें यदि कोई अन्य उपयुक्त विकल्प न कार्यान्वित किया जा सके तो पट्टेदारीका जो नियम अबतक चला आ रहा था उसे ही स्थायी तौरपर चलने दिया जाय।

ऊ ल्हा मांगके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप प्रधान मन्त्री चाउ एन लाइका ३० जुलाई, १९५८ का लिखा हुआ पत्र आया जिसमें चीनी स्थितिका पूर्ण विवरण तो था ही, सुझावके रूपमें उन्हीं बातोंको दुहराया गया था जो उन्होंने ऊ वा स्वे और ऊ चो

एँइसे वार्ताकालमें कहा था।

यह विचार-विनिमय अभी चले ही थे कि जनरल ने विनकी सरकार सत्तारूढ़ हुई। प्रधान मन्त्री पद सँभालनेके बादके प्रारम्भिक कुछ महीनोंमें तो जनरल ने विन अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण कार्योंमें व्यस्त थे परन्तु उनसे अवकाश पाते ही बर्मा-चीन सीमाविवादके समाधानमें संलग्न हो गये। वे इसे सर्वदा राष्ट्रीय महत्त्वकी समस्या मानते थे और मैं उन्हें समय-समयपर तत्सम्बन्धी प्रगतिसे परिचित भी कराता रहता था। जनरल ने विनने विशुद्ध और स्थायी दोनों 'फसपल' तथा शां नेताओंसे परामर्श करके ४ जनवरी, १९५९ को चीन सरकारको पत्र लिखा जिसमें चतुस्सूत्रीय सुझाव दिया गया था:—

(१) इजुराजी दर्रेसे भारतीय सीमातक झरनोंसे होती हुई जो सीमारेखा स्थिर की जाय उसके बीच-बीचमें कोई स्थल छोड़नेकी शर्त न हो।

(२) ऊ बा स्वेके पत्रके अनुसार पीमॉ, गॉलुम और कांगफांग चीनको दे दिये जायँ और इजुराजी दर्रे तथा वृत्ताकार पर्वतीय शिखाओंके बीचसे जो रेखा खींची जाय वह न माइखा और तलिंव क्षेत्रके झरनेसे होकर गुजरे।

(३) नामवाँ क्षेत्रके बदले पांगहंग-पांगलाओ क्षेत्रका कुछ वह भाग जो १९४१ की सीमारेखाके पश्चिम पड़ता है, चीनको दिया जाय।

(४) १९४१ की रेखा परम्परागत सीमारेखा मानी जाय और चीन लुफांग क्षेत्रके कार्योंमें हिस्सेदार रहनेके अपने अधिकारको छोड़ दे।

पत्रमें जनरल ने विनने यह भी लिखा कि यदि चीन सरकारको ये सुझाव मान्य हों तो जब भी उसे सुविधा हो समझौतेके लिए बर्मासे प्रतिनिधि भेजे जा सकते हैं।

जनरल ने विनके उपर्युक्त पत्रके उत्तरमें चीनी प्रधान मन्त्री चाउ एन लाइका २४ सितम्बर, १९५९ का पत्र मिला जिसमें उल्लेख था कि चीन सरकारके ३० जुलाई, १९५८ और बर्माके ४ जून १९५९ के पत्रोंको वार्ताके लिए आधार मानकर सीमा-विवाद निबटानेका प्रयास शुरू किया जाय। इस सुझावको मान्यता प्रदान करते हुए जनरल ने विनने ४ नवम्बर, १९५९ को चाउ एन लाइको पत्र लिखा जिसमें आपने स्थितिका सिंहावलोकन करते हुए बताया कि ४ जून, १९५९ के पत्रमें दिये गये सुझावोंपर बर्मी और शां नेताओंको मैं इसीलिए सहमत करा सका हूँ कि मैं स्वयं किसी दलविशेषका व्यक्ति नहीं हूँ। जो कुछ सोच-विचार कर सकता था, उसे करनेके पश्चात् मैंने ४ जून, १९५९ के पत्रके सुझावोंको रखा है और यदि सरकार उसपर विचार करनेको सहमत हो तो मैं स्वयं पेकिंग आकर बातचीत करनेके लिए प्रस्तुत हूँ।

इसके पश्चात् चाउ एन लाइका २२ दिसम्बर, १९५९ का पत्र मिला। उन्होंने जनरल ने विनको औपचारिक तौरपर पेकिंग-यात्राके लिए आमन्त्रित करते हुए लिखा था कि १९६० के जनवरी मासमें उन्हें जब भी सुविधा हो, आवें। परिणामस्वरूप अनेक अन्य जिम्मेदार अधिकारियों सहित २३ जनवरी, १९६० को जनरल ने विनने पेकिंगकी यात्रा की और २८ जनवरी, १९६० को सीमा समझौता और परस्पर अनाक्रमण सन्धिपर हस्ताक्षर हुए।

ऊ नुने कहा कि जो सीमा-समझौता २८ जनवरी, १९६० को पेकिंगमें सम्पन्न हुआ उसके अनुसार धुर उत्तरी सीमास्थित क्षेत्रमें केवल तैरोन नदीकी घाटीको छोड़कर शेष भागकी सीमारेखा जलप्रपातसे होकर सीधे गुजरेगी। इसे दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि अभी हमें वही उत्तरी सीमा

मिली है, और चीनकी अनुमतिसे, जो हम चाहते थे। इज़ुराज़ी दर्रेसे होकर जाती हुई भी यह रेखा केवल पीमॉ, गॉलुम, और कांगफांग क्षेत्रोंको छोड़कर शेष भागमें झरनोंसे होकर सीधे जायगी। पीमॉ, गॉलुम और कांगफांग चीनको देना है किन्तु उसके क्षेत्रफलका निश्चय सीमा-आयोग करेगा। सीमा बन्दीके खम्भोंको भी सीमा-आयोग ही स्थापित करेगा। नामवाँ क्षेत्र, जिसका क्षेत्रफल करीब ७० वर्गमील है, अब एकमात्र बर्माकी प्रभुसत्ताके अन्तर्गत रहेगा। इसके बदले पांगहुंग-पांगलाओका वह भाग जो १९४१ में निश्चित रेखाके पश्चिममें है, चीनको दिया जायगा। इस इलाकेका क्षेत्रफल ६२ वर्गमील है। चीनकी माँग है कि इससे लगा हुआ ९ वर्गमीलका एक और भूभाग है जो इसी क्षेत्रके अन्तर्गत है और चीनको मिलना चाहिये परन्तु उसके सम्बन्धमें निर्णय देनेका काम संयुक्त सीमा-समितिके हवाले कर रखा गया है।

चीनने दो विशेष बातोंको माना है। एक तो जिस १९४१ की सीमारेखाको वह नहीं मानता था, उसे मान लिया है और दूसरे लुफांग क्षेत्रकी खानोंमें हिस्सेदार रहनेका जो अधिकार उसे १९४१ में मिला था उसे उसने छोड़ दिया है। बर्माके इतिहासमें बर्मा-चीनके बीचमें औपचारिक रीतिसे कभी भी सीमारेखा नहीं स्थापित की गयी थी। ब्रिटेन और चीनकी सरकारोंके बीच भी इसपर कभी मतैक्य नहीं था। वास्तवमें यह विवाद हमारे लिए ब्रिटिश सरकारकी ओरसे विरासत रूपमें मिला था। स्वतन्त्र बर्माके इतिहासमें तीन प्रधान मन्त्रियोंका कार्य-काल आया; मेरा, ऊ बा स्वे और जनरल ने विन का। तीनोंने ही अपने-अपने समयमें इस विवादका अन्त करना चाहा क्योंकि यह चिन्ता उत्पन्न करनेवाला प्रश्न था और इसके कारण चीन और बर्माकी सरकारें तथा उभय देशोंकी जनता एक-दूसरेको शंकाकी दृष्टिसे

देखती रही हैं।

भाषणका उपसंहार करते हुए ऊ नुने समझौतेको पढ़ा और कहा कि सदनको मैं अभी यह सूचना दे देना चाहता हूँ कि इस सीमा-समझौतेके अनुसार बर्माको अपना कुछ भूभाग चीनको देना पड़ेगा और ऐसा करनेके लिए उसे बर्मी संविधानकी अनुमति मिलनी चाहिये। विधानमें अभी इसकी व्यवस्था नहीं है और इसलिए अपेक्षित अवसर आनेपर विधानमें संशोधन करना आवश्यक होगा।

अन्ततः संसद्ने समझौतेको विलेखन और मान्यता प्रदान कर दी।

वर्तमान कछिन् राज्य

बर्मा-चीन सीमा समझौताके अनुसार कछिन् राज्यके जिन तीन ग्रामों—पीमॉ, गॉलुम और कांगफांग—को तथा पांगह्ंग और पांगलाओ जातियोंके निवास-ग्राम यांगहॉक और लुंगनायको बर्मा सरकार द्वारा चीनके हवाले करना था और नाम्वायु खण्डको चीनसे प्राप्त करना था उसकी अदला-बदलाकी रस्में ४ जून, १९६१ को पूरी की गयीं। इस अवसरपर अन्य देशोंकी सरकारोंके अधिकारियोंके संयुक्त हस्ताक्षरसे एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी जिसमें कहा गया था—

(१) ऊपर उल्लिखित सीमासन्धिके अनुच्छेद (१) के अनुसार पीमॉ, गॉलुम और कांगफांग चीनको वापस किये गये हैं।

(२) पांगह्ंग और पांगलाओ जनजातियोंके रहनेके क्षेत्रोंको सन्धिके अनुच्छेद (२) के अनुसार चीनको वापस किया गया है।

(३) यांगहॉक और लुंगनाय ग्रामोंको चीनके हवाले तथा उम्फा, पांकुंग, पांनांग और पांवाय ग्रामोंको बर्माके हवाले सन्धिकी धारा (३) के अनुसार किया गया।

उक्त सन्धिकी धारा ९ के अनुसार मेंगमांगका त्रिभुजाकार क्षेत्र (नामवॉ भूखण्ड) जो बर्मा-चीन-सीमा-सन्धिके ४ जनवरी १९६१ के लागू होनेके बादसे ही बर्माका बन चुका था, बर्माको वापस कर दिया गया।

इस प्रकार कछिन् राज्यकी भौगोलिक स्थितिमें तो परिवर्तन आ गया परन्तु उसकी राजनीतिक स्थिति पूर्ववत् बनी रही। यहाँके शासकोंको 'डुआ' कहते हैं। 'डुआ'का शाब्दिक अर्थ है जमींदार। वे डुआ निरंकुश शासक रहते आये थे, किन्तु जबसे

बर्मामें लोकतन्त्रकी स्थापना हुई, इस राज्यके विभिन्न क्षेत्रोंमें भी संसदीय सदस्योंका निर्वाचन वयस्क मताधिकारके नियमानुसार होने लगा और कछिन्-राज्यकी शासक-परिषद् तथा उच्चतम कौंसिलका निर्माण किया गया। जनता द्वारा निर्वाचित सदस्योंमेंसे कौंसिलके सदस्य परिषद्के अध्यक्षका चुनाव करते हैं।

कछिन् राज्यमें दो महत्त्वपूर्ण राजनीतिक संस्थाएँ हैं। एकको 'पेक्डो' (पीपुलस एजुकेशनल कल्चरल डेमोक्रेटिक आर्गेनाइजेशन) और दूसरीको के० एन० सी० (कछिन् नेशनल कांग्रेस) कहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक संस्थाएँ भी हैं, परन्तु वे इतना महत्त्व नहीं रखतीं कि उनके कार्यकलापोंका विशद वर्णन किया जाय।

'पेक्डो'के सर्वश्रेष्ठ नेता सामा डुआ सिन्नानांग हैं। आप अपने राष्ट्रप्रेम, दृढ़निश्चय और जीवनकी सादगीके लिए सुविख्यात हैं। आप इतने लोकप्रिय हैं कि बिना कोई नाम बताये केवल 'डुआजी' कहा जाय तो इसका तात्पर्य यही माना जायगा कि सामा डुआ सिन्नानांगको ही सम्बोधित अथवा स्मरण किया जा रहा है। सौभाग्यवश इन पंक्तियोंके लेखकको इनके सन्निकट आनेका अवसर मिला है और उनके निरभिमानी सरल जीवनसे तो वह अत्यन्त प्रभावित हुआ है। देखते ही आत्मीयता प्रकट करना और वार्त्ताके समय शिष्टाचारपूर्वक 'अकोजी' (बड़े भाई) आदि कहकर दूसरेको सम्बोधित करना आदि अनेक गुण 'डुआजी'में हैं।

विगत विश्वयुद्धके पश्चात् जब अंग्रेजोंको यह अनुमान होने लगा था कि उन्हें बर्मासे साम्राज्यशाही सत्ता समेट लेनेके लिए विवश होना पड़ेगा तो उन्होंने कछिन्-राज्यको बर्मासे पृथक् रखनेका स्वांग शुरू किया। उन्होंने यह भी चाहा कि इस राज्यके नेता इस योजनासे सहमत हो जायँ, परन्तु उनकी

चाल सफल नहीं हो सकी। सन् १९४७ की १३ अप्रैलको होनेवाले सीमा-सम्मेलनमें 'डुआजी'ने निर्भीकतापूर्वक कहा कि 'हम बर्मा संघकी एकता भंग नहीं होने देंगे। कछिन्-राज्य संघके अन्तर्गत ही रहेगा।' डुआजीने होनेवाले १२ फरवरी १९४७ में अंग्रेजी दुर्नीतिका पर्दाफाश किया और उनकी एक नहीं चलने दी। प्रधान मन्त्री ऊ नु डुआजीका सदैव सम्मान करते रहे हैं।

कछिन् राज्यकी दूसरी राजनीतिक संस्था के० एन० सी० के नेता डुआ ज़ालोन हैं। गणतन्त्र बर्माकी कछिन्-राज्य परिषद्के प्रथम अध्यक्ष सामा डुआ सिन्नानांग थे और उनके पश्चात डुआ ज़ालोनने ही उक्त पद सँभाला था।

कछिन्-राज्यके लोग सीधे और सरल होते हैं। इनमें ईसाई धर्मावलम्बी काफी हैं, पर बहुसंख्यक बौद्धमतावलम्बी हैं। किसी भी धर्मको न माननेवाले भी कुछ लोग यहाँ हैं।

कछिन्-राज्यका एक बड़ा हिस्सा बर्मी-चीनी सीमा बनाता है और उभय देशोंके बीच सीमा-समझौता न होनेके कारण इस राज्यकी राजनीतिक स्थिति अपेक्षाकृत अधिक शोचनीय बनी हुई थी। एक-न-एक उलझन पैदा होती ही रहती थी, लेकिन अब वह प्रश्न हल हो गया है।

'पेक्डो' और के० एन० सी० दो परस्पर प्रतिद्वन्द्वी संस्थाओंकी होड़ तो निरन्तर चलती रहती थी, जिससे कछिन्-राज्यकी जनता दो गुटोंमें विभक्त थी। बर्माकी सत्तारूढ़ संस्था 'फसपल'के नेताओंमें फूट होनेके कुप्रभावसे यह गुटबन्दी और मजबूत बन गयी और स्थिति विषम होती गयी है। विगत विश्वयुद्धसे पूर्व कछिन्-राज्यके सामांव नामक स्थानमें एक साधारण चीनी मिल थी, जिसका अस्तित्व तो अब नहीं रह गया है, परन्तु उससे थोड़ी ही दूरीपर नाम्टी नामक स्थानमें एक बड़ी चीनी

मिल बैठा दी गयी है। इसके अतिरिक्त कछिन्-राज्यमें बड़े उद्योगों और कारखानोंका अभाव है। यहाँका अधिक भू-भाग बंजर है। फलस्वरूप व्यापारी वर्गके लोगोंको छोड़कर बहुसंख्यक आम जनता दीनावस्थामें देखी जाती है।

कछिन् जाति बड़ी ही लड़ाकू और स्वामि-भक्त मानी गयी है। ब्रिटिश सत्ताकालमें तो कछिन् रेजीमेण्ट थी ही, गणतन्त्र बर्मामें भी यह पूर्ववत् कायम है। इसपर सरकारको पूरा भरोसा रहता है। गृहयुद्ध-कालमें क्रान्तिकारियोंका दमन करनेमें उक्त रेजीमेण्टने बहुत सहायता दी थी।

मचीनाके अतिरिक्त मोगांव, मोइयन, कला, भामो और सिन्लुन विशेष नगर हैं। इन नगरोंमें वहाँके आदिवासियोंके अतिरिक्त भारतीय और नेपाली भी काफी बड़ी संख्यामें हैं। चीनी तो हैं ही।

कछिन्-राज्यकी यात्राके लिए रंगूनसे विमान भी जाता है। रेल द्वारा तो यातायात होता ही है, जलमार्गसे जहाज भी जाता है। यह जहाज केवल कला और भामोतक जाता है, उसके बाद जहाज चलाना सम्भव नहीं। इरावदीकी धारा अति तीव्र होनेके साथ ही चट्टानोंसे टकरानेका भी भय रहता है। कछिन्-राज्य जानेके निमित्त मोटरका मार्ग भी है। यह माण्डलेसे लाश्यो, कुटखाई, मूसे, नामखाम और भामो होता हुआ जाता है। दृश्य निरीक्षण और अनुभव अर्जनकी दृष्टिसे इन पंक्तियोंके लेखकने एक बार मोटर-मार्गसे ही माण्डलेसे मचीनातक यात्रा की थी। यात्रा करनेसे कुछ ही काल पहले उपद्रवी भगोड़े चीनी सैनिकोंका मूसे नगरपर कब्जा रह चुका था। कुछ ऐसी अन्तःप्रेरणा हुई कि यदि सम्भव है तो क्यों न उक्त मार्गसे जाकर यह जाना जाय कि उपद्रवियोंके अधिकार-कालमें वहाँके निवासियोंकी क्या अवस्था थी। मूसेके निवासियोंसे यह मालूम हुआ कि

चीनी सैनिकोंके व्यवहार तो बर्बर थे ही, वे अमेरिकी आधुनिक आयुधोंसे भी लैस थे।

मार्गमें मनमोहक पर्वतीय दृश्य हैं। जिन-जिन नगरोंमें मुझे रुकनेका अवसर मिला वहाँके निवासियोंकी आत्मीयता परम श्लाघनीय थी। इसी यात्राके सिलसिलेमें नामखाम स्थित स्वर्गीय डाक्टर सीग्रेवका अस्पताल देखनेका अवसर भी सुलभ हुआ था। अस्पतालके भवनको देखकर भारतके तीर्थनगर काशीकी स्मृति सहसा जाग्रत हो उठी। बर्मामें यही एक ऐसा भवन, लेखकको देखनेको मिला जिसकी तुलना काशीमें शिलाखण्डोंसे निर्मित भवनोंसे की जा सकती है।

डाक्टर सीग्रेवका सेवा-कार्य भी कुछ कम प्रशंसनीय नहीं। आपके अस्पतालमें मुफ्त इलाज होता है और ऐसे मरीज अस्पतालमें आते हैं जो अन्यत्रसे निराश हो जाते हैं। सीग्रेव ईसाई धर्मावलम्बी अमेरिकी डाक्टर थे और इस सेवा-संस्थानकी स्थापना कर धर्म और मानवता, दोनोंकी सेवामें जीवनभर संलग्न रहे। आपके पश्चात् भी आपके अनुयायियोंने अस्पतालका काम पूर्ववत् रखा है। नामखामसे चलकर कछिन्-राज्यके दूसरे दर्जेके महत्त्वपूर्ण नगर भामो और फिर प्रधान नगर मचीना पहुँचनेपर तो ऐसा लगने लगा मानो किसी भारतीय अथवा नेपाली उपनिवेशमें ही पहुँच गया हूँ।

फेडरेशनकी माँग और शां प्रदेश

सन् १९४७ के फरवरी मासमें दक्षिणी शां राज्य के पांलांग नगरमें होनेवाले बर्माके सभी राज्योंके प्रतिनिधियोंके सम्मेलनके निश्चयानुसार जब बर्मा संघकी नींव पड़ी तभी इस सार्वभौम सत्तासम्पन्न देशके सभी राज्य, संघकी छायामें रहने लगे। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों कुछ क्षेत्रोंमें नयी विचारधारा काम करने लगी। इसके दो मुख्य कारण थे, एक तो सत्तारूढ़ राजनीतिक दलमें पारस्परिक मतभेद पैदा होना और दूसरा विभिन्न राज्योंके निवासियोंमें राजनीतिक जागरण उत्पन्न होना।

शां राज्य इन विचारधाराओंसे अछूता नहीं रह सकता था और वहाँकी जनताने भी समय-समयपर संघविरोधी आवाज उठानी शुरू कर दी। यह आवाज १९६१ के प्रारम्भमें एक निश्चित माँगका रूप लेकर सामने आने लगी। वहुसंख्यक शां नेता वर्मा संघके वर्तमान वैधानिक रूपमें ही परिवर्तन लानेकी माँग करने लगे। १९६१ के जून मासमें तो उनकी प्रमुख माँगें सभी समाचारपत्रोंके मुखपृष्ठपर प्रकाशित होने लगीं और जून १९६१ से एक विशेष अधिवेशन दक्षिणी शां राज्यके मुख्य नगर टौंजीमें आयोजित हुआ, अधिवेशनका सभापतित्व शां राज्यपरिषद्के प्रमुख साओ खुन चिओने किया और अन्यान्य राज्योंके नेताओं एवं प्रमुखोंने भी उसमें भाग लिया। अधिवेशनने जो प्रस्ताव स्वीकार किया उसका तात्पर्य यह था कि इस देशके सभी राज्योंके निवासियोंको समान राजनीतिक स्तर प्राप्त होना चाहिये और यह तभी सम्भव हो सकता है जब संघको फेडरेशनका रूप दे दिया जाय।

अधिवेशन समाप्त हो जानेके पश्चात् तत्सम्बन्धी अभिमत व्यक्त करनेके लिए 'फसपल'के उपाध्यक्ष और भूतपूर्व उपप्रधान मन्त्री ऊ चौ एँइने २९ जून, '६१ को प्रधान मन्त्री ऊ नुसे दो घण्टे-तक बातचीत कर इस सम्बन्धमें अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। आपने कहा कि यदि 'फेडरेशन'का सुझाव कार्यान्वित किया गया तो संघ छिन्न-भिन्न हो जायगा इसलिए इसका विरोध होना चाहिये। इसके साथ ही उन दोषोंको भी दूर करना चाहिये जिनके कारण 'फेडरेशन'की माँग की जाने लगी है। इन कारणोंका स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए, ऊ चौ एँइने बताया कि (१) कतिपय सरकारी अधिकारियों और सैनिकोंका स्वेच्छाचार, (२) ऐसे व्यक्तियोंके कुप्रयास जो बौद्ध धर्मको राजधर्मके स्थान-पर नहीं देखना चाहते, (३) विविध सहायताके अनियमिततापूर्ण कार्यों और (४) वित्तमन्त्री तथा वित्तविभागीय सचिवोंकी शां नेताओंके प्रति नीतिके फलस्वरूप फेडरेशनकी माँगका जन्म हुआ है।

ऊ चौ एँइने ऊ नुसे कहा कि ये शिकायतें बिना फेडरेशनकी माँगको स्वीकार किये और संविधानमें संशोधन लाये ही दूर की जा सकती हैं। जिन अधिकारियोंके व्यवहार अनुचित रहे हैं उन्हें दण्ड दिया जा सकता है। विविध राज्योंको जो सहायता दी जाती है उनमें समन्वय और सन्तुलन लाया जाना चाहिये। आपने कहा कि ७०-८० देशोंमेंसे केवल १० ने अभीतक 'फेडरेशन'के नियमको चालू किया है और उनके भी असली रूप वैसे नहीं हैं। ऊ चौ एँइने कहा कि अगले ३०-४० वर्षोंमें जातीय भेद मिटने जा रहे हैं और उसके बाद तो बहुत-सी समस्याएँ यों ही हल हो जायँगी। ऊ चौ एँइकी ऐसी तत्परताके प्रति ऊ नुने कृतज्ञता व्यक्त की और अन्य राजनीतिक दलोंके नेताओंसे भी इसपर विचार-विमर्श करनेका विश्वास दिलाया।

इसी प्रकार कछिन् राज्यके प्रमुख सामा डुआ सिन्नानांग और छिन प्रदेशके प्रमुख ऊ जाहरे लियनने भी ऊ नुसे भेंटकर अपने विचार व्यक्त किये थे। आप लोगोंने यह बताया है कि किस प्रकार टौंजी सम्मेलनमें इनका समझौता प्रस्ताव गिर गया। उन्होंने कहा कि वर्तमान बर्मी संविधानको बदलकर नयेका निर्माण करना कितना कठिन कार्य है, इसपर उन लोगोंने सम्मेलनमें प्रकाश डाला था तो भी विफलता ही हाथ लगी। इस मुलाकातके तीन दिनों बाद कछिन् प्रदेशके नेता डुआजीसे मचीनामें जब कतिपय पत्रकारोंने प्रश्न किया कि कुछ कछिन् आपको 'बर्मियोंका कुत्ता' कह रहे हैं और इसपर आपकी क्या राय है तो उन्होंने उत्तर दिया कि सन् १९४७ में जब अंग्रेज अपनी 'फूट डालो और राज्य करो'की नीतिको चरितार्थ करना चाहते थे उस समय भी मुझे कुछ लोगोंने यही कहा था और पुनः १९४९ में जब कथिन बगावतके दमनके लिए मैं कछिन् रेजिमेण्ट तैयार करनेमें लगा था तब भी कुछ लोगोंने यही नारे शुरू किये थे। उसी तरह आज फिर बर्मा संघकी अखण्डता कायम रखनेके लिए यदि मुझे 'बर्मियोंका कुत्ता' कहा जा रहा है तो मैं इसकी परवाह नहीं करता। साम्राज्यवादियोंका कुत्ता बननेके बदले बर्मियोंका कुत्ता कहलाना मैं पसन्द करूँगा, लेकिन यह देखूँगा कि बर्मी संविधानकी रक्षा हो। बर्मा संघ अखण्ड रहे, यही मेरा अभीष्ट है।

शां राज्य परिषद्के अध्यक्ष साओ खुन चिओने अपने ऊपर किये गये आरोपोंका उत्तर देते हुए कहा कि यह समाचार निराधार है कि मैंने 'फेडरेशन'की माँगसे सहमत होकर टौंजी अधिवेशनका सभापतित्व किया था। मैं जब टौंजी पहुँचा उससे कई दिनों पहलेसे सम्मेलन चल रहा था। मुझे तो उसका सभापतित्व करनेके लिए विवश किया गया।

शां प्रदेशके १० अन्य नेता और साओ खुन चिओ ८ जुलाईको प्रधान मन्त्री ऊ नुसे मिले और उन्होंने वस्तुस्थितिपर प्रकाश डाला। शां शिष्टमण्डलके एक प्रवक्ताने कहा कि साओ खुन चिओ ऐसी स्थिति कदापि नहीं आने देंगे कि शां नेता अपने प्रदेशके लिए 'प्रभुसत्ता'की माँग कर उसे बर्मासे अलग कर लेंगे। अबतक तो यही बात है। फेडरेशन अभी माँगके रूपमें ही है।

शां प्रदेशके दो भाग हैं—उत्तरी और दक्षिणी। दोनों राज्योंका संयुक्त क्षेत्रफल ५६ हजार वर्गमील है। जनसंख्या १९८७००० है। दोनों प्रदेशोंमें छोटी-बड़ी कुल ३६ जागीरें हैं। सबसे छोटी जागीर 'च्यों'का क्षेत्रफल केवल २४ वर्गमील है और बड़ीसे बड़ी केंगटुंगका १० हजार वर्गमील। इन जागीरोंके स्वामीको शां भाषामें 'सोबवा' कहते हैं। सोबवा जागीरोंके निरंकुश शासक होते हैं। ये शासक छोटे जमींदारोंकी नियुक्ति कर उनके माध्यमसे व्यवस्था कायम रखते हैं।

बर्मी राष्ट्र गणराज्य होनेपर भी शां राज्य बर्मा-संघके अन्तर्गत स्वराज्यका उपभोग करता है। यहाँके संसदीय सदस्यों-का निर्वाचन करके 'शां राज्य-परिषद्' का गठन किया जाता है। इस परिषद्की एक उच्चतम कौंसिल होती है। इसके ५० सदस्य होते हैं। इन ५० सदस्योंमेंसे २५ का निर्वाचन वयस्क-मताधिकारके आधारपर आम जनता द्वारा होता है और २५ को शां राज्यके सोबवा स्वयं नियुक्त करते हैं। इस प्रकार यद्यपि शां राज्यमें लोकतान्त्रिक शासन-व्यवस्थाका श्रीगणेश कर दिया गया है और शां राज्यपरिषद्का निर्माण हुआ है, फिर भी 'सोबवाओं'का ही बोलबाला है।

ब्रिटिश शासनकालमें सरकारी कमिश्नर दक्षिणी शां राज्यके नगर टौंजीमें रहता था और उसकी सहायताके लिए एक सहायक

राजनीतिक अधिकारी उत्तरी शां राज्यके लाइयो शहरमें रहता था। इस समय सम्पूर्ण शां राज्यके केवल तीन नगरों 'कलौ', 'टौंजी' और 'लाइयो'के क्षेत्रोंके स्वास्थ्यविभागीय कार्यों की देख-रेख शहरी समितियाँ किया करती थीं। इन समितियोंके सदस्य कुछ सरकारी अधिकारी और सरकारकी ओरसे नियुक्त किये गये कतिपय अन्य सदस्य हुआ करते थे। इस प्रकार राजनीतिक चेतनाके लिए कोई स्थान नहीं था। आम जनता द्वारा आन्दोलन असम्भव था। राजनीतिक जागृतिकी विचारधाराके व्यक्ति अधिक समय शां प्रदेशोंमें नहीं रह पाते थे, 'सीमा पार करनेका कानून' लागू था।

जागरण और सुधारके प्रयत्न—विगत विश्वमहायुद्धके समय (जापानी आधिपत्यकालमें) बदले वातावरणसे लाभ उठाकर वहाँके युवकोंने 'ईस्ट एशियाटिक यूथ लीग'की स्थापना की। उनका सर्वप्रथम कदम अनियन्त्रित शासन-व्यवस्थाके विरोधमें आन्दोलन करना था। परन्तु परिस्थितिने उनका साथ नहीं दिया और कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी। युद्ध समाप्त होनेके बाद जब सम्पूर्ण बर्मामें स्वतन्त्रताके लिए आन्दोलनकी लहर दौड़ी तो शां प्रदेश भी इससे अछूता नहीं रहा और 'शान स्टेट्स पीपुल्स फ्रीडम लीग'का जन्म हुआ। इस लीगको 'पीपुल्स वालण्टियर आर्गेनाइजेशन'का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। इन दोनों संस्थाओंके कार्यकर्ताओंको सन् १९४८ में फरार होना पड़ा। सरकारी सैनिकोंके साथ इनका सशस्त्र संघर्ष हुआ, जिसमें बहुसंख्यक कार्यकर्ता गोलीके शिकार हुए। कुछने आत्मसमर्पण भी किया और अब भी शसस्त्र संघर्ष कर रहे हैं। सन् १९४८ से ५१ तक प्रतिक्रियावादियोंके हाथोंमें सर्वोच्च सत्ता थी, जिसके परिणामस्वरूप बौद्धिक दृष्टिसे राजनीतिक चेतना नाममात्र भी नहीं थी।

सन् १९४८ के जनवरी मासमें जब कयिनोंने बगावत शुरू की तो शां राज्यका एक बड़ा हिस्सा उनके कब्जेमें आ गया। इसके बाद ही शां क्षेत्रकी 'टौंदू' जातिने सन् १९५० में क्रान्ति प्रारम्भ की।

टौंदूकी क्रान्तिके कारणोंके सम्बन्धमें विभिन्न मत हैं। किसीका कहना है कि बागी कयिनोंसे बल पाकर इन्होंने क्रान्ति शुरू की। टौंदूकी माँग प्रादेशिक स्वायत्त सत्ताके लिए है। वे कयिनोंकी तरह अलग राज्यकी माँग नहीं करते। सन् १९५१ में बहुसंख्यक टौंदुओंने सरकारको आत्मसमर्पण करके 'यूनियन आफ बर्मा पाओ (टौंदू) असोसियेशन'का निर्माण किया। इस संस्थाका संघटन इन लोगोंने कानूनी और वैधानिक रीतिसे किया है। टौंदू असोसियेशनके अतिरिक्त शां राज्योंमें तीन अन्य संस्थाएँ भी हैं। दो हैं 'शान स्टेट्स हिल पीपुल्स काँग्रेस' और 'दी पीपुल्स फ्रीडम लीग'। आम लोगोंका कहना है कि यह सोबवाओंकी जेबी संस्था है। इसके अध्यक्ष साओ खुन चिओ और मन्त्री साओ खुन आंग हैं। ये दोनों ही सोबवा हैं। कांग्रेसके विशिष्ट सदस्य भी या तो सोबवा हैं अथवा उनके आदमी हैं। इस संस्थाकी नीतिका स्पष्टीकरण अभी नहीं हुआ है। इससे पूर्व एक और संस्था 'हिल पीपुल्स युनाइटेड कौंसिल' नामकी थी, जिसके नामपर उक्त कांग्रेसका निर्माण किया गया है। कांग्रेसकी शाखाएँ भी सम्पूर्ण शां प्रदेशमें फैली हुई हैं। अभीतक यह कहा नहीं जा सकता कि इसकी सदस्यता सभी आदिवासियोंको प्राप्त हो सकती है अथवा इसके विधाता जिसे चाहें वही सदस्य बन सकता है।

'हिल पीपुलस कांग्रेस'के समानान्तर दूसरी संस्था शां प्रदेशमें 'पीपुल्स फ्रीडम लीग' है। इसकी नींव सन् १९५१ में सैनिक अधिकारियों और बर्मी समाजवादी दलके नेताओंके संयुक्त

प्रयाससे डाली गयी थी। लीगका मूल उद्देश्य है शां प्रदेशसे निरंकुशताका अन्त करना। इसके अध्यक्ष ऊ ठुन एँड़ हैं। आप शां राज्य स्वायत्त-शासनके एक मन्त्री भी हैं। अनुमान किया जाता है कि बर्मी समाजवादी दल इस लीगके माध्यमसे शां-प्रदेशमें अपना पाँव जमाना चाहता है।

तीसरी संस्था 'सोशलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी' है। इस संस्थाने स्पष्ट रूपमें घोषणा कर दी है कि यह 'बर्मी शोसलिस्ट दल'का अनुगमन करेगी। बर्मी समाजवादी नेता ऊ वा स्वे और ऊ चौ एँइ इसके जन्मदाताके रूपमें मान्य हैं।

समाजवादी नेताओंने यह चेष्टा की थी कि 'पीपुल्स फ्रीडम लीग' और 'हिल पीपुल्स कांग्रेस'को एक कर दिया जाय और इस अभीष्टकी पूर्तिके लिए सन् १९५३ के नवम्बर महीनेमें एक सम्मेलनका आयोजन किया गया, जिसमें निम्नलिखित उद्देश्यों-की घोषणा की गयी थी—(१) शां राज्यके निवासियोंमें एकता पैदा करना, (२) शां राज्यमें लोकतान्त्रिक शासन-व्यवस्था कायम करना, (३) पर्वतीय जातियों और स्वतन्त्र बर्माके लोगोंमें एकता लाना, (४) शां प्रदेशके निवासियोंमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगतिके लिए नेतृत्व प्रदान करना। पिछले दिनों संस्थाओंके विचारोंमें इतना भेद बढ़ गया है कि संयुक्त मोरचाका अन्त अधिक दिनोंकी बात नहीं रह गयी है।

शां प्रदेशके सोबवाओंने अपने अधिकारोंके त्यागनेकी घोषणा की है, परन्तु जाँच करनेपर पता चलता है कि केवल न्यायालय सम्बन्धी अधिकार ही उन्होंने छोड़े हैं। शासन-व्यवस्था अब भी उन्हींके हाथमें है। शां राज्यकी सरकार कुछ समयसे शासनके केन्द्रीकरणकी चेष्टामें है, परन्तु इसे कब सक्रिय रूप दिया जा सकेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। सत्ता समर्पित

करनेके पहले सोब्वाओंने ६ करोड़ 'च्या' (रुपए)के हरजानेकी माँग की है, परन्तु इसपर कोई निर्णय नहीं हो पाया है। बर्मा सरकार इसपर विचार कर रही थी। कहा जाता है मन्त्रिमण्डलके कुछ सदस्योंका कहना है कि शां जागीरोंका विलयन अपने आप होना चाहिये। फलस्वरूप, समस्यापर विशेष तौरसे विचार किया जाना अनिवार्य हो गया है। जागीरदारों (सोब्वाओं)ने ६ करोड़की जो माँग की है उसमें उनके निमित्त २५ वर्षोंके वेतनकी रकम है और जुआ खेलनेकी छूट देनेसे जो 'कर' उन्हें मिलता है उसकी भी २५ वर्षोंकी आय है। शां प्रदेशमें निरंकुशताका अन्त करनेके लिए जब आन्दोलन शुरू हुआ तो जुआ खेलनेकी प्रथा समाप्त करनेकी भी माँग जोरोंसे शुरू हुई, क्योंकि इससे आम जनताको भारी क्षति पहुँचती है, परन्तु आन्दोलन दबा दिया गया। जुआ खेलनेसे जो आमदनी होती है वह सोब्वाओंके जेबखर्चके लिए जाती है। जुएमें दाँव लगानेवाले अधिकतर टौंदू होते हैं। जुआ चालू रहनेके समय दुर्घटनाएँ भी होती हैं। 'हथगोला' फेंकने अथवा सशस्त्र आक्रमणके समाचार भी बहुधा मिलते हैं।

शां प्रदेशका उत्तरी सीमान्त अब भी आतंकग्रस्त है। चार वर्ष पूर्व तो वहाँ स्थिति अत्यन्त विषम थी। भगोड़े चीनी सैनिकोंने उपद्रव मचा रखा था। अभी बर्मा सरकारकी ओरसे सैनिक कारवाइयाँ होने और संयुक्त राष्ट्रसंघके हस्तक्षेपके फलस्वरूप स्थितिपर बहुत-कुछ नियन्त्रण कर लिया गया है। यहाँ १३ हजारमेंसे अब ३ हजार चीनियोंका ही होना बताया जाता है।

उत्तरी शां प्रदेशके बाडविनकी चाँदीकी चर्चा आवश्यक है। बाडविनकी खान संसारकी बड़ी खानोंमेंसे एक और बर्माकी तो चाँदीकी एकमात्र खान यही है। बाडविन नाम्टूसे ६ मीलकी

दूरीपर है। धरातलकी तहोंसे खुदाई कर कच्ची धातु नाम्टू लायी जाती है और यहाँ विविध पात्रोंमें गलाई और छनाई की जानेके बाद चाँदीके बड़े-छोटे टुकड़ोंमें ढाली जाती है। परतन्त्र बर्मामें इस खान तथा कारखानेका संचालन एक आस्ट्रेलियन कम्पनी करती थी, परन्तु अब उसे बर्मा कारपोरेशन लिमिटेड (बी० सी० एल०) बना दिया गया है। इसमें ५१ शेयर बर्मा सरकारके और ४९ शेयर कम्पनीके हैं।

प्राकृतिक और सामाजिक स्थिति—यों तो रंगूनसे बर्माके अन्य किसी भी क्षेत्रके लिए रेल द्वारा यात्रा करते हुए मार्गमें जो दृश्य देखनेको मिलते हैं वे भारतके भिन्न-भिन्न स्थानोंके अनुरूप लगते हैं। कहीं चित्रकूटका स्मरण हो आता है तो कहीं वृन्दावन दीखता है। परन्तु शां राज्यमें प्रवेश करते ही 'कश्मीर-सुषुमा' शीर्षकसे लिखी गयी कविवर श्रीधर पाठककी पंक्ति 'प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति'का प्रत्यक्ष रूप दिखाई देने लगता है। मार्गमें वृन्दावन तो वहाँ बसा हुआ मालूम पड़ता है, जहाँ उपवनोंके बीच अवस्थित ग्रामोंकी अल्पवयस्का ग्राम्याएँ सिरपर गागर धरे कतारकी कतार आती-जाती दिखाई देती हैं। भले ही वहाँ जमुना-तट नहीं है, परन्तु एक पनघट तो है ही। पनघटसे पनिहारिनोंका आना-जाना कालिन्दी-तटके समान मनोमुग्धकारी दृश्य प्रस्तुत करता है।

प्राकृतिक छटाके अतिरिक्त शां प्रदेशकी अन्य स्थितियाँ भी बर्मामें अनुपम हैं। शानियों जैसी ईमानदार जाति संसारके अन्य किसी भागमें है, यह कहना कठिन है। लगभग १३ सौ वर्ष पूर्व सम्राट् हर्षवर्धनके शासनकालमें भारतकी यात्रा करनेवाले चीनी यात्री ह्वेनसांगने (६३८ ई० में) अपने अनुभवोंका वर्णन करते हुए लिखा था कि उन दिनों लोग अपने घरोंमें ताले नहीं लगाते

थे। बर्माकी शां राज्यकी बस्तियोंमें अब भी बहुत कम लोग ताला लगाते हैं। कुछ वर्षों पूर्व वहाँके शहरोंके लोग भी निर्भय रहते थे; उन्हें चोरी और डाकेजनीका भय नहीं रहता था। राहमें पड़ी सोनेकी राशिको भी कोई नहीं छूता था, किन्तु यह बात अब केवल उन ग्रामोंमें ही रह गयी है, जहाँ केवल शानी बसते हैं। शहरोंका वातावरण किंचित् दूषित हो गया है। शानियोंकी यह शिकायत भी है कि नगर-निवासियोंकी कुप्रवृत्तियोंका प्रभाव धीरे-धीरे ग्रामीणोंपर भी पड़ना शुरू हो गया है। जिस प्रदेशमें प्रकृतिका उन्मुक्त स्वरूप दिखाई पड़ता है, वहाँके शान्त और सुखद वातावरणका प्रभाव पथिकके पहुँचते ही उसपर सहज ही पड़ जाता है।

शां प्रदेशके प्राकृतिक दृश्य तो लगभग सर्वत्र समान मनमोहक हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंकी जलवायुमें अन्तर है। वृक्षोंकी प्रधानताके अनुसार ही वहाँकी जलवायु भी मिलती है। दक्षिणी शां राज्यके कलौ नगरकी जलवायु सर्वोत्तम है। वहाँ चीड़के वृक्ष अधिक हैं। इसलिए वहाँकी जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। उससे केवल ६ मीलकी दूरीपर ही बसे नगर आंगबानकी जलवायुमें यह विशेषता नहीं है। इसी भाँति प्रति दस-दस, बीस-बीस मीलकी दूरीपर जलवायुमें भिन्नता दिखाई पड़ती है।

विगत कुछ वर्षोंमें सम्पूर्ण ऊपरी बर्मा, दोनों शां राज्यों और कछिन्-प्रदेशका भ्रमण करनेके अनेक अवसर इन पंक्तियोंके लेखकको मिले। शां प्रदेशका 'कलौ', ऊपरी बर्माका मेम्यो और रूबी माइनका मोगोक नगर सर्वाधिक शान्ति एवं स्वास्थ्यवर्द्धक प्रतीत हुए। मोगोकके लिए विमान भी जाता है, परन्तु अधिकतर मोटरसे ही यात्रा की जाती है। उत्तरी शां राज्यके चौमे नगरसे मोगोकके लिए मोटर जाती है। चौमेसे मोगोक

७५ मीलकी दूरीपर है। पहाड़ियोंकी अत्यन्त दुरूह चढ़ाइयों-उतराइयोंसे होकर यह रास्ता जाता है। यात्रा अत्यन्त कष्टकर और असुविधापूर्ण है। चौमेसे मोगोक पहुँचते-पहुँचते बड़ी थकावटका अनुभव होने लगती है, लेकिन एक दिनके ही निवासके पश्चात् वहाँ नवस्फूर्तिका अनुभव होने लगता है। ऐसा है स्वर्गोपम बर्माका शां प्रदेश !

बर्माका सैन्यतन्त्र

विश्वकी वर्तमान स्थितिपर दृष्टिपात करनेसे कुछ ऐसा लगता है कि इस युगको जहाँ सैन्य-शक्तिप्रधान, भौतिक अथवा विज्ञानवादी आदिकी संज्ञा दी जा सकती है वहाँ इसे सैन्यतन्त्र या सैन्यविप्लवका युग कहना भी अनुचित न होगा। सैन्य शक्तिकी प्रधानतासे तो संसारका कोई भी राष्ट्र अछूता नहीं दीखता, एशियाई या मध्यपूर्वीय अधिकांश देश तो आये दिन सैन्य विप्लव से भी आक्रान्त होते दीख रहे हैं। इससे यदि कोई राष्ट्र किंचित् बचा हुआ है, तो वह है केवल भारत। इस पृष्ठभूमिके साथ यदि बर्माके वर्तमान राजनीतिक परिवर्तनपर विचार किया जाय, तो इसपर आश्चर्य करनेका कोई विशेष कारण नहीं दीखता। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि 'ऐसी पुनरावृत्ति क्यों ?' यदि वर्माके राजनीतिज्ञ लोकतन्त्रका सफल निर्वाह करनेके योग्य नहीं हैं, तो क्यों जनरल ने विनने अबसे दो वर्ष पूर्व कुल १८ महीने ही शासनसूत्र हाथमें रखकर वापस दे दिया ? यदि यह विडम्बना थी तो क्यों ? और यदि इसके पीछे यथार्थता रही, तो तत्सम्बन्धी तथ्योंका भी विवेचन होना चाहिये ?

१९५८ में जनरल ने विनने ऊ नुके हाथसे शासनसूत्र छीना नहीं था अपितु उन्हें ऊ नु द्वारा सौंपा गया था। हाँ, यह बात भिन्न है कि ऊ नुने तत्कालीन विषम परिस्थितियोंसे विवश होकर ऐसा किया था; अथवा, उनके ऐसा न करनेपर राष्ट्रहितकी दृष्टिसे तब भी ने विनको अन्ततः वही कदम उठाना पड़ा होता जो कदम उन्होंने आज उठाया है। ऐतिहासिक तथ्य, जिनके विवेचन पूर्वपरिच्छेदोंमें हो चुके हैं, ये हैं कि तत्कालीन सत्तारूढ़

राजनीतिक दल 'फसपल' दो पक्षोंमें विभाजित हो गया था और उभय पक्ष देशकी जनताका नेतृत्व करनेका दम भरने लगा था, जिस खींचतानके परिणामस्वरूप सरकारी सभी नियन्त्रण तो ढीले पड़ ही गये थे, देशका प्रतिनिधित्व सन्दिग्धताके समुद्रमें डूबने-उतराने लगा था। इनका समाधान हुए बिना न तो लोकतन्त्रकी रक्षा की जा सकती थी और न देश अराजकताकी विभीषिकासे बचाया जा सकता था। वस्तुतः, तब जनरल ने विनने संसदीय रीतिसे राष्ट्रकी सत्ता सँभालकर इन्हीं सामयिक तकाजोंको निभाया। आपने शासनसूत्र तभीतक ले रखा जबतक ये मसले हल नहीं हो गये।

१९६० की ६ फरवरीको होनेवाले आम निर्वाचनसे जब यह सिद्ध हो गया कि देशका जो जनमत ऊ नुके नेतृत्वका समर्थन कर रहा था वह इतर किसी नेताको प्राप्त नहीं था, तब आपने राष्ट्रकी शासनसत्ता पुनः ऊ नुको ही वापस की। ऐसा करनेके पीछे कोई विडम्बना तो दीखती नहीं, यथार्थता यह है कि आपने देशका कोना-कोना अराजकतामय होनेसे बचाया; अपनेमें शक्तिलिप्साकी गन्धतक न आने दी और जनतान्त्रिक नियमोंके पालनका पूरा ध्यान रखा। आपने संसदीय रीतिसे सुपुर्द किये जानेपर ही शासन-भार अंगीकार किया था और तदनुरूप ही वापस भी किया। उन दिनों २८ अक्तूबर १९५८ से ८ अप्रैल, १९६० तक जिस ने विन सरकारने बर्माका प्रशासन सँभाला उसे यदि सैन्यतन्त्र कहा जा सकता है तो केवल इसी अर्थमें कि स्वयं जनरल ने विन एक सेनानी हैं। यथार्थतः, वह लोकतन्त्र ही था। परन्तु वर्तमान अवस्था उससे बिलकुल परे है। सन् '६२ में ने विनने ऊ नुसे सत्ता छीन ली है और यह वास्तविक सैन्यतन्त्र है। स्वयं सत्ताधीश लोगोंने वर्तमान प्रशासकीय तन्त्रका नाम 'क्रान्तिकारी परिषद्' (रिवलुशनरी कौंसिल)

रखा है। अभी तो विवेच्य यह है कि 'क्योंकर नुको ऐसी असफलताके दिन देखने पड़े तथा ने विनने यह कदम उठानेमें कहाँतक औचित्यका निर्वाह किया है'।

१९६० के आम निर्वाचनमें ऊ नुको अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके मुकाबले असाधारण विजय तो मिल गयी थी किन्तु आगे चलकर उन्हें जैसी परिस्थितियोंका सामना करना पड़ा वे पहलेसे भी बदतर थीं। ऊ बा स्वे और ऊ चौ ऍइ जैसे कुशल सहयोगियोंसे तो आप हाथ धो ही बैठे थे, उनके प्रतिद्वन्द्वात्मक कार्योंका भी उन्हें सामना करना पड़ा। चुनाव अभियानके दौरानमें आपने जनतासे अनेक और बड़े-बड़े वादे कर दिये थे जिनकी पूर्ति-निमित्त माँगोंकी आँधियाँ चलने लगीं। सर्वप्रथम माँग बौद्ध-भिक्षुओंकी ओरसे बौद्ध धर्मको राजधर्मके स्थानपर प्रतिष्ठापित करनेकी शुरू हुई। इसके लिए ऊ नु अनेक बार वचनबद्ध होते आये थे और अब भी उसकी पूर्तिका विश्वास दिलानेसे नहीं चूकते; तो भी, भिक्षुगण नित नये अभियानमें रत रहते। इन अभियानोंके कारण कभी-कभी तो दंगे हो जानेकी आशंका पैदा हो जाती। भिक्षुओंके साथ सख्ती तो बरती नहीं जा सकती थी लेकिन उपद्रवोंको रोकनेके लिए प्रशासकीय शक्तियोंका ध्यान हमेशा ही उस ओर खिंचा रहता था। वे अपना वास्तविक दायित्व निभानेकी चिन्तामें न पड़कर प्रदर्शनोंको ही सँभालने तथा स्थिति और विस्फोटक बननेसे बचानेकी चिन्तामें रहते थे।

बर्माका विधान लोकतान्त्रिक है जिसमें यहाँ बसनेवाले हर नागरिकके हितोंकी रक्षाकी व्यवस्था है। जबतक देशव्यापी जनमतका संग्रह न कर लिया जाता, बुद्धधर्मको राजधर्मका स्थान देना सम्भव नहीं था। अतएव बर्माके भूतपूर्व राष्ट्रपति डाक्टर बा ऊकी अध्यक्षतामें एक परामर्शदाता-आयोगका संघटन

किया गया जिसके सदस्योंने सम्पूर्ण देशका भ्रमण करके मतसंग्रह किया; और जब उसे यह ज्ञात हो गया कि देशका ८० प्रतिशतसे अधिक जनमत बुद्धधर्मको राजधर्म बनानेके पक्षमें है तो उसने इस निष्कर्षको नु सरकारके समक्ष रखकर ऐसी स्थितिका सर्जन किया कि वे दृढ़ताके साथ इसपर विचार करनेके लिए बाध्य हो गये।

जिन दिनों 'बा ऊ-आयोग' इस जाँचमें लगा हुआ था और भिक्षुगण माँगकी पूर्तिके निमित्त प्रदर्शनोंपर तुले हुए थे, उन दिनों बर्मा निवासी, हिन्दुओंको छोड़, अन्य सभी अबौद्ध जन बुद्धधर्मको राजधर्म बनानेके विरोधमें नारे बुलन्द कर रहे थे जिससे स्थिति विषम बनती जा रही थी।

चुनाव अभियानके दौरानमें ऊ नुने देशके आदिवासी अल्पसंख्यकोंसे भी अनेक प्रकारके वादे कर दिये थे। ये वादे विशेष विघ्नकारी सिद्ध होने लगे। अराकानी और मुँ पृथक् राज्योंकी माँगोंपर तुल गये। बागी कयिनोंने तो बगावत चालू रखी ही, जो सरकारके साथ थे उनमेंसे भी बहुसंख्यक स्वतन्त्र राज्यकी माँगपर अड़ गये। शां नेताओंने ऐसा रुख अपनाया जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उन्होंने बर्माको एक ऐसा संघ बनानेकी माँग प्रस्तुत की जिसके अन्तर्गत सभी राज्योंको समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त रहें। वे खास बर्माकी प्रभुता देशके अन्य राज्योंपर रहनेका विरोध करने लगे। उनकी इस माँगका प्रबल समर्थन अन्य राज्योंके नेताओंने भी प्रारम्भ कर दिया और इसकी मान्यताप्राप्तिके निमित्त संयुक्त आवाज बुलन्द करनेके लिए दक्षिणी शां राज्यके मुख्य नगर टौंजीमें ८ जुलाई, १९६१ से एक सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। यह एक सप्ताहतक चलता रहा। कछिन्-राज्यके नेता सामा डुआ सिन्नानांगने अपने साथियों समेत संघीय (फेडरलिज्म) माँगका घोर विरोध किया

तो भी सम्मेलनने माँगके पक्षमें प्रस्ताव पास कर लिया और नु सरकारसे इसकी मान्यता दिलानेके लिए एक समितिका भी संघटन कर डाला।

शां नेताओंसे कुछ कम क्षुब्ध शां जनता नहीं थी। उसके बहुसंख्यक जन अरसेसे सरकारके विरोधमें विद्रोह कर रहे थे। इसी मध्य यह समाचार जोरोंसे फैलने लग गया कि कतिपय शां नेता दक्षिण-पूर्व एशिया सुरक्षा सन्धि (सीटो) के बंकाक स्थित प्रतिनिधिसे यह पत्र-व्यवहार कर रहे हैं कि यदि उनकी संघीय माँग स्वीकार कर ली गयी तो वे 'सीटो' के सदस्य बन जायेंगे और तदर्थ उन्हें ऐसी सहायता मिलती रहनी चाहिये कि वे बर्मा संघके विरोधमें तबतक क्रान्ति चलाते रह सकें, जबतक सरकार उनकी माँग स्वीकार करनेके लिए विवश न हो जाय। इस तरह शां माँग धीरे-धीरे इतनी उग्र बन गयी कि उसने सबको बेचैन कर दिया। टौंजी सम्मेलनने जिस समितिका संघटन किया था वह सरकारसे अपनी माँग निरन्तर कर रही थी। शां नेताओंके प्रति इस अभियोगकी चर्चा होनेसे कि वे 'सीटो' शक्तियोंसे अवैधानिक तौरपर सहायता प्राप्त करनेके लिए पत्र-व्यवहार कर रहे हैं, वे तो परेशान थे ही, बर्मा सरकार भी तत्सम्बन्धी तथ्योंके शोधमें लगी रहनेके कारण कुछ कम व्यग्र न थी। बागी शां सशस्त्र क्रान्ति चला रहे थे जिससे देशकी शान्तिको भारी आघात पहुँच रहा था।

संसद्का जो अधिवेशन १९६१ के अगस्त मासमें हुआ उसमें बौद्धधर्मको राजधर्मके स्थानपर प्रतिष्ठापित करनेका विधेयक स्वीकार करके नु-सरकारने बौद्ध-भिक्षुओंको जहाँ सन्तुष्ट किया उसी अधिवेशनमें एक और विधेयक पास कर उन्हें कुपित करनेका भी कारण पैदा कर दिया।

उस विधेयकके अनुसार संघके अन्तर्गत निवास करनेवाले

सभी धर्मावलम्बियोंको अपने-अपने धर्मके प्रचार-कार्यके लिए समान रूपसे छूट थी। अराकानको पृथक् राज्यकी मान्यता प्रदान करनेका विधेयक स्वीकार कर लिया और मुँ राज्यविषयक जाँचके लिए एक आयोग संघटित हो गया। 'संघीय' माँगपर विचार स्थगित कर दिया जाना शां नेताओंको ठीक नहीं लगा। अधिवेशन समाप्त हो जानेके बाद उन्होंने आन्दोलनपूर्ण गतिसे शुरू कर दिया। तथा अल्पकालमें ही ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करनेमें समर्थ हुए कि १९६२ के फरवरी मासमें प्रारम्भ होनेवाले संसदीय अधिवेशनके कार्यक्रममें 'संघीय' माँग भी विचारार्थ रखनेके लिए नु सरकार विवश हो गयी।

महान् परिवर्तन—साधारण निर्वाचनके बाद ऊ नुने १९६० के अप्रैल मासमें पुनः शासनभार सँभाला था और अब दो वर्ष हो चले थे किन्तु उनकी सरकार किसी भी क्षेत्रमें उल्लेखनीय विकास करनेमें असफल रही। जो माँगें सामने आतीं उनपर विचार करना और माँग करनेवालोंको तुष्ट करना भर उसका काम रहा। इस असफलताके दायी दोनों ही थे। माँग करनेवाले और सरकार भी। अरसेसे यह स्थिति खटकती आ रही थी परन्तु किसीका क्या वश चल सकता था। संघीय माँगकी चर्चाने देशभक्त बर्मियों, विशेषतया जनरल ने विन और उनके साथियों-को, जिन्होंने आम निर्वाचन करा शासनभार नुको सौंपा था, विचलित कर दिया और १ मार्च १९६२ की रात्रिको उन्होंने नु तथा उनके मन्त्रिमण्डलके मन्त्रियों, राष्ट्रपति और उच्चतम न्यायालयके न्यायपतिको भी गिरफ्तारकर शासनसूत्र अपने हाथमें ले लिया।

यह घटना जादूकी भाँति घटी। रात्रिके समय कहीं-कहीं-से गोलियोंकी आवाजें जरूर सुनाई दीं परन्तु उनसे यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता था कि ऐसे बड़े राजनीतिक विप्लवके

कारण ये गोलियाँ चल रहीं थीं। विगत २० वर्षोंसे गोलियोंकी सनसनाहट और आवाजें सुनते-सुनते यहाँके निवासी कुछ इतने अभ्यस्त-से बन गये हैं कि गोलियोंका चलना वे कोई असाधारण बात नहीं मानते। दो मार्चके प्रातःकालीन समाचारपत्रोंमें भी तत्सम्बन्धी कोई समाचार प्रकाशित नहीं हुआ।

इतना महान् परिवर्तन और ऐसे ढंगसे ? इस सम्बन्धमें पता लगानेपर ज्ञात हुआ कि सैनिक टुकड़ियोंने राष्ट्रपति और मन्त्रियोंके निवासस्थानोंको घेरनेसे पहले तार और टेलीफोनके कार्यालयों और हवाई अड्डा तथा रेलवे स्टेशनोंको घेर लिया था ताकि खबरें तबतक बाहर न हो पावें जबतक शासनके सभी केन्द्रीय विभागोंपर सेनाका पूरी तरह अधिकार न हो जाय। प्रातःकाल ८ बजते-बजते ये सारी कारवाइयाँ समाप्त हो गयीं और ने विनने आकाशवाणीसे इसकी घोषणा कर दी।

१ मार्चकी रात्रिको भूतपूर्व राष्ट्रपति सॉ श्वे ताइकके निवासस्थानपर अतीव दर्दनाक घटना घटी। आपके १६ वर्षीय पुत्रको प्राणोंसे हाथ धोने पड़े। जब सेनाके जवानोंने उनका बँगला घेरा तो रक्षकोंने उनका मुकाबिला किया जिसके फलस्वरूप गोलियाँ चलीं और उनका तरुण पुत्र अकाल मृत्युको प्राप्त हो गया। इसी अल्पवयमें वह शानीपक्षीय युवकोंका नेतृत्व करने लग गया था।

राष्ट्रपति ऊ विन मांग स्वयं मोटर चलाकर मेम्योसे रंगून १ मार्चको ही पहुँचे थे और उसके बाद ही रातको यह घटना घटी। उनके गिरफ्तार किये जानेके समय कोई संघर्ष नहीं हुआ। अन्यान्य मन्त्रियोंकी गिरफ्तारी भी बिना किसी उल्लेख्य संघर्षके हो गयी।

ये कारवाइयाँ रातके ३ बजेके आस-पास शुरू हुईं और प्रातःकालतक इस प्रकार सम्पन्न हो गयीं कि जहाँ और जिनपर

बीती उनके अथवा उनके पड़ोसियोंके अतिरिक्त अन्य लोगोंको यह परिवर्तन अज्ञात रहा।

क्रान्तिकारी परिषद्का संघटन—शासन सँभालनेके बाद जनरल ने विनने जिस क्रान्तिकारी परिषद्का संघटन किया है उसके अध्यक्ष वे स्वयं हैं और शेष १६ सदस्य हैं जिनके नाम निम्नलिखित हैं—

ब्रिगेडियर आंगजी, कमोडोर तां पे, ब्रिगेडियर टी क्लिफ्ट, ब्रिगेडियर टिन एई, ब्रिगेडियर सा यू, ब्रिगेडियर सेंइ विन, कर्नल तांग ची, कर्नल ची मांग, कर्नल मांग श्वे, कर्नल तान सेइ, कर्नल चौ सॉ, कर्नल सॉ मिं, कर्नल चिम्याटेग, कर्नल खि यों, कर्नल ल्हा हां और कर्नल टा यू साइंग।

सुरक्षा, अर्थ, कर और विधिविषयक विभागोंको ने विनने स्वयं अपने अधीन रखा है, शेष विभाग अन्यान्य सैनिक अधिकारियोंके हाथमें हैं।

१२ मार्चको एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर घोषणा की गयी कि भविष्यमें जो भी सरकारी आदेश परिषद्की ओरसे जारी किये जायँगे उनमें 'क्रान्ति परिषद्के अध्यक्षकी ओरसे' लिखनेके बदले 'संघके राष्ट्रपतिकी ओरसे' लिखा जायगा। इस आदेशको २ मार्च, १९६२ से लागू समझना चाहिये और तबतक लागू रहेगा जबतक इस सम्बन्धमें दूसरी विज्ञप्ति न प्रकाशित की जायगी।

विज्ञप्तिमें यह भी कहा गया है कि नियम एवं कानूनविषयक सभी सरकारी आदेशोंको 'क्रान्ति परिषद्'के अध्यक्ष या यों कहिये राष्ट्रपतिकी ओरसे जारी बताया जाना चाहिये। क्रान्ति परिषद्के अध्यक्षके स्थानपर 'संघके राष्ट्रपति'के नामका उल्लेख करनेका आदेश विशेष तौरपर यह संकेत करता है कि सेना विभाग वैधानिक पक्षकी पुष्टिकी ओर तत्पर है।

क्रान्ति परिषद्के कार्य—१५ मार्चको जनरल ने विनने यहाँके घुड़दौड़ खेलसे सम्बन्धित प्रतिनिधियोंको बुलाकर बताया कि आगामी वर्षसे इस खेलको बन्द कर दिया जायगा। आपने कहा कि इससे आम जनताको बहुत हानि उठानी पड़ रही है। इसे इसी वर्ष बन्द कर दिया जाता किन्तु अबतक जिनकी जीविका इससे चलती आ रही है वे बेकार हो जायँगे इसीलिए ऐसा नहीं किया जा रहा रहा है। वर्षभरमें उन्हें जीविकोपार्जनके साधन ढूँढ़ लेने चाहिये।

सामान्य जनताको इससे जो हानि उठानी पड़ती है उससे कहीं अधिक घातक क्षति शां राज्योंकी जनताको वहाँके जुएके खेलसे उठानी पड़ती आ रही है। वहाँके जुएके खेलकी आमदनी जागीरदारोंके जेबखर्चके लिए जाती है। इसे रोकनेके लिए संसद्में अनेक बार विधेयक प्रस्तुत हुए, किन्तु शां जागीरदारोंने यह कहकर विधेयक पारित नहीं होने दिया कि जब खास रंगूनमें घुड़दौड़ जैसा बड़ा जुआ चलने दिया जा रहा है तो शां राज्यके जुएको क्यों बन्द किया जाता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि रंगूनके जुएको बन्द करनेके साथ ही ने विन शां प्रदेशके जूएको भी बन्द करने जा रहे हैं।

१५ मार्चको सैनिक सरकारके अधिकारियोंने भूतपूर्व राष्ट्रपति ऊ विन मांग, प्रधान मन्त्री नु और चार मन्त्रियोंको उनके परिवारोंके सदस्योंसे मुलाकात करनेके सम्बन्धमें सुविधाएँ दीं। सभी अपने परिवारके लोगोंसे दिनके ११ से १२ बजेके बीच मिले और बातचीतके लिए प्रत्येकको १ घण्टा समय दिया गया था। ये मुलाकातें मिंगलाडोनके सैनिक केन्द्रभवनमें हुई।

राष्ट्रपतिने अपनी धर्मपत्नीको बताया कि वे शाकाहारपर रह रहे थे और व्रतके दिन उपवास भी रखते थे। उन्हें और डाक्टर नुको एक ही बड़े कक्षमें रखा गया था और पढ़नेके

लिए बौद्धग्रन्थ दे दिये गये हैं। डाक्टर नुसे मिलने उनके सलाहकार ऊ ओं और श्रीमती नु गयी थीं। आपने बताया कि उनके प्रधान मन्त्री रहनेके समय उनके ए० डी० सी० का काम सँभालनेवाले बोजी ल्हा मिं उनकी देखरेखके लिए थे, जो आवश्यकताओंकी पूर्तिपर ध्यान देते हैं।

विदेशियों सम्बन्धी नीति—बर्माकी वर्तमान सरकारकी विदेशियोंके प्रति क्या विचारधारा है, इस सम्बन्धमें प्रथम विज्ञप्ति गत ३ अप्रैलको प्रकाशित हुई। विज्ञप्तिमें कहा गया है कि सरकार शीघ्र ही उन विदेशियोंसे, जिन्होंने अभीतक एक-न-एक अन्य देशसे सम्बन्ध कायम रखा है, कहेगी कि 'वे यह घोषणा करें कि वे बर्मा संघके प्रति निष्ठावान् हैं अथवा अपने उस मूल देशके प्रति जहाँसे आये हैं।'

इस समय बर्मामें हजारों ऐसे विदेशी, विशेषतया भारतीय और चीनी हैं, जिनके पास फारेनर्स रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट हैं, किन्तु स्वदेश जानेके पासपोर्ट उनके पास नहीं हैं। उनमेंसे बहुतसे ऐसे भी हैं जो युद्धके पहलेसे बर्मामें रहते आये हैं। उनके पास पासपोर्ट न होनेके कारण जब उनमेंसे किसीको बर्मा देशसे निकालना पड़ता है तो बर्मा सरकारको कठिनाई होती है। यह एक ऐसा प्रश्न है जो बर्मा सरकारके सामने उपस्थित होता ही रहता है। अतएव बर्मा सरकारने इसे हल करनेके लिए यह निश्चय किया है कि 'जो विदेशी बर्मी नागरिकता पानेके अधिकारी हैं उन्हें तो नागरिकता दे दी जाय और जो इसके हकदार नहीं हैं उन्हें पासपोर्ट लेनेके लिए विवश किया जाय।'

बर्माकी आन्तरिक व्यवस्थाके सम्बन्धमें भी वर्तमान सरकारने कुछ नये और बहुत ही जबर्दस्त कदम उठाये हैं। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय १ अप्रैलसे समाप्त कर दिये गये और उनकी जगह 'यूनियन आव बर्मा कोर्ट आव फाइनल अपील'

की स्थापना की गयी है। इस सम्बन्धकी घोषणा ३० मार्चको क्रान्ति परिषद्‌की ओरसे जारी किये गये आदेश संख्या २५ के द्वारा की गयी। इसमें ६ न्यायपति होंगे जिनके नाम हैं—चीफ जस्टिस ऊ बो जी, ऊ सा मांग, ऊ म्या तेंइ, ऊ ठुन टिन, और चौजा ऊ। बर्मामें मामलोंकी अन्तिम अपीलका यही न्यायालय होगा और इसे वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो अधिकार हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्टके थे। सम्प्रति जो मामले सुप्रीम और हाईकोर्टके समक्ष विचाराधीन थे वे अबसे इस न्यायालयके सामने माने जायँगे।

इसके साथ ही २६ नम्बरका आदेश जारी कर बताया गया है कि सुप्रीम और हाईकोर्टके न्यायपति ऊ मिं तेंइ (चीफ जस्टिस), ऊ चान ठुन, ऊ आंग तां ज्यौ, ऊ यां आंग, ऊ तांग सेंइ, ऊ शू मांग, ऊ बा यूं, ऊ चौ ठुन और ऊ मिं टू की ३१ मार्च, १९६२ से सेवा समाप्त कर दी गयी।

देशकी सुव्यवस्था और शान्तिकी दृष्टिसे, वर्तमान सरकारने जिस नीतिकी घोषणा की है वह निम्नलिखित है—बर्मामें आज भी बागियोंका विद्रोह समाप्त नहीं हुआ है। उसके दमनके लिए नया एवं उपयुक्त कदम उठाना परमावश्यक था, अतएव ने विन सरकारने खास बर्मामें क्षेत्रीय सुरक्षा-परिषदोंका संघटन करनेके साथ ही राज्योंमें भी इसके संघटनकी योजना बनायी है।

राज्योंमें संघटित परिषदोंका दायित्व खास बर्माकी परिषदोंकी अपेक्षा गुरुतर है क्योंकि वहाँकी आम जनतामें बर्मियोंके प्रति विरोधी रुख है। वहाँ जो सेना भेजी जा रही है वह भी प्रधानतया बर्मी जवानों द्वारा ही संघटित है। विशेषतया शानियोंकी मनोवृत्तियाँ तो बर्मियोंके बिलकुल खिलाफ हैं। सम्प्रति संघटित परिषद्‌के सदस्य वे ही शानी हैं जो एक ओर तो नु सरकारके विरोधी रहे हैं और दूसरे शां राज्यको खास बर्मासे पृथक्

करनेका विरोध भी करते रहे हैं।

बर्माकी सुन्दरियाँ विश्व-सुन्दरी प्रतियोगितामें भाग लेने प्रति वर्ष जा रही हैं। उक्त प्रतियोगितामें भाग लेनेके लिए विदेश जानेसे पूर्व उनकी यहाँ भी प्रतियोगिताएँ होती रही हैं। लेकिन वर्तमान सरकारने इस प्रतियोगिताको बन्द कर दिया है। उसका कथन है कि जिस उद्देश्यको लेकर यह प्रतियोगिता की जा रही थी उसकी पूर्तिके बदले उलटा परिणाम निकल रहा है। इससे भ्रष्टाचारोंमें वृद्धि हो रही है और अपव्यय ऊपरसे होता है। शारीरिक विकास एवं गठनकी ओर ध्यान देनेके बदले प्रतियोगी और प्रबन्धक केवल मनोरंजन करते हैं।

इसी प्रकार संगीत और नृत्यकी प्रतियोगिताएँ भी बन्द कर दी गयी हैं। इनके कारण राष्ट्रको जो आर्थिक क्षति पहुँचती थी उसे रोकना आवश्यक था। यह उल्लेख्य है कि बर्माकी जनता पर्याप्त आमोदप्रिय है और इस निमित्त वह नृत्य और संगीतके पीछे अनावश्यक धन व्यय करनेपर भी तुली रहती है।

सन् १९५८ में देशके शासनकी बागडोर हाथमें लेनेके समय जनरल ने विनकी सरकारने एक आय-व्ययक संरक्षक समितिका संघटन किया था जिसका ऊ नु सरकारने विघटन कर दिया। अब उक्त समितिका पुनस्संघटन कर दिया गया है और साथ ही उपमन्त्रिमण्डलीय समिति भी बना दी गयी है, जो उस समितिके साथ सहयोग कर यथोचित सम्मति दे सके। जिन मन्त्रियोंका इससे सम्बन्ध है उन्हें भी निर्देश कर दिया गया है कि वे विविध संघों और कारपोरेशनके पुनर्गठनकी ओर पुनः ध्यान दें। उस मन्त्रिमण्डलीय समितिके सदस्य जनरल ने विन, ब्रिगेडियर आंगजी, ब्रिगेडियर टिन पे, और ऊ ती हां हैं। यह देशकी आर्थिक व्यवस्था किस प्रकार सुधारी जा सकती है, इसपर विचार करने तथा आवश्यक कदम उठानेके लिए बनायी गयी है। सेना द्वारा सत्ता

हस्तगत करनेके जो कारण सैनिक अधिकारी बताते हैं उनमें एक यह भी है कि देशकी आर्थिक अवस्थाको सुधारनेमें नु सरकार असफल रही है।

सन् १९५८-६० में जब निर्वाहक सरकारने शासनसत्ता अपने हाथमें सँभाली थी तब उसने दूकानोंके सामने कीमतोंकी तख्ती लटकानेकी प्रथा चलवायी थी। जब ऊ नुकी सरकारने राजकी बागडोर सँभाली तो यह प्रथा समाप्त हो गयी। इस बार दूकानदारोंको सेनाने इस तरहका कोई हुक्म नहीं दिया है, लेकिन उन्होंने अपने आप ही अपनी दूकानोंकी खिड़कियोंके शीशेपर चीजोंकी उचित कीमतकी सूचियाँ लगा दी हैं। सैनिक शासनसे केवल दो दिन पहले चीजोंके जो दाम चढ़े हुए थे; कारखानेदारों और दूकानदारोंने आपसमें खुद ही सलाह करके उन्हें गिरा दिये।

जनरल ने विनने सत्ता सँभालते ही गोमांसकी बिक्रीपर लगा प्रतिबन्ध हटा दिया और अब यहाँ प्रतिदिन प्रायः २०० गायें मारी जा रही हैं। जिस दिन यह प्रतिबन्ध हटाया गया था उस दिन ३०० के करीब गायें काटी गयी थीं और ५० हजार पौंड गोमांस उसी दिन बिका था। बर्मी व्रतोंके छुट्टीके दिन भी शराबखाने खुले रहनेकी इजाजत दे दी गयी है।

चीनसे जो मदद बर्माको मिल रही थी उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मार्च मासमें अनेक चीनी विशेषज्ञ रंगून पहुँचे। उन्होंने यहाँ ४० करोड़ च्या (रुपये) ऋणसे शुरू की जानेवाली परियोजनाओंके भावी विवरणपर विचार किया। राज्यका तख्ता उलटनेसे ठीक पहले जो कुछ मन्त्रिगण मास्को गये थे और उन्होंने वहाँ राष्ट्रीय रंगमंच परियोजनाका समझौता किया था उसे अपव्यय कहकर सेनाने रद कर दिया है।

बर्माकी सेनाने अपनेको सदैव आंग सॉका उत्तराधिकारी बताया है। उसने यह घोषणा कर दी है कि देशकी तटस्थतावादी

विदेश नीति और समाजवादी स्वराष्ट्र नीति यथापूर्व ही रहेगी।

ऊ नुने देशमें जो अर्ध-धार्मिक और मध्ययुगीन रूढ़ियोंको प्रशासनमें स्थान दिया था उन्हें हटाकर बर्माकी सैनिक हुकूमत अपने देशको एक आधुनिक समाजवादी राज्य बनानेके लिए सचेष्ट है।

बौद्धमतको राजधर्म बनानेका फौजने सदा ही विरोध किया था और उसने अपनी यह राय ऊ नुको स्पष्ट रूपसे बता भी दी थी। इस बार शासनसूत्र हाथमें लेते ही फौजने सबसे पहला काम किया है बौद्ध राज्यधर्म विवादसे पैदा हो रही छोटी-मोटी अनर्गल बातोंकी समाप्ति।

बर्मियोंकी ज्योतिषियों और जादूगरोंमें बहुत आस्था है। ऊ नुके भी आठ ज्योतिषी परामर्शदाता थे। उनमेंसे एकका दावा है कि उसने ऊ नुको बता दिया था कि अष्टग्रहोंके कारण फरवरीके प्रारम्भमें फौजी शासन उसका तख्ता उलट देगा।

रंगूनकी बसोंमें यात्रा करना अत्यन्त कष्टदायक होता जा रहा है। बसोंके मालिक और ड्राइवर भाँति-भाँतिके अनियन्त्रित कार्य करते आ रहे थे इस कार्यको सुव्यवस्थित करनेके लिए पुलिस कर्मचारियोंने सख्त कदम उठानेका निश्चय किया है। यहाँ बस दुर्घटनाएँ प्रायः होती ही रहती थीं, अतएव उन दुर्घटनाओंको रोकनेके भी सब प्रकारके उपाय किये गये हैं।

विगत विश्व-युद्धमें रंगूनका बन्दरगाह ध्वस्त हो गया था जो अबतक पुनर्निर्मित नहीं हो पाया। इस कार्यके लिए आयोग संघटित किया गया है।

सामानोंके मूल्यमें अभी विशेष कमी नहीं दिखाई दे रही है। सिगरेटकी कीमत कुछ कम हुई है। गत २० मार्चको पुलिस और सेनाकी संयुक्त टुकड़ीने रंगूनकी बहुसंख्यक दूकानोंका निरीक्षण किया और अनुमान है कि ऐसे निरीक्षण भविष्यमें भी

होते रहेंगे जिससे कालाबाजार व्यापार रोका जा सके।

नयी आर्थिक नीति—ने विनकी सरकारने जिस नयी आर्थिक नीतिकी घोषणा की है उसपर विचार-विमर्श करनेके लिए रंगून-स्थित १७ देशोंके राजदूतोंने २३ मार्चको मन्त्रियोंसे भेंट की। इनमें भारत, पाकिस्तान, ब्रिटेन, चीन, रूस, पोलैण्ड, इसरायल, जापान, हिन्देशिया, थाइलैण्ड, अमेरिका, संयुक्त अरब गणराज्य, चेकोस्लाविया, हालैण्ड, लंका, फ्रांस और यूगोस्लावियाके राजदूत थे।

बर्माके आर्थिक विकासके नामपर जो विदेशी औद्योगिक संस्थान यहाँ चल रहे थे उनमेंसे कुछके विघटन कर देनेकी घोषणा 'क्रान्तिकारी परिषद्'की ओरसे कर दी गयी है। इनमें अमेरिकी 'फोर्ड फाउण्डेशन' और एशियाई 'एशिया-फाउण्डेशन'-के नाम विशेष रूपसे उल्लेख्य हैं। बर्मामें जहाँ भी विदेशी मिशनरियाँ काम कर रही थीं उनके कार्यकलापोंकी भी नये सिरेसे जाँच करनेकी घोषणा परिषद्ने की; जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश 'कॉन्सुलेट'ने अपनी अनेक पाठशालाएँ बन्द कर दी हैं। मिशनरियोंके बहुक्षेत्रीय कार्योंमेंसे एक यह भी है कि उनके माध्यमसे यहाँ अनेक विद्यालय या तो संचालित हैं अथवा सहायता पा रहे हैं। आकाशवाणी, रंगूनको इनमेंसे ही अंग्रेजी भाषाके प्रसारक मिलते रहे हैं तथा विद्यालयोंको सुयोग्य अंग्रेजी शिक्षक भी।

महत्त्वपूर्ण नीति-घोषणा—ने विनने सबसे महत्त्वपूर्ण २८ सूत्रीय नीति-घोषणा ३० अप्रैलको की। इसमें आपने बताया कि बर्मा संघकी वर्तमान क्रान्तिकारी परिषद् इसमें विश्वास रखती कि जबतक देशकी ऐसी आर्थिक नीति बनी रहेगी जिसमें एक जन दूसरेके रक्त-शोषणके विनियोजन द्वारा जीता रहेगा, तबतक कोई व्यक्ति सामाजिक बुराइयोंका शिकार होनेसे नहीं बचेगा। ऐसा

तभी सम्भव हो सकता है जब देशकी आर्थिक व्यवस्था ऐसे समाजवादी ढाँचेमें ढाली जाय जिसके अन्तर्गत प्रत्येक जाति और धर्मके लोग सामाजिक दोषोंके शिकार होनेसे बचकर शारीरिक और मानसिक स्वस्थता प्राप्त करें। अतएव, इस प्रतीतिमें आस्था रखकर क्रान्तिकारी परिषद्‌ने बर्मा संघकी जनताके कन्धेके साथ कन्धा मिलाकर चलते हुए समाजवादकी स्थापनाकी लक्ष्य-सिद्धिकी ओर अग्रसर होनेका निश्चय किया है।

क्रान्तिकारी परिषद्‌के अध्यक्षने कहा कि कार्यक्रमको प्रस्तुत करने तथा उसे अमलमें लानेमें परिषद् उन सभी स्थितियोंका अध्ययन करेगी जो बर्माकी स्थितिके साथ विशेष रूपसे सम्बद्ध हैं और उन्हें ध्यानमें रखकर ही विकासके साधनोंको निश्चित करेगी। परिषद् विगत सरकारकी असफलताके कारणोंका अध्ययन करेगी और वे गलतियाँ करनेसे बचेगी जो उसके असफल होनेका कारण बनी हैं। राष्ट्रके हितार्थ जो भी देशी या विदेशी साधन परिषद्‌को उपयुक्त और सुलभ होंगे उनका वह शोध एवं उपयोग करेगी। समाजवादी आर्थिक व्यवस्थाकी परिभाषा प्रस्तुत करते हुए ने विनने कहा कि 'सामूहिक स्वामित्व और सर्वजनहिताय' कार्यमें सबका यथाशक्ति योगदान होना चाहिये। तदनुसार प्राप्त लाभको सबमें इस भाँति वितरित करना चाहिये कि सबकी आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाय और सभी शान्तिपूर्वक उन्नत आर्थिक एवं नैतिक जीवन वितानेमें समर्थ हो सकें, यही इस व्यवस्थाके मूलसिद्धान्त हैं। इसलिए समाजवादी अर्थ-व्यवस्था ऐसे किसी भी नियमकी विरोधी है जो एक मनुष्य द्वारा दूसरेके शोषणका साधन बने। यह किसी भी समुदाय, वर्ग, जाति, धर्म या संस्थाविशेषके जनोंकी संकीर्ण स्वार्थ-सिद्धि नहीं होने देना चाहती बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्रकी भौतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिकी योजना

सफल देखना चाहती है ।

आपने कहा कि समाजवादी योजनाको सफल और सक्रिय रूप देनेके लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रके कृषि और औद्योगिक उत्पादनों, परिवहन और यातायातके साधनों तथा विदेशी व्यापारका राष्ट्रीयकरण किया जाय। इस योजनाको सफल बनानेके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने योग्यतानुसार कार्य करे और इस प्रकार जो उपार्जन हो उसका वितरण श्रमदानके अनुपातसे सबमें समानरूपसे हो ।

बर्माकी सामुदायिक स्थितिपर प्रकाश डालते हुए ने विनने कहा कि यहाँ समानत्वकी स्थापना करना असम्भवप्राय काम है क्योंकि शारीरिक और बौद्धिक दृष्टिसे लोगोंमें काफी वैषम्य है, तो भी, यह चेष्टा की जायगी कि इस वैषम्यके परिणामस्वरूप आविर्भूत व्यवधानकी पूर्ति कर ली जाय ।

इस नीतिघोषणाके दूसरे ही दिन राजनीतिज्ञों और संस्थाओंकी प्रतिक्रियाएँ प्रारम्भ हो गयीं। बर्मी बयोवृद्ध राजनीतिज्ञ ऊ बा पेने कहा कि यह नीति सर्वाधिकारवादी और लोकतन्त्रसे बहुत दूर है। विगत विश्व-युद्धकालीन अधिपति डाक्टर बा मॉने कहा कि देखना यह है कि यह नीति कहाँतक सक्रिय रूप पाती है। इस नीतिका परिपूर्ण और तत्क्षणीय समर्थन कम्युनिस्ट परायण दल 'नफ' (संयुक्त राष्ट्रीय मोरचा) ने किया । 'फसपल' एवं 'पीडांग्सू'के नेताओंनें तो इसे कुछ कालके लिए विचाराधीन रखा और कार्यकारिणीकी बैठकोंमें बहसके बाद अभिमत दिया। अन्ततः इन दोनोंने भी नीतिके पक्षमें ही मत प्रकट किये।

सैनिक क्रान्तिके नायक ने विन—यह आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि इस सन्दर्भमें बर्मी सैन्यतन्त्रके जनक जनरल ने विनके प्रारम्भिक जीवनके कुछ तथ्य उद्घाटित कर दिये जायँ। इस

समय जनरल ने विन ५१ वर्षके हैं। आपका प्रथम नाम मांग शु मांग था। आप बाल्यकालसे ही खेल-कूदके प्रेमी थे। रंगून विश्व-विद्यालयमें आप विज्ञानके एक छात्र और फुटबालके प्रख्यात खिलाड़ी रहे।

जब यूरोपमें विगत विश्वयुद्धका श्रीगणेश हो गया और जापान इसमें नहीं कूदा था उस समय जिन वर्मी युवकोंने अंग्रेजोंकी आँख बचाकर जापान जानेका निश्चय किया था उनमें ने विन भी एक थे। सर्वप्रथम केवल ऊ मांग सॉ ही जापान गये और उनके वहाँसे फारमोसा वापस आनेपर ३० बर्मी युवकोंकी एक टोली उनके पास पहुँची। इन ३० देशभक्त युवकोंमें ने विन भी एक थे।

फारमोसामें सैनिक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद जिस बर्मी सैनिक टुकड़ीने जापानियोंके सहायतार्थ बर्मा प्रवेश किया उसके प्रधान सेना पति ऊ आंग सॉ नियुक्त किये गये थे और उपप्रधान सेनापति ने विन। वस्तुतः इसी समयसे आपका नाम ने विन पड़ा भी। ने विनका नामार्थ है—'सूर्यके समान तेजोमय'। कर्नल मिनामी नामक जापानी अधिकारीने मांग शु मांगके बदले आपका यह नामकरण किया।

युद्धकालीन सरकारकी छायामें जब जनरल आंग सॉने युद्ध-मन्त्रीका भार सँभाल लिया तो ने विनको प्रधान सेनापतिका स्थान प्रदान किया गया। कालान्तरमें जापानियोंके विरोधमें जो क्रान्ति बर्मियोंने की उसकी रूपरेखा ने विनके कार्यालयमें ही तैयार होती रही। युद्धोपरान्त आंग सॉ तो जनताके लोकप्रिय नेता बन ही गये किन्तु बर्मी सेनाके नेतृत्वका गुरुतरदायित्व तब भी ने विनपर रहा।

सन् १९४८ में जब साम्यवादी बर्मियों और पुनः बागी कयिनोंने स्वतन्त्र बर्माकी सरकारके विरोधमें क्रान्ति प्रारम्भ की तो ऊ

नुने उपप्रधानमन्त्री एवं रक्षामन्त्रीका भार सँभालनेके लिए ने विनको आमन्त्रित किया जिसको आपने सहर्ष स्वीकार किया और तबतक इन पदोंके दायित्वको सँभाल रखा जबतक आवश्यकता रही। वे ही ने विन सम्प्रति बर्मी सैन्यतन्त्रके अधिष्ठाता हैं। सम्पूर्ण विश्वकी आँखें आपपर केन्द्रित हैं।

परिशिष्ट

बर्मांके आर्थिक साधन

बर्मा इतने विपुल एवं समृद्धिदायी प्राकृतिक साधनोंसे सम्पन्न है कि यहाँ चावल जैसे खाद्य-पदार्थसे लेकर, सागौनकी लकड़ी, मिट्टीका तेल, चाँदी, सीसा और 'वुल्फ्रैम' भारी मात्रामें उत्पादित होते हैं। उत्तरी शां प्रदेशमें अवस्थित नाम्टूकी खान विश्वकी सबसे बड़ी चाँदीकी खानोंमेंसे एक है और वैसे ही मोगोककी माणिककी खदानसे ही सम्पूर्ण संसारको अधिकाधिक माणिक प्राप्त होते हैं। बर्मांके चावल और शीशमकी लकड़ीके निर्यातपर तो इन वस्तुओंके सारी दुनियाके बाजार-भाव अवलम्बित माने जाते हैं। संसारकी 'वुल्फ्रैम' और जेड (हीरा)की आवश्यकताओंकी अधिकांश पूर्ति तो बर्मासे होती ही है, ताँबा और राल (ऐम्बर) भी यहाँ होते हैं। उत्तरी-पूर्वी बर्मांके ताँमाँ नामक स्थानमें पायी जानेवाली विश्वमें एक ही हीरेकी ऐसी खान है जिसकी खुदाई अन्तर्भौमिक रीतिसे होती है।

बर्मांकी आर्थिक स्थिति कुछ ही मूल्यवान् उत्पादनों, जैसे चावल, सागौनकी लकड़ी और मिट्टीके तेलपर आश्रित रहती है। विगत द्वितीय विश्वयुद्धसे पहले बर्मांकी राष्ट्रीय आमदनी अनुमानतः ५ अरब ५० करोड़ च्या (रुपये) की थी। लेकिन युद्धकालमें राष्ट्रका प्रायः आधा वैभव विध्वंस हो गया था और उसके बाद ही विविध प्रकारके गृह-युद्धोंके प्रारम्भ हो जानेके कारण आर्थिक उत्थान इस प्रकार अवरुद्ध हो गया कि अब भी उसे युद्धपूर्वस्तरपर नहीं पहुँचाया जा सका। सम्प्रति बर्मांका

वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन ३ अरब ५० करोड़ च्या (रुपये) का अनुमानित है।

बर्माकी आर्थिक स्थिति प्रधानतया कृषिपर अवलम्बित है। यहाँकी ६६ प्रतिशत जनता कृषिकार्यमें रत रहती है और युद्ध-पूर्वकालमें देशसे निर्यात की जानेवाली वस्तुओंसे होनेवाली आयका ७५ प्रतिशत केवल चावलके निर्यातसे प्राप्त होता था। बर्माकी सम्पूर्ण कृष्य-भूमि १ करोड़ ६८ लाख ६ हजार एकड़ है जिसके लगभग ६१ प्रतिशत भाग, प्रायः १ करोड़ ४ लाख २ हजार एकड़में धानकी खेती होती है, २४ लाख १४ हजार एकड़ में तिल और मूँगफलीकी तथा ३ लाख ५० हजार एकड़में कपासकी खेती होती है।

यहाँ कृषिसे उत्पादित होनेवाले पदार्थ चावल, दाल, तिल, मूँगफली, ज्वार, गन्ना, गेहूँ, कपास, रबर और तम्बाकू हैं। कृषि द्वारा होनेवाला बर्माका राष्ट्रीय उत्पादन १ अरब ६७ करोड़ च्याका है। विगत विश्वयुद्धसे पूर्व बर्मासे ३० लाख टन चावल निर्यात किया जाता था जिसका मूल्य २४ करोड़ च्या (रुपए) होता था। बताया जाता है कि संसारमें चावलका उत्पादन करनेवाले देशोंमें बर्माका स्थान चौथा है। सम्पूर्ण देशका जितना भूभाग चावलकी खेतीके काममें आता है उसका लगभग आधा केवल डेल्टा क्षेत्रमें है। विगत विश्वयुद्धके कारण चावलकी खेतीका क्षेत्र कम होकर अब केवल १ करोड़ १ लाख ६० हजार एकड़ ही रह गया है जिससे करीब २० लाख ६ हजार टन चावलका निर्यात हो पाता है। बर्मासे सम्प्रति चावलके अतिरिक्त कृषि-सम्बन्धी अन्य मुख्य निर्यात लगभग ३ लाख टन तम्बाकू, १२ हजार टन रबर और १३ हजार टन रुईका होता है।

बर्मा सरकारने अपनी चतुर्वर्षीय योजनामें इस बातकी व्यवस्था की है कि जो वस्तुएँ अबतक पर्याप्त मात्रामें नहीं पैदा

होती हैं उनकी पैदावार बढ़ाकर अभावकी पूर्ति करने लग जाय। कृषि-उत्पादनमें भी वृद्धि करनेकी योजना निर्धारित की गयी है ताकि लगभग २५ लाख एकड़ भूमि जो परती पड़ी हुई है, जोती-बोई जाने लगी। सिंचाईके साधनों तथा खादके प्रयोगमें भी सुधार करनेकी योजना है।

बर्माके जंगल लगभग १ लाख ४५ हजार ३०० वर्गमील हैं। बर्माके कुल क्षेत्रफलके ५७ प्रतिशत भागपर ये फैले हुए हैं। इन्हीं वनोंसे सागौनकी लकड़ी निकालकर विदेश भेजी जाती है। यह संसारकी कुल आवश्यकताकी ७६ प्रतिशतकी पूर्ति करती है। अरेबियन देशोंके व्यापारी १६ वीं शतीसे ही सागौनकी लकड़ीका व्यवसाय करते आ रहे थे। १८वीं शताब्दीमें बर्मामें सागौनकी लकड़ीके व्यवसायमें वृद्धि होने लगी और इसमें उत्तरोत्तर विकास ही होता गया। सम्पूर्ण बर्मापर आधिपत्य होनेसे पूर्व जो तीन बर्मी-ब्रिटिश युद्ध हुए थे उनमेंसे तीसरे युद्धका एक कारण सागौनके कुन्दोंको निकालनेमें पैदा होनेवाला मतभेद भी था।

विगत विश्वयुद्धसे पूर्व बर्मासे २ लाख ३० हजार टन शीशमकी लकड़ीका निर्यात होता था और कुल उत्पादन ५ लाख २५ हजार टनका था। तब उसकी कीमत ३ करोड़ ३० लाख थी। संसारमें सागौनकी लकड़ीका निर्यात करनेवाले देशोंमें बर्माका प्रथम स्थान रहता आया है।

लगभग ६ लाख ९० हजार टन दूसरी मूल्यवान् लकड़ियोंका भी उत्पादन बर्मा करता है। इनमें पिकंडो, पडो, काईं और कुछ अन्य लकड़ियाँ उल्लेख्य हैं। ये घर अथवा पुल वगैरह बनानेके काम आती हैं।

जंगलोंसे लकड़ीके कुन्दे हाथियों द्वारा पहाड़ी सोतोंसे होते हुए मुख्य नदियोंतक लाये जाते हैं और वहाँसे रंगून, टांगू और

मौलमीन जैसे शहरोंमें बेड़ोंके रूपमें बहाकर लाये जाते हैं। अनुमानतः एक लाख आदमी लकड़ीके उद्योगमें काम करते हैं और ७ हजार हाथी कुन्दे घसीटनेमें।

विगत विश्वयुद्धसे पूर्व बर्मासे १ लाख ६० हजार टन विविध खनिज पदार्थ निर्यात किये जाते थे जिनके मूल्य ५ करोड़ ७० लाख होते थे किन्तु युद्ध द्वारा पहुँची क्षतिके कारण अब वह ५६६९४ टनतक ही रह गया है।

युद्धपूर्वकालमें बर्मा २७ करोड़ ५० लाख गैलन मिट्टीके तेलका उत्पादन करता था। इसकी प्राप्तिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र येनांजांऊ है। कहा जाता है कि सबसे पहले १३ वीं शताब्दीमें एक चीनी यात्रीने अपनी यात्राका वर्णन करते हुए इसकी चर्चा की थी। युद्धकालमें इस उद्योगको इतनी क्षति पहुँची कि स्वतन्त्र बर्माकी सरकार सतत प्रयत्नपर भी अभी केवल अपनी माँगोंकी पूर्ति ही कर पाती है।

स्वतन्त्र बर्माकी सरकार देशके उद्योगीकरणमें यत्नशील है। सन् १९५६-५७ में तीन मिलें स्थापित की गयी थीं जो १९५८ से काम करने लगी हैं। ये हैं तमाईंकी जूट मिल, बर्मा-औषध-निर्माण सम्बन्धी ज्योगों की मिल और ईंट तथा खपरैल तैयार करनेकी यामा की मिल। १९५७ में दो और मिलोंके निर्माण हुए। एक इंसिनकी इस्पात मिल और दूसरी तमाईंकी कताई और बुनाईकी मिल। १९५८ में तमाईंमें वस्त्रोंकी साफ-कराई और रँगाईकी मिल तथा तैयटम्योमें सीमेण्टकी मिलकी, सन् १९५८ में 'कोष कीट-पालन' योजनाको विस्तार देकर मेम्यो, मचीना, लॉयकॉ और पॉकांगमें १२ सौ एकड़ भूमिमें शहतूतके पेड़ोंके बगीचे लगाये गये हैं। सिल्कके गोले बनानेकी एक मिल मेम्योमें और कृमिकोष सुखानेकी मिलें मचीना और लॉयकॉमें बनाकर सरकारने इस कार्यको बढ़ाया है।

बर्माके शोध विभागकी ओरसे ऐसी व्यवस्था की गयी है जो युद्धके बाद प्रारम्भ की गयी मिलोंको हर भाँतिकी सहायता पहुँचा रही है। छातेके उद्योगोंको इनसे पर्याप्त सहयोग सुलभ हो रहा है।

अन्यान्य औद्योगिक आयोजनोंमें कुटीर एवं लघु उद्योग-मण्डल, औद्योगिक शोध-प्रायोजन, पिंमना, नाम्टी और जियावाडीकी चीनी मिलें, माण्डलेकी चाय मिल और रुई कातने तथा बुननेकी मिलें सम्मिलित हैं।

बर्माका मुख्य निर्यात चावलका है जो प्रतिवर्ष प्रायः ८९ करोड़ ३० लाख च्या (रुपये) का होता है, रुई ३ करोड़ २० लाखकी, दाल ५ करोड़की, रबर ३ करोड़का, कच्ची धातु और गिट्टी ४ करोड़ ६० लाखकी और लकड़ी ६ करोड़ ७० लाख च्या (रुपये) की निर्यात होती है।

बर्माके मुख्य आयात खाद्य-पदार्थोंके हैं जिनमें अन्न, शराब और खानेके तेल उल्लेख्य हैं। इनका आयात प्रायः १४ करोड़ रुपयेका प्रतिवर्ष होता है। कपड़ा १८ करोड़ ४० लाख च्या (रुपये) का, औषधि ५ करोड़ ४० लाखकी, ईंधन (जलानेका कोयला और लकड़ी) ५ करोड़ १० लाख च्या (रुपये) का, विविध प्रकारके धातु २१ करोड़ ७० लाख च्याका, मकान बनानेके सामान, मोटरके पुर्जे, बाइसिकिल तथा अन्यान्य ऐसी वस्तुएँ ३८ करोड़ ६० लाख च्याकी आयात होती हैं। विगत विश्वयुद्धके फलस्वरूप बर्माका निर्यात घट गया है। सन् १९५८ का कुल निर्यात ९२ करोड़ ८ लाख २१ हजार च्याका था और आयात ९६ करोड़ ९३ लाख ३६ हजार च्याका। इस प्रकार ४ करोड़ ८५ लाख १५ हजार च्याका व्यावसायिक टोटा रहा।

यह है बर्माके आर्थिक साधनोंकी संक्षिप्त रूपरेखा।

बर्माका संविधान

बर्माका संविधान वह पवित्र ग्रन्थ है जिसके माध्यमसे इसकी राष्ट्रीय एकता और सुव्यवस्था तथा यहाँके सभी वर्गों एवं जातियोंके लोगोंको समान स्तर प्रदान करते हुए उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक हितोंकी रक्षाके निश्चयोंको शाश्वत सिद्धान्तोंके आधारपर व्यक्त किया गया है।

संविधानके १४ परिच्छेद और २३४ धाराएँ हैं। बर्माके कौन-कौन-से राज्य ब्रिटिश सत्ताकालीन राज्यपालके शासनके अन्तर्गत थे और किस प्रकार कयिनी राज्य इससे पृथक् था उसका भी विशद विवरण इसमें सम्मिलित है।

संविधानके अन्तर्गत बर्मी भाषाको राष्ट्रभाषाका स्थान दिया गया है और बौद्ध धर्म यहाँ निवास करनेवाले बहुसंख्यक जनोंका धर्म होनेके नाते पहले तो विशेष रूपसे ही आदृत रहा किन्तु १९६१ के अगस्त मासमें होनेवाले संसदीय अधिवेशनमें संविधानमें संशोधन करके उसे राजधर्मका स्थान प्रदान कर दिया गया है।

इस देशकी केवल एक ही नागरिकता 'बर्मी' है। वैयक्तिक सम्पत्तियोंको रखने तथा व्यक्तिगत तौरपर व्यवसाय करनेकी छूट है, परन्तु व्यक्तिगत व्यवसायोंके लिए सरकारी प्रोत्साहन नहीं है। संविधानके अनुसार वैयक्तिक उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण उचित मुआवजा देकर किया जा सकता है।

बर्मी संसद्का संघटन सभी जातियोंके प्रतिनिधियों द्वारा, बालिग मताधिकारके आधारपर आम निर्वाचन करके, किया जाता है और इस प्रकार संघके अन्तर्गत बसनेवाली सभी जातियाँ राजनीतिक दृष्टिसे स्वेच्छया एक सूत्रमें बँधी हुई हैं।

संसद्‌के दो सदन हैं; निचला और ऊपरी। देशके आर्थिक ढाँचेके लिए संविधानमें समाजवादी सिद्धान्तोंके साथ ताल-मेल रखनेकी व्यवस्था है।

संविधानमें अल्पसंख्यकोंके हितोंकी रक्षाकी व्यवस्था करते हुए सरकारी प्रभुसत्ताके निमित्त जनतासे अधिकार प्राप्त करनेकी भी व्यवस्था है। अन्तराष्ट्रीय क्षेत्रमें बर्मा अपने क्षेत्रीय सम्मान और प्रभुसत्ताके अधिकारोंको अन्तरराष्ट्रीय कानून और न्यायके नियमों द्वारा कायम रखेगा, इसका भी विधान है।

संविधानमें यह भी व्यवस्था है कि बर्मा विश्वमें अपना न्यायोचित और सम्मानित स्थान प्राप्त करेगा और वह मानवमात्रके कल्याण और प्रगतिके लिए त्यागवृत्तिसे काम लेते हुए अन्तरराष्ट्रीय न्याय एवं नैतिकताके आधारपर राष्ट्रोंके बीच शान्ति और मैत्रीका सम्बन्ध स्थापित करनेमें प्रयत्नशील रहेगा।

संविधानमें केन्द्रीकरणपर विशेष बल दिया गया है। सभी राज्य बर्मा संघसे सम्बद्ध हैं और केन्द्रीकरणके माध्यमके लिए संसद् सर्वप्रमुख संस्था है जहाँसे न्यायिक तथा प्रशासकीय अधिकारोंका केन्द्रीकरण सम्पूर्ण संघके लिए होता है।

सम्पूर्ण बर्मा संघके लिए केवल एक ही विधायिका सभा संसद् है और इस राष्ट्रीय संसद्‌के लिए सारे देशमें एक ही बार आम निर्वाचन होता है।

संघके अन्तर्गत पहले केवल चार रियासतें शां, कछिन्, कया और कथिन थीं परन्तु १९६१ के अगस्त माससे अराकानको भी पृथक् राज्यकी मान्यता दे दी गयी है जिससे अब पाँच रियासतें बन गयी हैं। इन पाँचोंकी पृथक् राज्यपरिषदें हैं लेकिन खास बर्माके केन्द्रीकरणके निमित्त पृथक् परिषद् नहीं है; यद्यपि सम्पूर्ण बर्मा संघकी जो जनसंख्या है उसके ८५ प्रतिशत केवल खास बर्माके निवासी बर्मी ही हैं।

संविधानके अनुसार राज्य-परिषदोंको इन राज्योंके आर्थिक, सुरक्षा, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्यान्य समाजसेवा-विषयक कार्योंके संचालनके अधिकार दे रखे गये हैं।

संसद्के दो सदन हैं और एक राष्ट्रपति। संसद् चैम्बर आफ डिपुटीज और चैम्बर आफ नेशनलिटीजसे बना है। अन्यान्य जनतान्त्रिक नियमोंके अनुसार ही चैम्बर आफ डिपुटीजके सदस्योंका निर्वाचन भी जनसंख्याके आधारपर होता है और इसके २५० सदस्य हैं। चैम्बर आफ नेशनलिटीजमें छोटे राज्यों-को अधिक प्रधानता दी गयी है जिसके परिणामस्वरूप इसमें खास बर्मियोंसे भी अधिक संख्यामें राज्योंके ही प्रतिनिधि हैं।

चैम्बर आफ नेशनलिटीजके १२५ सदस्योंमेंसे २५ शां, १२ कछिन्, ८ छिन विशेष क्षेत्र, ३ कयाह और १५ कयिन राज्योंके प्रतिनिधि होते हैं। मध्यकी इकाई बर्माके लिए केवल ६२ जगहें हैं।

बर्माकी जनताकी सर्वप्रमुख प्रतिनिधि संस्था संसद् है जिससे अन्यान्य क्षेत्रोंके लिए अधिकार प्राप्त किये जाते हैं। यही यहाँके उच्चतम न्यायालयकी स्थापना करता है जिसे सर्वोच्च न्यायिक एवं वैधानिक अधिकार प्राप्त हैं।

कानूनी दृष्टिसे राष्ट्रपति बर्मी सरकारका सर्वशिरोमणि व्यक्ति है। संसद्के दोनों सदनोंके संयुक्त अधिवेशनमें राष्ट्रपतिका निर्वाचन किया जाता है और वह ५ वर्षोंतक उस स्थानपर रहता है। राष्ट्रपतिका पुनर्निर्वाचन इस अवधिमें केवल एक बार किया जाता है। राष्ट्रपति ही संसद्की बैठकें बुलाता और उसका विसर्जन तथा विघटन करता है किन्तु वह संसद्में पारित किये जानेवाले विधेयकोंको रोकनेमें विशेषाधिकारका प्रयोग नहीं कर सकता। राष्ट्रपतिकी मृत्यु हो जाने अथवा उसके अशक्त होनेकी दशामें राष्ट्रपतिके अधिकारोंका प्रयोग एक आयोग करता है

जिसके सदस्य वर्मा संघके उच्चतम न्यायपति और दोनों सदनोंके अध्यक्ष होते हैं।

प्रशासकीय सम्पूर्ण कार्योंका सूत्रसंचालन मन्त्रिमण्डल करता है जिसका प्रमुख प्रधान मन्त्री होता है। प्रधान मन्त्रीका निर्वाचन चैम्बर आफ डिपुटीजसे किया जाता है और वही मन्त्रिमण्डलका गठन करता है। मन्त्रिमण्डलके मन्त्रिगण संसद्के दोनों सदनोंके सदस्योंमेंसे तो लिये ही जाते हैं, एकरूपता कायम रखनेके लिए प्रत्येक राज्यके संसदीय सदस्योंमेंसे भी एक-एक सदस्य मन्त्रिपदके लिए चुना जाता है। वह मन्त्री उस राज्यकी सरकारके लिए तो मन्त्री होता ही है, मन्त्रिमण्डलका एक विभाग भी उसके जिम्मे होता है।

एक बारका निर्वाचित प्रधान मन्त्री और उसका मन्त्रिमण्डल सामूहिक तौरपर संसद्के लिए तबतक जिम्मेदार होता है और अपनी सरकारका संचालन करता है जबतक चैम्बर आफ डिपुटीजके बहुसंख्यक सदस्योंका समर्थन उन्हें प्राप्त होता है। एक बार गठित संसद्का विघटन तबतक नहीं किया जा सकता जबतक बहुसंख्यक सदस्योंके समर्थनसे प्रधान मन्त्री प्राप्त करना असम्भव न हो जाय और ऐसी विषम स्थिति आविर्भूत होनेपर १५ दिनोंके पश्चात् राष्ट्रपति संसद्के विघटन और नव-निर्वाचनका आदेश जारी करता है। लेकिन नव-निर्वाचन होनेके पश्चात् मन्त्रिमण्डलका संघटन होनेतक पुराना मन्त्रिमण्डल ही काम करता रहता है ताकि प्रशासकीय कार्योंमें बाधा न पहुँचे।

बर्माके विधिविभागीय नियम बर्मी संविधान और संसद्में पास कानूनोंके बरतनेके माध्यम हैं। इन्हीं नियमोंके आधारपर बर्मा संघके उच्चतम न्यायालयकी स्थापना की गयी है। निचले न्यायालयोंके मामलोंकी अपीलके लिए तो यह है ही, मौलिक वैधानिक अधिकारोंको लागू करनेका भी यही माध्यम है।

बर्माका हाईकोर्ट सम्पूर्ण देशके मामलोंकी अपीलके लिए तो है ही, राजधानी नगर रंगूनके लिए यह प्रथम वर्गके न्यायालयका भी कार्य करता है। देशके विविध भागोंमें दीवानी और फौजदारीके अन्यान्य अनेक न्यायालय भी हैं। इनमें सर्वोच्च न्यायालय डिस्ट्रिक्ट और सेसन्स जजका होता है।

संघके प्रत्येक राज्यमें हाईकोर्टसे नीचेकी श्रेणीके न्यायालय भी हैं। इनके माध्यमसे राज्यका प्रशासकीय कार्य होता है और लोकतान्त्रिक नियमोंको भी लागू किया जाता है। बर्माके विधि-विभागकी यह विशेषता है कि यद्यपि उच्चतम न्यायालयके न्यायपतियोंके निर्वाचन संसद्के सदनोंसे होते हैं तो भी उन्हें अपने उत्तरदायित्वको निभानेके लिए पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है और निचले न्यायालयोंके न्यायपतियोंकी नियुक्तियाँ उच्चतम न्यायालय और हाईकोर्टके विचारपति ही करते हैं।

बर्मा संघकी राज्य सरकारोंके लिए प्रधान मन्त्री जिन मन्त्रियोंको चुनता है उनपर दोहरा दायित्व होता है। एक तो मन्त्रिमण्डलके मन्त्रिपदका और दूसरा राज्य सरकारोंके प्रमुखका। यह एक नमूनेकी व्यवस्था है जो संसारके अन्य किसी देशमें नहीं मिलती। यह केन्द्रीय सरकारके साथ राज्यकी प्रशासकीय व्यवस्थाओंसे सम्बन्ध स्थापित करती है। राज्य सरकारोंका संसद्के साथ जो यह सम्बन्ध स्थापित है वह बर्माकी ओरसे अन्तरराष्ट्रीय वैधानिक कानूनोंके लिए एक अद्भुत देन है।

राज्य परिषद्के सदस्य राज्य सरकारोंके लिए मन्त्रियोंकी नियुक्ति करते हैं जिनकी अवधि चार वर्षोंकी होती है। ये राज्य सरकारें केवल राज्य परिषदोंकी मातहतीमें होती हैं अन्यथा अपने कार्योंके संचालनकी इन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है। बर्मा संघके प्रभावोंसे परे अपने क्षेत्रोंमें इनके अपने ही प्रभाव होते हैं।

बौद्ध धर्म राज्यधर्मके स्थानपर

बर्माकी लगभग ९० प्रतिशत आदिवासी जनता बौद्ध मतावलम्बी है। वह इस प्रकार धर्मपरायण है कि केवल यह कह देनेसे कि अमुक व्यक्ति बर्मी है, सहज ही यह बोध भी हो जाता है कि वह बौद्ध है। बर्माको स्वर्णिम देवालयों (पगोडाओं) का देश भी कहा गया है। किसी मार्गसे भी यात्रा की जाय अथवा दृश्य-निरीक्षणके निमित्त जाया जाय, सर्वत्र पहाड़ियोंकी चोटियों अथवा गुफाओंमें बुद्धमन्दिरोंकी बहुलता एवं प्रधानता दीखेगी। ये देवालय जहाँ यह निर्दिष्ट करते हैं कि बर्मियोंके मानसपर भगवान् बुद्धके उपदेशोंकी कितनी गहरी छाप है और वे उनमें कैसी अतुलित आस्था रखते हैं, वहीं वे इस दिशामें भी संकेत करते हैं कि इनके निर्माणमें कैसी विपुल धनराशि लगी है।

४ जनवरी, १९४८ को बर्माके स्वतन्त्र घोषित होनेके बादसे सरकारने प्राचीन बौद्ध-मन्दिरोंके पुनरुद्धारकी ओर भी विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया और परिणामस्वरूप देशमें धार्मिक नवजागरणकी भी लहर उत्पन्न हुई। सन् १९५४ के मई माससे रंगूनमें छठें बौद्ध संघायना (संगीति) का आयोजन करके तो बुद्धधर्मको विश्वव्यापी पुनर्जागृति देनेका महान् कार्य किया गया। इस संघायनामें सम्मिलित होनेके लिए सम्पूर्ण संसारके बौद्ध नेता आये थे। बर्मा, सिंहल (लंका), कम्बोडिया, लाओस और स्याम (थाईलैण्ड) के विद्वान् बौद्धोंके जिम्मे बौद्ध धर्मके विभिन्न ग्रन्थोंके सहारे भगवान् बुद्धके धर्मादेशोंको उनके शब्दोंमें सम्पादित करनेका काम दिया गया था। उन्होंने इस कार्यको सन् १९५६ तक पूरा किया। इन धर्मसूत्रोंको बड़ी ही साव-

धानीके साथ इनके पाली भाषाके मूल रूपमें लानेका सफल प्रयत्न किया गया है।

यह संघायना विश्वशान्ति पगोडाके सन्निकट इसी कार्यके निमित्त निर्मित भवनमें सम्पन्न किया गया था। इसमें पाँच हजारसे अधिक संख्यामें भिक्षुओंने भाग लिया था।

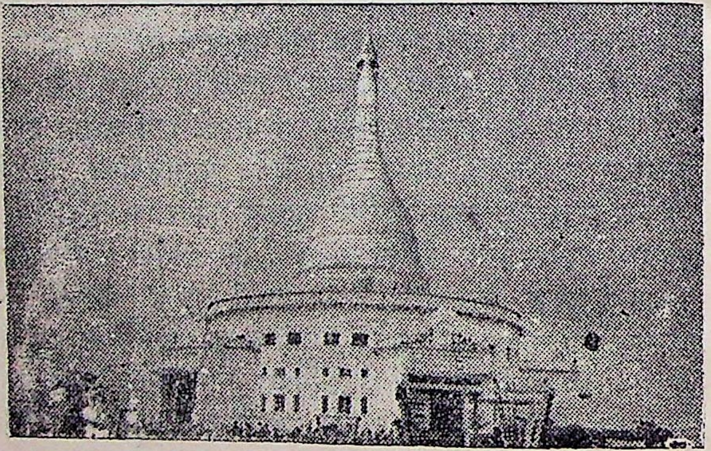

विश्वशान्ति पगोडा

प्रथम संघायना २५०० वर्षों पूर्व भगवान् बुद्धके परिनिर्वाणके तत्काल बाद ही सम्पन्न किया गया था। उस समयतक बुद्धके उपदेशोंको सम्पादित रूप नहीं दिया गया था। भक्त एवं भिक्षुजन कण्ठस्थ किये हुए स्तोत्रोंका ही पाठ करते थे। अतएव, इस संघायनामें बुद्धधर्मादेशोंका सम्पादन किया गया। दूसरा संघायना उससे दो सौ वर्षों बाद आयोजित हुआ था और तीसरा ईसासे ३०८ वर्षों पूर्व। चतुर्थ मन्त्रणा-सभा लंका (सिंहल) में ईसासे कुछ वर्षों पूर्व हुई थी और उसमें उन सभी धर्मादेशोंको औपचारिक तौरपर पढ़ा और स्वीकार किया गया था जो तबतक

संगृहीत हो चुके थे। इसके बाद शताब्दियोंतक किसी मन्त्रणा-सभा (संघायना) का आयोजन नहीं हुआ। सन् १८७१ में धर्मनिष्ठ बर्मी राजा मिडऊँके संरक्षणमें माण्डलेमें पाँचवाँ संघायना सन्पन्न किया गया था।

इसके बाद यही छठा संघायना भगवान् बुद्धके परिनिर्वाणके २५०० वर्षों बाद उनकी इस पुण्यतिथिसे समन्वय स्थापित रखते हुए आयोजित हुआ था। इसका आयोजन महान् धर्माचारी बर्मी प्रधान मन्त्री ऊ नुके नेतृत्वमें किया गया था।

स्वतन्त्र बर्मामें ऐसे उच्च स्तरोंपर बौद्धधर्मप्रचारके कार्य होते हुए भी, इतनेसे ही, न तो यहाँकी धर्मशील जनता तुष्ट थी और न बौद्ध-भिक्षु ही। उनकी निरन्तर माँग थी कि बौद्ध धर्मको बर्माके राजधर्मके स्थानपर प्रतिष्ठापित किया जाय। परन्तु बर्मा सरकार ऐसी परिस्थितियोंमें रही कि वह ऐसा करनेमें कठिनाईका अनुभव करती रही।

वर्तमान युगमें जहाँ मानवधर्मकी दुहाई दी जा रही है, एक ऐसे देशमें जहाँ ईसाई, मुसलमान, हिन्दू और पारसी आदि लाखोंकी संख्यामें बस रहे हों, एक लोकतान्त्रिक सरकारके लिए यह शोभनीय भी नहीं होता कि वह एक धर्मविशेषकी प्रतिष्ठा राजधर्मके स्थानपर करती। लेकिन समय महाबली होता है, उसके चक्रने ऊ नुको विवश किया कि उन्होंने ६ फरवरी, १९६० में होनेवाले चुनाव अभियानमें जनताको विश्वास दिलाया कि 'यदि उनका दल चुनावमें सफलता प्राप्त कर सत्तारूढ़ होगा तो वह बौद्ध धर्मको राजधर्मकी महत्ता प्रदान करके रहेगा।' बुद्ध धर्मपरायण बर्मी जनताके लिए यह मन्त्र ऐसा मोहक सिद्ध हुआ कि आपके दलको आम चुनावमें अभूतपूर्व विजय मिली और सन् १९६१ के अगस्त मासमें होनेवाले संसदीय अधिवेशनमें बौद्ध धर्मको राजधर्म होनेका गौरव भी प्रदान कर दिया गया।

ऐसा करनेमें नु सरकारको महान् कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। ईसाई और मुसलमान धर्म-नेताओंने इसका बहुत विरोध किया। मुसलिम नेता ऊ रशीदका संसद्में किया गया तत्सम्बन्धी भाषण तो ऐतिहासिक माना जाना चाहिये। उधर ऊ नुने भी पूरी तैयारी कर रखी थी और निचले एवं ऊपरी सदनोंमें पारित होनेके बाद जब इसका विधेयक दोनों सदनोंके संयुक्त अधिवेशनमें प्रस्तुत किया गया तो वहाँ भी निचले सदनके २२३ सदस्योंने पक्षमें और १२ ने विरोधमें मतदान किया तथा १५ अनुपस्थित थे। वैसे ही ऊपरी सदनके १०१ सदस्योंने पक्षमें और १६ ने विरोधमें मतदान किया तथा ४ अनुपस्थित थे।

इस प्रकार बौद्ध धर्म बर्माके राजधर्मके स्थानपर अलंकृत कर दिया गया।

ऐसा करनेमें नु सरकारको महान् कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। ईसाई और मुसलमान धर्म-नेताओंने इसका बहुत विरोध किया। मुसलिम नेता ऊ रशीदका संसद्‌में किया गया तत्सम्बन्धी भाषण तो ऐतिहासिक माना जाना चाहिये। उधर ऊ नुने भी पूरी तैयारी कर रखी थी और निचले एवं ऊपरी सदनोंमें पारित होनेके बाद जब इसका विधेयक दोनों सदनोंके संयुक्त अधिवेशनमें प्रस्तुत किया गया तो वहाँ भी निचले सदनके २२३ सदस्योंने पक्षमें और १२ ने विरोधमें मतदान किया तथा १५ अनुपस्थित थे। वैसे ही ऊपरी सदनके १०१ सदस्योंने पक्षमें और १६ ने विरोधमें मतदान किया तथा ४ अनुपस्थित थे।

इस प्रकार बौद्ध धर्म बर्माके राजधर्मके स्थानपर अलंकृत कर दिया गया।

सम्मति

'बर्माका इतिहास' का समर्पण स्वीकार करते हुए भारतीय राजदूत महामहिम श्री आर० एस० मणिने लेखकको लिखा—

"यह आपका महान् साहसिक कार्य है जो आप बर्मा-विषयक अपनी दूसरी पुस्तक प्रकाशित कराने जा रहे हैं। पुस्तकका परिचय पढ़नेसे प्रतीत होता है कि इसमें वे सभी उपयोगी तथ्य समाहित हैं जिनसे ~~बर्माके छात्रों~~ और मित्रोंकी वास्तविक आवश्यकताएँ पूरी हो सकेंगी।"

आपका शुभेच्छु
आर० एस० मणि

बर्माविषयक लेखककी प्रथम कृति 'बर्मा—कल और आज' पर सम्मति देते हुए महामहिम श्री मणिने लिखा था—"बर्मा और भारतके बीच और अधिक मतैक्य स्थापित करानेके लिए यह आपकी अमूल्य देन है। हिन्दी भाषामें अपने ढंगकी प्रथम पुस्तक होनेके कारण यह भारतीय जनताके समक्ष बर्माका चित्रांकन प्रस्तुत करनेमें बहुमूल्य सिद्ध होगी। इसके प्रणयनमें पर्याप्त शोधसे काम लिया गया है। इसके लिए मैं आपको हार्दिक बधाइयाँ दे रहा हूँ।"

आपका हितैषी
आर० एस० मणि

ज्ञान० वाराणसी

ज्ञान